संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन

(ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ दि वर्क्स ऑफ संस्कृत पोयटेसेज़)

प्रयाग विश्व-विद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के हेतु प्रस्तुत
शोध-प्रबन्ध

(श्रीमती) मालती अवस्थी, एम० ए०

संस्कृत-विभाग,
प्रयाग-विश्वविद्यालय

१९६८

विषयानुक्रमणिका

पञ्चम अध्याय-

षष्ठ अध्याय-

निवेदन

संस्कृत साहित्य अत्यन्त विशालकाय एवं वैभवपूर्ण है। बाल्यकाल से ही मेरी संस्कृत के प्रति स्वाभाविक रुचि थी, इसी कारण मैंने एम०ए० की परीक्षा भी इसी विषय में उत्तीर्ण की। हृदय में शोधकार्य की अभिलाषा विद्यमान होने पर भी मैं अपने प्रयत्न में सफल न हो सकी। एकाएक एक स्थानीय माध्यमिक विद्यालय में संस्कृत अध्यापिका पद पर नियुक्ति हो जाने के कारण, मुझे विश्वविद्यालय की परिधि से पृथक् जाना पड़ा। (पारिवारिक एवं वैवाहिक जीवन के व्यवधानों से विवश होने पर भी मेरे मन में अनुसन्धान की इच्छा पूर्ववत् थी)। अत: आगामी वर्ष के प्रारम्भ में पुन: मैं पूज्य गुरुवर डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल के समीप शोधकार्य विषयक परामर्श-हेतु उपस्थित हुयी। मैं किसी एक 'कृति' से सम्बद्ध विषय को नहीं चाहती थी। अत: गुरुवर ने मेरी नारी सुलभ मनोवृत्ति को देखकर 'संस्कृत कवयित्रियाँ' पर कार्य करने को कहा। मैं भी अपना इच्छित विषय पाकर आनन्द विभोर हो उठी और यथा-सम्भव प्रयास आरम्भ कर दिया।

संस्कृत के काव्यों का यह वैशिष्ट्य है कि वे अपनी मनोहर पदावली द्वारा सहृदय के चित्त को हठात् आकृष्ट कर लेते हैं, किन्तु एक आलोचक उसमें, अलङ्कार, रस, गुणादि का भलीभाँति विवेचन करने में तत्पर रहता है। यही कारण है कि किसी रचना के आलोचनात्मक विवेचन को प्रस्तुत करने के लिए ये सभी तत्त्व अनिवार्य हैं। इसके अतिरिक्त किसी भी विषय की आलोचना के पूर्व उसकी प्रारम्भिक स्थिति का ज्ञान भी रखना चाहिए इसी कारण से निबन्ध को विविध अध्यायों में विभक्त किया गया है।

इस निबन्ध में कुल मिलाकर सात अध्याय हैं। चूंकि विषय स्त्री कवियों से सम्बन्धित है अत: प्रथम अध्याय में प्राचीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर विचार किया गया है। इसके अन्तर्गत नारी संस्कार, उनकी शिक्षा, अधिकार एवं

कर्त्तव्य, उनका कार्य क्षेत्र, समाज में उनका स्थान तथा उनकी सीमाओं आदि का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों अर्थात् वेदों, उपनिषदों, रामायण महाभारत, पुराणों, बौद्ध एवं जैन रचनाओं में विदुषी नारियों के नामोल्लेख का क्रमश: स्पष्टीकरण किया गया है।

तृतीय अध्याय में संस्कृत कवयित्रियों की तिथि एवं रचनाओं की चर्चा की गयी है। तिथि निर्धारण के सम्बन्ध में विविध विद्वानों के मतों का भी उल्लेख कराने के उपरान्त, युक्ति, सङ्गत धारणा प्रस्तुत की गयी है। चूंकि `कौमुदी महोत्सव` नाटक की रचयित्री विज्जका की तिथि का विवेचन कुछ विस्तृत था, अत: उसे प्रबन्धकाव्य रचयित्रियों के अध्याय में पृथक् ग्रहण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों शाङ्गर्धरपद्धति, सुभाषितावली` आदि में उद्धृत स्फुट पद्यों का निर्माण करने वाली नारियों की कृतियों का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन किया गया है। इसमें विषय सामग्री, रस, रीति, गुण, अलङ्कार का विवेचन किया गया है।

पञ्चम अध्याय में कवयित्रियों के प्रबन्धकाव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन किया गया है। इसमें गङ्गादेवी के मधुराविजयम् (महाकाव्य), तिरुमलाम्बा के वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू, मधुरवाणी के रामायण-काव्य (संस्कृत अनुवाद), सुभद्रा के पूर्णत्रयीशस्तोत्र, देवकुमारिका के वैद्यनाथप्रासाद-प्रशस्ति, लक्ष्मीराज्ञी के `सन्तानगोपाल काव्य`, विज्जिका के `कौमुदीमहोत्सव` नाटक, बीनबाई के द्वारकापत्तलम्, तथा विश्वास देवी की गङ्गावाक्यावली का भलीभाँति परिशीलन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में क्षमाराव को एक आधुनिक कवयित्री के रूप में स्पष्ट करने की चेष्टा की गयी है। क्षमाराव ने श्रीतुकारामचरितम्, श्रीरामदासचरितम्, श्रीज्ञानेश्वरचरितम्, मीरालहरी, शङ्करजीवनाख्यानम्, सत्याग्रहगीता, स्वराज्यविजय, ग्रामज्योति, कथापञ्चक, कथामुक्तावली, विचित्रपरिषद्यात्रा की रचना करके आधुनिक संस्कृत साहित्य की समृद्धि में अपना योगदान दिया। इसी अध्याय में उनकी कृतियों के कथानक की आलोचना, रस और भाव की अभिव्यक्ति, रीति, काव्यसौन्दर्य अथवा अलङ्कार, सूक्ति सौन्दर्य, उनकी गद्य शैली तथा उनकी कृतियों की विशिष्टता का

दर्शन कराया गया है।

सप्तम अध्याय में प्राकृत कवयित्रियाँ अनुलक्ष्मी, असुलद्धि, अवन्तिसुन्दरी, माधवी, प्रहता, रेवा, रोहा तथा शशीप्रभा के पद्यों के सौन्दर्य का निरूपण किया गया है।

इस निबन्ध के लिखने में जिन ग्रन्थ रत्नों की सहायता मिली है, उन सबके प्रति मैं हृदय से आभारी हूं। अपने इस कार्य के लिए मैं स्वर्गीय श्री जतीन्द्र-विमल चौधरी के प्रति विशेष आभार व्यक्त करती हूं, जिन्होंने `संस्कृतपोयटेसेज्` नामक पुस्तक की रचना करके मुझे कार्य में सहायता प्रदान की। शोध कार्य के अन्तर्गत मुझे वाराणासी तथा दो बार कलकत्ते की यात्रा करनी पड़ी। मैं वाराणासी के संस्कृत विश्वविद्यालय के अध्यक्ष श्री सुभद्र झा की कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे सरस्वती भवन, पुस्तकालय में अध्ययन की सुविधायें एवं पत्र-पत्रिकायें प्राप्त करने का सुअवसर प्रदान किया। कलकत्ता में `राष्ट्रीय पुस्तकालय` के उप पुस्तकालयाध्यक्ष श्री शङ्कर शर्मा की भी मैं हृदय से आभारी हूं जिन्होंने मुझे क्षमाराव की कृतियाँ तथा गङ्गादेवी रचित `मधुराविजयम्` को उधार रूप में भेजने में सहयोग प्रदान किया। कलकत्ता की `एशियाटिक सोसाइटी लाइब्रेरी के अध्यक्ष के प्रति मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने रामभद्राम्बा लिखित रामभद्राम्बा की `मूलप्रति` एवं मुद्रित पुस्तक के अध्ययन का मुझे अवसर प्रदान किया। स्थानीय सङ्गमनी पत्रिका के सम्पादक श्री प्रभात शास्त्री के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूं जिन्होंने समय समय पर विविध ग्रन्थों को प्रदान करके तथा अपने बहुमूल्य उपदेशों द्वारा मुझे इस कार्य में प्रोत्साहन दिया। `कौमुदीमहोत्सव` नाटक के हिन्दी अनुवाद हेतु मैं श्री देवदत्त शास्त्री के प्रति विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने अपने सद्भाव पूर्ण परामर्श द्वारा मुझे प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त शोध-प्रबन्ध को टाइप करने में श्री मेवालाल मिश्र ने पर्याप्त श्रम किया है उनका प्रयत्न और सौम्य व्यवहार सराहनीय है। टङ्कण यन्त्र की असमर्थता के कारण, स्वयं सावधानी बरतने के बाद भी कुछ अशुद्धियों का रह जाना असम्भाव्य नहीं है--उनके लिए मैं क्षमा-प्रार्थिनी हूं।

भूतपूर्व संस्कृतविभागाध्यक्ष गुरुवर प्रो० सरस्वतीप्रसाद जी चतुर्वेदी की मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं जिन्होंने मुझे उक्त विषय पर कार्य करने की अनुमति प्रदान की। शोधकार्य की इस परीक्षा में उनके शुभाशीषों के सम्बल की प्रार्थिनी हूं। शोध निर्देशक पूज्य गुरुवर डा० चण्डिकाप्रसाद शुक्ल के विस्तृत ज्ञान एवं शिष्यों के प्रति कृपालुता भाव के कारण ही मैं अपने शोध-प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी हूं। उनके तथा अन्य विभागीय गुरुजनों के प्रति भी मैं आभार प्रदर्शित करती हूं।

मालती अवस्थी

— मालती अवस्थी

द्वितीय-अध्याय

प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में विदुषी नारियों के नामोल्लेख

अत्यन्त प्राचीन काल से अर्थात् ऋग्वैदिक काल से ही धार्मिक ग्रन्थों में विदुषी नारियों का उल्लेख ब्रह्मवादिनियों के रूप में मिलता है । ऋग्वेद में २१ ऋषिकाओं की सूची है, जो मन्त्रों की रचना करने वाली मानी गयी है । इनमें से कुछ जैसे अदिति, जुहू, इन्द्राणी, सरमा, उर्वशी, रात्रि एवं सूर्या देवी अथवा अर्द्धदेवी शक्तियों के रूप में ली जा सकती है, जबकि श्री, मेधा, दक्षिणा एवं श्रद्धा आदि स्पष्टत: कुछ भावनाओं की प्रतीक रूप में प्रस्तुत की गयी हैं । इन सबके अतिरिक्त नौ या दस ब्रह्मवादिनी नारियां, विश्ववारा, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, शाश्वती, एवं रोमशा आदि मानवीय चरित्र समझी गयी हैं । इनके अतिरिक्त वाच् के सम्बन्ध में यह सन्देह है कि यह वस्तुत: ऋषिका है या नहीं ? यहां पर प्रयुक्त ब्रह्मवादिनी शब्द का किसी गम्भीर दार्शनिक अर्थ में नहीं लेना चाहिए क्योंकि इन सभी ऋषिकाओं ने अपने मन्त्रों में किसी विशिष्ट विषय ब्रह्मज्ञान आदि को नहीं लिया है जैसा कि उत्तरकाल में इस शब्द को समझा जाने लगा था , अपितु इनकी ऋचायें अधिकांशत: विविध देवों की स्तुति तथा अपने व्यक्तिगत जीवन के सुख दु:ख का ही वर्णन करती है । वाच्-- ऋग्वेद के दशम मण्डल का १२५ वां सूक्त जो आज देवी सूक्त के नाम से प्रसिद्ध है, वाच् द्वारा रचित माना जाता है । इसमें देवी की स्तुति की गयी है । यह देवी सूक्त अम्भृणा ऋषि की पुत्री वागाम्भृणी द्वारा रचित माना जा सकता है, किन्तु चूंकि इसमें रुद्र, वसु, आदित्य, मित्र, वरुण आदि देवों के समाज वाच् का स्थान बताया गया है, अत: इस विषय में किसी ऋषिका को न मान कर हमें वाच् को वाणी या शब्द अर्थ रखकर रूपक मानना ही उचित है ।

घोषा- कक्षीवान् की पुत्री घोषा ने दोनों अश्विनी कुमारों की प्रशंसा में दो सूक्त[१] रचे हैं। पहले सूक्त में उसने भिन्न भिन्न व्यक्तियों के ऊपर अश्विनी-कुमारों के किये गए उपकारों का उल्लेख किया है। ये व्यक्ति थे तुग्र सन्तान च्यवान[२] विमद, शुन्ध्यु, पुरुपुत्र, वध्री बध्रमती[३], पेदु[४], संयु,[५] भृगु[६]। घोषा अपनी सुन्दर रचना में किसी भी ऋषि का सामना कर सकती है। वह कहती है —

" हे अश्विनो! सारी पृथिवी पर जाने वाला तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले यजमान प्रतिदिन, प्रतिरात्रि और प्रति उषा पुकारते हैं। तुम्हारे पिता के सुन्दर पुकारे जाने वाले नाम की तरह तुम्हारे नाम का हम सदा आह्वान करते हैं।"[७]

" हे अश्विनो जैसे भृगु लोग रथ को गढ़ते हैं, वैसे इस स्तोम (स्तुति) को तुम्हारे लिए मैंने बनाया। पति के लिए जैसे वधू को अलंकृत करते हैं वैसे ही मैंने मानों नित्य पुत्र और पौत्र को धारण करती, इसे अलंकृत किया[८]।"

दूसरे[९] सूक्त में घोषा[१०] ने कुत्स, मुन्यु वंशज, सिजार उशाना, कृश संयु का उल्लेख किया है। घोषा राजा की दुहिता थी, यह उनकी अधोलिखित ऋचा से

---

१. ऋग्वेद १०।३६-४०
२. वही १०।३६-। ५
३. वही १०।३६।७
४. वही १०।३६।१०
५. वही १०।३६।१३
६. वही १०।३६।१४
७. वही १०।३६। १
८. वही १०।३६।१४
९. वही १०।४०
१०. वही १०।४०।५,६,७,८

पता लगता है -

' हे अश्विनो, राजा की दुहिता, घूमने वाली घोषा तुमसे बात करती, वह तुमसे आज्ञा मानती है। दिन हो या रात इस समय अश्व वाले रथी ~~अर्वन~~अर्वन् को तुम दमन करते हो।'[1]

अश्विद्वय से अपनी कामना प्रकट करती हुयी घोषा वर मांगती है -

' मैं उस बात को नहीं जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे युवा और युवती घरों में रहकर अनुभव करते हैं। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट वीर्यवान् तरुण के गृह में जाऊं, हे अश्विनो मेरी यह कामना पूर्ण कर दो।'[2]

घोषा के पति का नामोल्लेख नहीं मिलता है। उसके पुत्र सुहस्त को माता के नाम से ही याद किया गया है। पुत्र ने भी माता के सदृश ही दोनों अश्विनी कुमारों की प्रार्थना की है (१०।४१।१-३)।

विश्ववारा- घोषा की तरह यही एक और महिला है जिसे ऐतिहासिक कहा जा सकता है।[3] विश्ववारा अत्रिगोत्र में उत्पन्न हुयी। इसने अपने सूक्त[4] (५।२८) में त्रिस्तुप्, अनुष्टुप्, अनुष्टुप् और गायत्री छन्दों में अग्नि की महिमा गाते हुए अपना नाम दिया है -

' प्रज्वलित अग्नि द्यौ लोक में किरणों को फैलाता है, उषा के सामने विस्तृत होकर शोभायमान देता है। हवि सहित स्रुवा को लेकर नमस्कार के साथ देवों की पूजती विश्ववारा पूर्व की दिशा की ओर जाती है।'[5]

---

१. ऋग्वेद १०।४०।५

२. वही १०।४०।११

३. ऋग्वैदिक आर्य - लेखक राहुल सांकृत्यायन, पृ० २३४

४. ऋग्वेद ५।२८

५. वही ५।२८।१

" हे अग्नि, महान् सौभाग्य के लिए तुम्हारे प्रकाश उत्तम हों, (तुम) शत्रुओं को नष्ट करो, दाम्पत्य (सम्बन्ध) को तुम सुनियमित करो, शत्रुता करने वालों के तेज को नष्ट करो ।"[१]

अपाला— ऋग्वेद के आठवें मण्डल का ९१ सूक्त अपाला द्वारा रचित माना जाता है किन्तु इस विषय में कल्पना एवं वास्तविकता दोनों मिल गयी हैं । यद्यपि विवाहित अपाला भी विश्ववारा की भांति अत्रि परिवार की ही थी किन्तु वह कम सौभाग्यवती थी। चर्मरोग से पीड़ित होने के कारण वह पति द्वारा त्याग दी गयी थी किन्तु बाद में इन्द्र की स्तुति द्वारा तथा उनको सोम पान करवाकर, इन्द्र द्वारा वरदान मिलने पर वह आजीवन रोग रहित हो गयी । इस प्रकार अपाला द्वारा इन्द्र को सोमपान कराये जाने के कारण से ही सम्भवत: बृहद्देवता की एक पौराणिक कथा में एक देवता का मानवीय स्त्री के प्रति आकृष्ट होने का उल्लेख है ।

लोपामुद्रा— अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा ऋग्वेद के दो मन्त्रों[२] की रचयित्री मानी गयी है जिसमें अगस्त्य और उनकी पत्नी लोपामुद्रा के विचित्र कथोपकथन का चित्रण है । अपने पति की विरक्तता से पीड़ित होकर लोपामुद्रा उनसे प्रेम एवं सान्निध्य के लिए आग्रह करती है —

" दिन रात और आयु को निरन्तर न्यून करते जाने वाले उषा काल में भी प्रतिदिन निरन्तर श्रमशील होकर गृहकार्य करती और करता हुआ मैं गृहपति और गृहपत्नी अपनी आयु के पूर्व के वर्ष व्यतीत करें, बाद में वृद्धावस्था शरीर के सौन्दर्य को नष्ट कर देती है । इसलिए ही वीर्य सेवन में समर्थ पुरुष अपने यौवन काल में धर्म को प्राप्त करें ।"[३]

---

१. ऋग्वेद ५।२८।१

२. वही, १।१७९।१—२

३. पूर्वीरहं शरद: शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्ती: ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्यु: ।।
—लोपामुद्रा गस्त्यो ऋषी (छन्द त्रिष्टुप्), दम्पती देवता
ऋग्वेद संहिता — १।१७९।१

' जो भी पूर्ण विद्वान्, सत्य ज्ञान को पूर्ण रूप से प्राप्त करने वाले हो, वे ज्ञान प्रदान करने वाले उत्तम विद्वानों के साथ मिलकर सत्यज्ञानों की चर्चा करें । वे भी अपनी देह गिरा देते हैं और जीवन का परम प्राप्य फल प्राप्त नहीं करते हैं, इसलिए हे स्त्री पुरुषो ' । जब बड़े बड़े ब्रह्मचारियों तक के शरीर अस्थिर हैं, और वे भी अपने छोटे जीवन में अपने उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सके , तो फिर गृहस्थियों को अपने गृहस्थ जीवन का उद्देश्य उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिए विलम्ब नहीं करना चाहिए, अवश्य गृहस्थ का पालन करने में समर्थ स्त्रियां यौवन काल में ही वीर्यसेवन में समर्थ पुरुषों के साथ सङ्गति-लाभ कर उत्तम सन्तान प्राप्त करें ।[१]

प्रस्तुत सूक्त के अन्तिम मन्त्र से ऐसा परिचय मिलता है कि लोपामुद्रा का आग्रह व्यर्थ नहीं गया और अगस्त्य ऋषि अपने आर्ष जीवन के साथ ही गृहस्थ धर्म की ओर भी आकृष्ट हो गये । इसी प्रकार शाश्वती, जिसे नारी कहा गया है, ने अपनी प्रसन्नता को काव्यरूप में वर्णित किया है ।[२] रोमशा जिसे बृहद्देवता में भावयव्य की पत्नी बताया गया है, ने एक मन्त्र[३] में अपनी युवावस्था के आनन्द एवं सम्भोग का वर्णन किया है ।

साथ ही ऋग्वेद में विश्पला[४] तथा मुद्गलानी[५] का उल्लेख मिलता है किन्तु यह स्त्रियां मन्त्रों की ऋषिकाओं के रूप में नहीं मानी गयी हैं ।

---

१. ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ।।१।१७९।२
(छन्द निचृत त्रिष्टुप)-१।१७९।२ ऋग्वेद संहिता ।

२. ऋग्वेद संहिता १।१७९।६

३. वही १।१२६।७

४. वही १।११६।१५

५. ऋग्वेद संहिता १०।१०२

उपनिषद्— ब्राह्मण काल के शुष्क याज्ञिक वातावरण में किसी ~~अन्य~~-विदुषी स्त्री का उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु उपनिषद्-काल में हमें दो ऐसी नारियों का वर्णन मिलता है जिन्होंने प्रसिद्ध दार्शनिक याज्ञवल्क्य के साथ आध्यात्मिक वाद-विवाद किया था। उनमें से प्रथम स्वयं याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी एवं द्वितीय शास्त्रार्थकर्त्री गार्गी जो कि वाचक्नु ऋषि की पुत्री थी। अभाग्यवश बृहदारण्यकोपनिषद् में विवेचन के लिए अतिरिक्त उनके बारे में अधिक ज्ञान नहीं प्राप्त होता है किन्तु उनके उस वाद-विवाद से ही उनकी दार्शनिक प्रवृद्धि एवं विद्वता का परिचय मिल जाता है।

मैत्रेयी— अपने समय के विश्व विख्यात आचार्य याज्ञवल्क्य ने गृहस्थाश्रम को छोड़-कर सन्यास लेने की अभिलाषा से अपनी दोनों पत्नियाँ मैत्रेयी (मित्रयु की कन्या) एवं कात्यायनी (कत गोत्र में उत्पन्न हुयी) दोनों के मध्य सम्पत्ति का समान विभाजन करना चाहा। चूंकि मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी किन्तु कात्यायनी गृहस्था-श्रम के लौकिक एवं धार्मिक कर्तव्यों को करने में कुशल थी। अतः मैत्रेयी ने उत्तर दिया — हे भगवन् यदि यह सारी पृथ्वी धन से भरी हुयी (मेरे पास) हो तो क्या मैं उससे अमर हो जाऊंगी। अथवा नहीं ? याज्ञवल्क्य ने कहा — " नहीं जैसे अमीर लोगों का जीवन होता है वैसे ही तेरा भी जीवन होजावेगा।"[१]

मैत्रेयी ने कहा तो " जिससे मैं अमर नहीं होऊंगी, उससे मैं क्या करूंगी, केवल वह (वस्तु) जो आप जानते हैं, वही मुझे बतलाइए।"[२]

याज्ञवल्क्य ने कहा " आप हमारी (पहले ही) प्रिया हैं और (अब इस बात को पूछने से) प्रीति को (और) बढ़ाया है। मै तुम्हारे लिए इसपर व्याख्यान दूंगा तुम उस पर पूरा पूरा ध्यान दो।"[३]

---

१. सा होवाच मैत्रेयी—यन्नु म इयं भगोः। सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्—स्यां न्वहं तेनामृताऽऽहो३ नेति। नेति होवाच याज्ञवल्क्यो, यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन इति।
—बृहदारण्यकोपनिषद् द्वितीय अध्याय

२. सा होवाच मैत्रेयी—येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां, यदेव भगवान् वेद, तदेव मे ब्रूहि इति। —बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।३

३. बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।५

याज्ञवल्क्य ने कहा-" हे मैत्रेयी, पति, पत्नी, पुत्र,धन, पशु आदि सभी आत्मा के लिए प्यारे होते हैं अत: आत्मा ही दर्शन करने योग्य है, मनन करने योग्य तथा निदि्ध्यासन अर्थात् ध्यान करने योग्य है। आत्मा को जानकर फिर कुछ भी जानना शेष नहीं रहता है।"[1]

इस प्रकार यह याज्ञवल्क्य द्वारा मैत्रेयी को दिया गया अमृतत्व के साधन के लिए ब्रह्मज्ञान का उपदेश उपनिषद् की सर्वोच्च शिक्षा मानी जाती है।

गार्गी- तत्पश्चात् महर्षि याज्ञवल्क्य से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति विषयक वादविवाद करने वाली एवं दर्शनशास्त्र में पारङ्गत, विख्यात विदुषी गार्गी का उल्लेख बृहदारण्यकोपनिषद् के तृतीय अध्याय में उपलब्ध होता है। यह वाद-विवाद राजा जनक की अध्यक्षता में हुए याज्ञिक समारोह के अवसर पर याज्ञवल्क्य और गार्गी के मध्य सम्पन्न हुआ था। अन्त में निरन्तर पूछे गए प्रश्नों से पीड़ित होकर याज्ञवल्क्य ने स्वयं कहा -" गार्गी अब अधिक प्रश्न मत करो"[2] इस समय तो गार्गी शान्त हो गयी किन्तु पुन: ऋषियों की सभा में गार्गी ने महर्षि याज्ञवल्क्य से दो प्रश्न पूंछने की अनुमति मांगी -" मैं आप से दो प्रश्न उसी प्रकार से पूंछती हूं जिस प्रकार से काशी या विदेह से लौटा हुआ किसी वीर का पुत्र अपने हाथ में दो तीरों से युक्त धनुष ग्रहण करता है।"[3] अन्त में गार्गी शान्त हो जाती है। अत: गार्गी द्वारा याज्ञवल्क्य जैसे महान् व्यक्ति के साथ

---

१. आत्मा वा अरे दृष्टव्य: श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्य: मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृष्टे श्रुते मते विज्ञाते इद९सर्वं विदितम् ।

-बृहदारण्यकोपनिषद् २।४।५

२. मा अति पृच्छ गार्गीति- बृहदारण्यकोपनिषद् ३।६।१-८

३. सा होवाचाहं वै त्वा याज्ञवल्क्य यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनुरधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वां द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थां तौ मे ब्रूहीति-

-बृहदारण्यकोपनिषद् ३।८।२

किये गए तर्क वितर्क तथा उत्तर-प्रत्युत्तर से ऐसा ज्ञात होता है कि गार्गी उच्चकोटि के दार्शनिक ज्ञान से पूर्ण थी ।

रामायण में हमें विविध कोटि की स्त्रियों का वर्णन मिलता है । एक ओर जहां अनसूया, शबरी, अहिल्या, आदि अरण्यवासिनी नारियों का उल्लेख मिलता है, वहीं अयोध्या में कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता आदि तथा लंका से सम्बन्धित मन्दोदरी, तारा, त्रिजटा आदि स्त्रियों का वर्णनप्राप्त है किन्तु इन सभी में हमें वैदुष्य का दर्शन नहीं मिलता है । रामायण में उल्लिखित प्रमुख विदुषी ललनाएं इस प्रकार हैं —

कौसल्या— राजा दशरथ की प्रधान रानी एवं राम की माता कौसल्या पति-भक्ति एवं पुत्र स्नेह, कर्त्तव्य परायणता एवं धैर्य एवं स्थिरबुद्धिता आदि गुणों से पूर्ण हैं । राम के वनवास की घोषणा को सुनकर उनका हृदय दुःख से पूर्ण हो जाता है । " गाय अपने जाते हुए बछड़े का ही अनुकरण करती है उसी प्रकार मैं भी वहीं जाऊंगी जहां तुम जाओगे"[1] किन्तु राम ने कहा — " हे माता तुम मेरे साथ न चल कर, यहीं पर रहो क्योंकि मेरे शोक में पिता (दशरथ) अधिक दिनों तक जीवन धारण न कर सकेंगे । जो नारी पति का अनुसरण नहीं करती वह पापिनी होती है, पति की सेवा से ही पत्नी को स्वर्ग लाभ होता है[2]।"

अतः राम के कथन को कौसल्या से पूर्णतः स्वीकार करा लिया ।

कौसल्या अपने जीवन का कुछ समय दैनिक विधि, पूजन एवं स्वाध्याय में व्यतीत करने की अभ्यस्त थी । ऋष्य शृङ्ग द्वारा कराये गये यज्ञ में अनेक कृत्यों को उन्होंने अपने हाथों से सम्पन्न किया था । राम के राज्याभिषेक की घोषणा को सुनकर " पुत्र कल्याण की अभिलाषा से कौसल्या रात्रि भर ध्यान

---

१. कथं धेनुः स्वकं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति । वाल्मीकि रामायण-
अहं त्वानुगमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि ।। अयोध्याकाण्ड २४।९

२. भर्तारं नानुवर्तेत सा तु पापगतिर्भवेत् ।
भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम् ।।
वाल्मीकि रामायण २।२४।२५

मग्न होकर जागरण करती रही, और प्रात: विष्णु का पूजन प्रारम्भ कर दिया, नित्य व्रत में लगी हुयी तथा श्वेत वस्त्र को धारण करके वे मन्त्रों सहित अग्नि में आहुति प्रदान करती थीं ।'[१] किन्तु एकाएक कैकेयी द्वारा भरत के राज्याभिषेक तथा राम के चतुर्दश वर्ष के वनवास के वरदान मांग लेने पर वह दशरथ की सेवा में तत्पर वियोग की व्यथा से पीड़ित होकर राजा से कुछ कह ही देती है – 'स्त्रियों के लिए शास्त्रों में तीन गतियां बतायी गयी हैं प्रथम, पति द्वितीय पुत्र एवं तृतीय गति बन्धु या सम्बन्धी जन, अन्य कोई भी चौथी गति नहीं है ।'[२]

कौसल्या पुन: राजा दशरथ से कहती है – 'आपने राम को वनवास देकर सम्पूर्ण राज्य तथा मन्त्रियों सहित ,मुझको, पुत्र एवं पुरवासी जनों को भी नष्ट कर दिया है, केवल आपकी पत्नी एवं पुत्र ही प्रसन्न हैं ।'[३]

कौसल्या द्वारा कहे गये वचनों को सहन करने में असमर्थ होकर राजा दशरथ उनसे करबद्ध होकर क्षमा-याचना करने लगे । उनके वाक्यों को सुनकर कौसल्या को अपनी त्रुटि का अनुभव हुआ और उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपने भावावेश में कहे गये वचनों का कारण पुत्र-विरह स्पष्ट किया – 'शोक धैर्य को नष्ट कर देता है । शोक श्रुतियों के ज्ञान को नष्ट कर देता है, शोक समस्त वस्तुओं को नष्ट कर देता है अत: शोक के समान अन्य कोई शत्रु नहीं है ।'[४]

---

१. कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता ।
प्रभाते चाकरोत्पूजां विष्णो: पुत्रहितैषिणी ।।
सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत्कृतमङ्गला ।। वाल्मीकि रामायण, २।२०।१४,१५

२. गतिरेका पतिर्नार्या द्वितीया गतिरात्मज: ।
तृतीया ज्ञातयो राजंश्चतुर्थी नैव विद्यते ।। वाल्मीकि रामायण २।६१।२४

३. हतं त्वया राष्ट्रमिदं सराज्यं हता: स्म सर्वा: सह मन्त्रिभिश्च ।
हता सपुत्रास्मि हताश्च पौरा: सुतश्च भार्या च तव प्रहृष्टौ ।
—वाल्मीकि रामायण २।६१।२६

४. शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्
शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपु: ।।२।६२।१५(वाल्मीकि रामायण)

सुमित्रा— रामायण में दो स्थलों पर सुमित्रा का चरित्र दर्शनीय है। सर्व-प्रथम जब राम लक्ष्मण एवं सीता वनवास जा रहे हैं, उस समय जहां एक और कौसल्या राम के लिए व्याकुल हो क्रन्दन करती है, कैकेयी भरत के राज्याभिषेक की चिन्ता में संलग्न हैं वहां सुमित्रा प्रसन्न चित्त होकर अपने प्रिय पुत्र लक्ष्मण को राम का अनुसरण करने की अनुमति देती हुयी कहती है — 'पुत्र, राम को पिता दशरथ जानो, जानकी को मुझे समझो, वन को अयोध्या जानो; सुख पूर्वक जाओ।'[१]

तत्पश्चात् विलाप करती हुयी कौसल्या से सुमित्रा राम की महानता को व्यक्त करती है — 'तुमको राम के लिए दु:ख नहीं करना चाहिए क्योंकि राम श्रेष्ठ धर्म अर्थात् सत्य पर आरूढ़ हैं।'[२] 'राम सूर्य के भी सूर्य, अग्नि की भी अग्नि, ईश्वर के ईश्वर, लक्ष्मी की लक्ष्मी, कीर्ति की भी कीर्ति, धैर्य के भी धैर्य, तथा देवों के भी देव हैं। उनके अन्दर कोई भी बात ऐसी नहीं जो अगुण नहीं, तो फिर चाहे वे वन में रहें या नगर में।'[३] सम्पूर्ण स्थलों पर सुमित्रा का चरित्र अत्यन्त शान्त व्यक्त किया गया है।

सीता— सती, साध्वी, सीता संसार में अपनी सहनशीलता और धैर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। इस दृष्टि से राम और सीता दोनों का समान आदरणीय स्थान है क्योंकि यद्यपि दोनों ही पृथक् वातावरण में थे किन्तु फिर भी एक का दु:ख दूसरे का दु:ख प्रतीत होता है। किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि सीता कहीं पर भी उलाहना नहीं देती। वाल्मीकि ने भयग्रस्त कांपती हुई सीता को

---

१. रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥ वाल्मीकि रामा० २।४०।६

२. शिष्टैराचरिते सम्यक्शश्वत्प्रेत्य फलोदये।
रामो धर्मे स्थित: श्रेष्ठो न स: शोच्य: कदाचन॥
— वाल्मीकि रामायण २।४४।४

३. सूर्यस्यापि भवेत्सूर्यो ह्यग्नेरपि प्रभो: प्रभु:।
श्रिया: श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्या: कीर्ति: क्षमा क्षमा॥
दैवत दैवतानां च भूतानां भूतसत्तम:।
कैस्तं तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे। वही २।४४।१५,१६

झंझावात से प्रेरित केले के समान चित्रित किया है ।[१] साथ ही अत्यधिक उत्तेजना के अवसर पर क्षमा प्रदर्शन नारी का सर्वोच्च गुण माना गया है जो कि सीता के अन्दर विशेषत: दर्शनीय है ।

सीता में निर्भीकता की भी भावना प्रत्येक समय विद्यमान मिलती है । लङ्का में स्थित रहने पर भी वह प्रति क्षण रावण को आगामी विपत्ति के लिए सचेत करती रहती हैं । यद्यपि सीता ने रावण के साथ अति अल्प तर्क किये, किन्तु वे भी अत्यन्त स्पष्ट हैं -" अपने इस निन्दनीय कृत्य के लिए क्या तुम लज्जित नहीं हो कि पति की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी का अपहरण करके लाये हो ।[२] तुम अपने आपको कुबेर का भाई बताते हो, जिनको सभी देव नमस्कार करते हैं अत: तुम अशुभ करना चाहते हो ।[३] वे पुन: रावण से कहती हैं कि तुम मुझे राम को देकर उनके साथ मैत्री स्थापित कर लो । यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो राम की शरण में जाकर उनसे क्षमा याचना कर लो ।"[४]

साथ ही कुछ अवसर ऐसे भी आये जब कि सीता ने राम के साथ भी स्पष्ट वार्तालाप किया । राम वनवास के समय जब सीता से घर में रहने को

---

१. सा वेपमाना पतिता प्रवाते कदली यथा ।

—वाल्मीकि रामायण ५।२५।८

२. न व्यपत्रपसे नीच कर्मणानेन रावण । ज्ञात्वा विरहिता यो मां चोरयित्वापलाय

—वाल्मीकि रामायण ३।५३।३

३. कथं वैश्रवणं देवं सर्वदेवनमस्कृतम् ।
भ्रातरं व्यपदिश्य त्वमशुभं कर्तुमिच्छसि ।।

—वाल्मीकि रामायण । ३।४८।२१

४. साधु रावण रामेण मां समानय दु:खिताम् । .... ।
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् । मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि

—वाल्मीकि रामायण ५।२१।१८—२१

कहते हैं — " तुम यहीं पर व्रत उपवास एवं विधि पूर्वक देवताओं का पूजन तथा मेरे पिता राजा दशरथ एवं मेरी वृद्ध माता कौसल्या की वन्दना आदि धर्मों को करती हुई कहती हैं कि अपने बड़ों का सम्मान करो ।"[१]

तब सीता राम से कहती हैं कि — " इस से मरने के उपरान्त पिता पुत्र, आत्मा, माता एवं सखी आदि कोई भी नारी के काम नहीं आते हैं, केवल पति ही उनका एक आश्रय रह जाता है ।"[२] वह कहती हैं कि मैं स्वार्थी नारी रही हूं अपितु —" नित्य वन्य फल मूल को खाती हुई मैं कभी भी आप को कष्ट प्रदान नहीं करूंगी ।"[३]

सीता के शब्दों में भारतीय नारी का आदर्श स्पष्ट परिलक्षित होता है — " वानर, हाथी एवं मृगों से घिरे हुए घने वन में आपकी आज्ञानुसार आचरण करने वाली, मैं पितृ गृह के समान निवास करूंगी ।[४]

सीता के स्वभाव का द्वितीय परीक्षण राम के हरिण के पीछे चले जाने पर, होता है । राम के स्वर में सहायता की ध्वनि सुनायी पड़ती है किन्तु लक्ष्मण सीता को एकाकी छोड़कर जाना अनुचित समझते हैं किन्तु नारी हृदय की दुर्बलता और भावावेश के कारण सीता लक्ष्मण पर आरोप लगाने

---

१. याते च मयि कल्याणि वन मुनिनिषेवितम् । व्रतोपवासपरया भवितव्यं त्वयान
कल्यमुत्थाय देवानां कृत्वा पूजां यथाविधि।वन्दितव्यो दशरथ:पितामम जनेश्वर:
माता च मम कौसल्या वृद्धा संतापकर्शिता ।धर्ममेवाग्रत: कृत्वा त्वत्त: सम्मानमर्हति
—वाल्मीकि रामायण २।२६।२६-३१

२. न पिता नात्मजोनात्मा न माता न सखीजन: । इह प्रेत्य च नारीणां पति-
रेको गति: सदा । —वाल्मीकि रामायण २।२७।६

३. फलमूलाशना नित्यं भविष्यामिन संशय: ।
न ते दु:खं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा ।
—वाल्मीकि रामायण २।२७।१६

४. अहं गमिष्यामि वनं सुदुर्गमं मृगायुतं वानरवारणैश्च ।
वने निवत्स्यामि यथा पितुर्गृहे तवैव पादावुपगृह्य संमता ।।
—वाल्मीकि रामायण २।२७।२२

लगती है -" तुम भाई के रूप में एक शत्रु हो, केवल मेरी रक्षा के लिए राम की मृत्यु की कामना कर रहे हो।"[१]

हनुमान को अपनी चूड़ामणि देने के पहले सीता जनस्थान में लक्ष्मण के प्रति कहे गये अपशब्दों के लिए पश्चाताप करती है - " जो लक्ष्मण राम को पिता के समान तथा मुझे माता के समान मानते हैं। वह लक्ष्मण मुझ लज्जिता के बारे में न जान सकेंगे।"[२]

राम के विरह में व्यथित होने पर भी सीता रावण आदि दुष्ट पुरुषों से अपने सतीत्व की रक्षा करने में सजग रहीं। हनुमान के लङ्का पहुंचने पर भी उन्हें विश्वास नहीं होता है कि वे राम के सेवक हैं। अत: सीता उनसे राम की प्रसिद्धि का वर्णन करने का आग्रह करती है। तत्पश्चात्हनुमान के कथन से सन्तुष्ट होकर वे राम द्वारा प्रेषित सन्देश को ग्रहण कर, अपना सन्देश प्रदान करती है।

दीर्घ प्रतीक्षा के उपरान्त राम के मिलने पर भी जब राम सीता से अग्नि परीक्षा देने को कहते हैं तो सीता राक्षसों एवं वानरों की उस सभा में अश्रुपूर्ण शब्दों में कहती है - " मेरा शरीर मेरे अधिकार में नहीं था। अत: उसका स्पर्श दूसरों के द्वारा किया गया है किन्तु मेरा मन जो मेरे अधीन है वह सदैव तुम्हारी ओर ही आसक्त रहा है।"[३] राम की प्रदक्षिणा करके, अग्नि

---

१. तमुवाच ततस्तत्र क्षुभिता जनकात्मजा। सौमित्रे मित्ररूपेण भ्रातस्त्वमसि शत्रुवत्।।
यस्त्वमस्यामवस्थायां भ्रातरं नाभिपद्यसे। इच्छसि त्वं विनश्यन्तं रामं लक्ष्मणमत्कृते
— वाल्मीकि रामायण ३।४५।५-६

२. पितवद्वर्तते रामे मातृवत् मा समाचरत्। ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मण:। —वाल्मीकि रामा० ५।३८।५८

३. मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी।।
—वाल्मीकिरामायण ६।११७।६

के समीप पहुंचकर सीता ने कहा - " जिस प्रकार मेरा हृदय कभी राम से अलग नहीं रहा है उसी प्रकार संसार की साक्षी अग्नि मेरी सब ओर से रक्षा करें ।"[१]

अन्त में शुद्ध चरित्रवाली एवं स्वर्ण कान्ति के समान तप्त सती सीता को देखकर राम ने कहा - " सूर्य की कान्ति की भांति सीता भी मुझसे पृथक् नहीं है ।"[२]

पुन: अयोध्या वापस आकर सीता अधिक दिनों तक शान्तिपूर्वक न रह सकीं क्योंकि लोकापवाद के कारण राम ने लक्ष्मण द्वारा सीता को पुन: वनवास प्रदान कर दिया । यह सीता के द्वितीय अरण्य निवास पहले की भी भांति न था, एक तो इसमें वे एकाकी थीं, दूसरे लङ्का की भांति पुन: राम-मिलन की आशाभी न थी । वे सदैव इसी चिन्ता में व्यग्र रहतीं कि अरण्य-वासी ऋषियों को वे अपने निष्कासन का क्या कारण बतायें । वे अपने परिवार की शृंखला को आगे बढ़ाने के लिए आत्महत्या भी करने में असमर्थ थीं । ऐसे समय लक्ष्मण (द्वारा) सीता ने अपने पति राम को जो सन्देश भेजा वह अत्यन्त मार्मिक है - " जिस प्रकार से यह मेरे विपरीत लोकापवाद है उसी में स्थित , हे रघुनन्दन नारी का पति देवता है, पति ही बन्धु है और पति ही गुरु है ।"[३]

---

१. यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वत: पातुपावक: ।
—वाल्मीकि रामायण ६।११६।२५

२. अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ।
—वाल्मीकि रामायण ६।११८।१८

३. यथापवाद: पौराणां तथैव रघुनन्दन ।
पतिर्हि देवता नार्या: पतिर्बन्धु: पतिर्गुरु: ।।
—वाल्मीकि रामायण ७।४८।१७

अन्त में लव और कुश के द्वारा अश्वमेध का घोड़ा पकड़ लेने पर राम के वन यात्रा करने पर पुन: उनको सीता का दर्शन होता है। तत्पश्चात् अपनी शुद्धता का अग्नि में परीक्षण कराकर सीता रसातल में प्रविष्ट हो जाती है। राम सीता की स्मृति में उनकी एक प्रतिमा स्थापित करा देते हैं।

यद्यपि अन्य मानवीय स्त्रियों की भाँति सीता में भी कुछ दुर्बलतायें दिखाई पड़ती हैं किन्तु उनका आदर्श, पति भक्ति, नि:स्वार्थभावना, पवित्रता न्यायवादिता एवं सत्यवादिता आदि गुणों को देखते हुए वे एक श्रद्धेय नारी के रूप में मानी गयी हैं।

मन्दोदरी - लङ्का में निवास करने वाली नारियों में, मन्दोदरी रावण की मुख्य रानी थी, जो अद्वितीय सुन्दरी, पति प्रेम एवं भक्ति में लीन में रहने पर भी कर्तव्य-परायण थी। उसके सौन्दर्य को देखकर ही हनुमान भी उसमें सीता का भ्रम कर लेते हैं —

" हनुमान ने मुक्ता-मणि से मिले हुए आभूषणों से सुसज्जित, तथा अपनी शोभा से उत्तम भवन को सुशोभित करती हुयी, श्वेत वर्णवाली तथा स्वर्ण की कान्ति वाली, अन्त:पुर की प्रिय रानी, एवं सौन्दर्यशालिनी मन्दोदरी को शयन करते हुए देखा।"[1]

यद्यपि सीता का अपहरण करने के पश्चात् रावण सीता की ओर अपनी दृष्टि जमाये हुए थे, अत: मन्दोदरी सदैव पति से उचित एवं अनुचित कार्य का विवेचन करके, सीता को वापस लौटाने का आग्रह करती है किन्तु कामान्ध

---

१. मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम्।
विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम्॥
गौरीं कनकवर्णाभामिष्टामन्त:पुरेश्वरीम्।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम्॥

—वाल्मीकि रामायण ५/१०/५१,५२.

एवं हठी रावण को उसका परामर्श उचित न लगा और अन्त में रावण की मृत्यु पर विलाप करती हुयी वह कहती है- 'तुम्हारे अन्तर में सीता से भी अधिक सुन्दरियाँ विद्यमान हैं। किन्तु काम के वश में हुए, वे तुम मोह से उन्हें नहीं समझ पा रहे हो। सीता न कुल में, न रूप में और न चातुर्य में, मुझसे अधिक है न मेरे सदृश है किन्तु मोहग्रस्त तुम उसे न समझ पाये हो। सभी प्राणियों की मृत्यु अकारण नहीं होती है, उसी प्रकार तुम्हारी मृत्यु का कारण मैथिली है।[१]

मन्दोदरी पुन: कहती है - 'मेरे पिता दानवों के राजा, मेरे स्वामी राक्षसों के ईश्वर हैं, मेरा पुत्र इन्द्र को भी जीतने वाला है, इस कारण मैं अत्यन्त गर्वपूर्ण हूँ क्योंकि मेरे रक्षा करने वाले, शत्रु का मन्थन करने में समर्थ, कठोर एवं प्रसिद्ध बल एवं पुरुषार्थ वाले हैं।'[२]

अत्यन्त विषादपूर्ण स्थिति में भी मन्दोदरी रावण की मृत्यु के लिए कहती है -' तुमने मेरी कही बात को नहीं माना था, उसी का आज यह परिणाम है। अपने ऐश्वर्य, देह एवं सम्बन्धी जनों के विनाश के लिए तुमने सीता के प्रति अभिलाषा करके अनुचित किया क्योंकि वह अरुन्धती के तप की अग्नि से दग्ध हो गये।'[३]

---

१. सन्त्यन्या: प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्तत: ।
अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ।।
न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन मैथिली ।
मयाधिका वा तुल्या वा तत्तु मोहान्न बुध्यसे ।।
सर्वदा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षण: ।
तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षण: ।। -वाल्मीकि रामायण ६।१११।२७,२८,२

२. पिता दानव राजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वर: ।।
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् ।
दृप्तारिमथना: क्रूरा: प्रख्यात-बलपौरुषा: ।। ६। वाल्मीकि रामा०६।१११।३

३. उच्यमानं न गृह्णासि तस्येयं व्युष्टिरागता ।अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुंग
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च । अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्या-
श्चापि दुर्मते ।।वा०रा०६।१११।१६,२०

राम के लिए भी वह कहती है — "सत्य पराक्रम वाले विष्णु ने मनुष्य रूप को धारण कर लिया है, बानरों के आकार में समस्त देवों से घिरे हुए शोभा से युक्त, एवं संसार की हित कामना चाहने वाले सबके शासक राम हैं।"[१]

मन्दोदरी के शब्दों में उनकी विद्वता स्पष्ट परिलक्षित होता है।

तारा— तारा सुषेण नामक बानर की कन्या एवं वीरवर बालि की ज्येष्ठ महिषी थी। वह अत्यन्त बुद्धिमती एवं निपुण थी, वह अपने पति को प्राय: सलाह देती थी किन्तु उसका हठी पति उसके परामर्श के अनुसार आचरण नहीं करता था।

बालि की, अपने भाई सुग्रीव के साथ शत्रुता, हो जाने पर बालि ने सुग्रीव को घर से निकाल कर उसकी पत्नी "रुमा" पर अधिकार कर लिया।

सीताहरण के पश्चात् रामलक्ष्मण से सुग्रीव की मित्रता हो गयी एवं राम की सहायता से सुग्रीव ~~ने~~ अपने अग्रज का वध कर दिया।

जिस समय बालि ने सुग्रीव से युद्ध करने के लिए जारहा था उस समय भी वह उसे परामर्श देती है — "हे वीर! तुम क्षत्रिय बल की सहायता लेने वाले भाई के साथ युद्ध मत करो। मैं तुमको उन राम के साथ मित्रता करने के योग्य समझती हूं।"[२] किन्तु पति के न मानने पर "मन्त्र को जानने वाली

---

१. मानुषं रूपमास्थाय विष्णु: सत्यपराक्रम: ।।
सर्वै परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतै: ।
सर्वलोकेश्वर: श्रीमाँल्लोकानां हितकाम्यया ।।
—वाल्मीकि रामायण ६।१११।१३।१४

२. विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा ।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ।।
—वाल्मीकि रामा० ४।१६।१२

तथा विजय की कामना करने वाली, पति की कल्याण पूजा (स्वस्त्ययन) करके स्त्रियों के सहित, शोक ग्रस्त तारा अन्त:पुर में प्रविष्ट हो गयी ।"[१]

बालि की मृत्यु के बाद तारा-विलाप बड़ा व्याकुल करने वाला है । वह शोकाकुल अवस्था में राम पर एक मर्मविदारक आरोप भी कर बैठती है : "अरे, दूसरे के साथ युद्ध करते हुए बालि को जो उन्होंने मारा, इस अनुचित कार्य पर क्या राम को अनुताप-सन्ताप न होगा ?[२]

तारा पति के शोक में मरना चाहती है, हनुमान के कहने पर भी न तो वह राज्य लेती है और न पुत्र को सिंहासनासीन करने को तैयार करती है । वह राम से अनुरोध करती है कि वे तारा को भी मार दें जिससे वह बालि के पास पहुँच जाये ।

वहाँ पर भी सीता की याद दिलाकर वह मर्मछेदक वाणी बोलती है— "जिस प्रकार सीता के बिना राम पर्वत-प्रान्तर में परितप्त होते हैं । क्या तारा के बिना बालि भी दु:खित नहीं होगा ? (युवा) कुमार पुरुष स्त्री के बिना जो दु:ख पाता है, उसे राम क्या नहीं जानते हैं ? राम उसे मार डालें—चिन्ता न करें कि तारा के बध से उन्हें स्त्री हत्या को दोष लगेगा , नहीं, वह उसे बालि की आत्मा ही समझ कर मार डाले ।"[३]

---

१. तत: स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्विजयैषिणी ।
अन्त:पुर सह स्त्रीभि: प्रविष्टा शोकमोहिता ।।
—वाल्मीकि रामायण ४।१६।१२

२. अस्थाने बालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च ।
न संतप्यति काकुत्स्थ: कृत्वा कर्म सुगर्हितम् ।। बाल्मीकि रामा०४।२०।१५

३. ऋश्ये नरेन्द्रस्य तटावकाशे विदेहकन्या रहितो यथा त्वम् ।।
त्वं वेत्थ तावद्वनिता विहीन: प्राप्नोति दु:खं पुरुष: कुमार: ।
तत्त्वं प्रजानञ्जहि मां न बाली दु:खं ममादर्शनजं भजेत । ।
यच्चापि मन्येत भवान्महात्मा स्त्रीघातदोषस्तु भवेन्न मह्यम् ।
आत्मेयमस्येति हि मां जहि त्वं न स्त्रीवध: स्यान्मनुजेन्द्र पुत्र
—वाल्मीकि रामा० ४।२४।३५,३६,३७

तारा की बुद्धिमत्ता का सुन्दर निदर्शन उस समय होता है जबकि राम की विरह व्यथा से उद्वेलित होकर लक्ष्मण सरोष सुग्रीव के द्वार पर जाते हैं। भोगासक्त वानरराज स्तब्ध होकर अपनी बुद्धि प्रवीणा पत्नी तारा को क्रुद्ध रामानुज के पास भेजता है। तारा को देखते ही संकोच वश लक्ष्मण का आधा क्रोध कम हो जाता है। तारा कहती है - " क्रोध करने का समय नहीं है और अपने स्वजन (सुग्रीव) पर क्रोध किया भी नहीं जाता।"[१]

वह कहती है कि यद्यपि सुग्रीव को राम का कार्य विस्मृत नहीं हुआ किन्तु अभी तक वह भोगासक्त था और कामान्ध पुरुष धर्म-अर्थ विचार नहीं कर पाता है। जब विश्वामित्र जैसे महर्षि भी काम पाश में बंधकर बैठे तो सुग्रीव तो चंचल प्रकृति वाला वानर ही ठहरा।[२]

राम की कृपा से सुग्रीव ने रुमा और उसे (तारा) को पाया है किन्तु उसकी तृष्णा अभी मिटी नहीं है राम उस अतृप्त को क्षमा करें।[३]

तारा की वाक्-चातुरी से प्रभावित होकर लक्ष्मण सुग्रीव की प्रशंसा करके उनसे क्षमा याचना करने लगते हैं।

यद्यपि तारा पतिव्रता एवं सती साध्वी नारी नहीं है किन्तु अपनी बुद्धि चातुरी एवं वाक् पटुता के लिए उसका चरित्र महत्त्वशाली है।

महाभारत-

धर्म की विजय और अधर्म की पराजय ही सम्पूर्ण महाभारत का मूल है- इसी आदर्श से महाभारत की प्रमुख नारियां, गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, दमयन्ती,

---

१. न कोपकाल: क्षितिपालपुत्र न चापि कोप: स्वजने विधेय: ।

— वाल्मीकि रामायण ४।३३।५१

२. महर्षयो धर्मतपोभिरामा कामानुकामा: प्रतिबद्धमोहा: ।
अयं प्रकृत्या चपल: कपिस्तु कथं न सज्जेत सुखेषु राजा ।।

— वाल्मीकि रामायण ४।३३।४७

सीता एवं सावित्री ओत-प्रोत हैं।

गान्धारी- इसमें सन्देह नहीं है कि महाभारत की नारियों में गान्धारी अपनी धर्मप्रियता एवं कर्त्तव्य निष्ठा के लिए प्रसिद्ध है। वह प्रत्येक क्षण धर्म को दृष्टि में रखकर कार्य करती और सभी को धर्मोपदेश देने को तत्पर रहती है। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जब उसके सौ पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियों का अन्त हो गया, उस समय भी वह अपनी नैतिकता से पूर्ण भावना को व्यक्त करने में समर्थ रही। वे श्रीकृष्ण से कहती है कि- 'गोविन्द! देखो, मेरे पुत्रों की ये सौ चन्द्राकार चिह्नों से सुशोभित ढालें, सूर्य के समान तेजस्विनी ध्वजायें, स्वर्णमय कवच, सोने के निष्क तथा शिरस्त्राण, घी की उत्तम आहुति पाकर प्रज्वलित हुयी अग्नि के समान पृथ्वी पर देदीप्यमान हो रहे हैं।'[1]

'यद्यपि दु:सह के प्राण चले गये हैं तो भी वह सोने की माला और तेजस्वी कवच से सुशोभित हो अग्नि युक्त श्वेत पर्वत के समान जान पड़ता है[2]।'

'दशार्हनन्दन केशव! जिसे बल और शौर्य में अपने पिता से तथा तुमसे भी डेढ़ गुना बताया जाता था, जो प्रचण्ड सिंह के समान अभिमान में भरा रहता था, जिसने अकेले ही मेरे पुत्र के दुर्भेद्य व्यूह को तोड़ दिया था, वही अभिमन्यु दूसरों की मृत्यु बन कर स्वयं भी मृत्यु के आधीन हो गया।'[3]

---

१. शतचन्द्राणि चर्माणि ध्वजांश्चादित्यवर्चसः।
रौक्माणि चैव वर्माणि निष्कानपि च काञ्चनान्॥
शीर्षत्राणानि चैतानि पुत्राणां मे महीतले।
पश्य दीप्तानि ~~चैतानि कुरुणां मे~~ गोविन्द पावकान् सुहुतानिव॥
-महाभारत-स्त्रीपर्व १८।१७,१८

२. शातकौम्भ्या स्रजा भाति कवचेन च भास्वता।
अग्निनेव गिरिः श्वेतो गतासुरपि दु:सहः॥-महाभारत, स्त्रीपर्व १६।२१

३ अध्यर्धगुणमाहुर्यं बले शौर्ये च केशव।
पित्रा त्वया च दाशार्ह दृप्तं सिंहमिवोत्कटम्॥
यो बिभेद चमूमेको मम पुत्रस्य दुर्भिदाम्।
स भूत्वा मृत्युरन्येषां स्वयं मृत्युवशं गतः॥
-महाभारत-स्त्रीपर्व, २०।१,२

गान्धारी की पति भक्ति विश्व विख्यात है क्योंकि अपने पति धृतराष्ट्र के जन्मान्ध होने के कारण, अपने नेत्रों को भी आजीवन बन्द रखा ।

यद्यपि गान्धारी ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया किन्तु ये पुत्र अपनी गुणवती माता की आशाओं को पूर्ण न कर सके । हस्तिनापुर की सभा में युधिष्ठिर के द्वारा राज्य, भाई एवं पत्नी तक को जुयें में हार जाने पर, प्रत्येक ने यहां तक कि राजा धृतराष्ट्र ने भी आनन्दानुभुति की किन्तु केवल गान्धारी ही उस दिन शोक-ग्रस्त थी । पाण्डवों के अधार्मिक कार्यों तथा अपने पुत्रों के दुर्व्यवहार को देखकर गान्धारी ही उस दिन शोक-ग्रस्त थी । पाण्डवों के अधार्मिक कार्यों तथा अपने पुत्रों के दुर्व्यवहार को देखकर गान्धारी ने अपने पति से दुर्योधन को राज्य से निकालने का अनुरोध किया ।

गान्धारी के हृदय में अपनी सन्तान के लिए वात्सल्य भावना विद्यमान थी किन्तु फिर भी उसने न्याय और बुद्धिमत्ता का आदेश कर उसे कभी भी कुमार्ग की ओर प्रेरित नहीं किया । अपनी स्पष्टवादिता के कारण वह अपने बालकों के अन्याय एवं त्रुटियों को स्पष्टत: व्यक्त करती रहती है । जब हस्तिनापुर में श्रीकृष्ण जी पाण्डवों का शान्तिप्रस्ताव लेकर आते हैं तो दुर्योधन उसे अस्वीकार करता है उस समय गान्धारी नि:संकोच रूप से राजसभा में जाकर दुर्योधन को उपदेश देती है -- "बेटा युद्ध करने में कल्याण नहीं है । उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है, तो सुख कहां से होगा । यदि तुम अपने मन्त्रियों के सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवों का न्यायोचित भाग उन्हें दे दो"। ..... संसार में लोभ करने से किसी को सम्पत्ति नहीं मिलती । अत: तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवों से सन्धि कर लो ।" कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था । इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं एवं वे कृष्ण और अर्जुन की महिमा भी जानती थीं ।

देवी गान्धारी के सौ पुत्रों में से एक भी जीवित न रहने से वे ब दु:खिता थीं किन्तु जब उसने द्रोपदी को पृथ्वी पर शोक से परिप्लुत होकर

रोते देखा, तो वह अपना दु:ख भूलकर द्रौपदी को सान्त्वना देने लगी —' हे पुत्रि ! इस प्रकार शोकार्त न हो । देखो मैं भी तुम्हारी ही भाँति दु:खिता हूं । मैं समझती हूं कि वह जो जनसंहार हुआ है, दैव की प्रेरणा से हुआ है । यह अवश्यम्भावी था । हे कृष्णे ! युद्ध में मरने वालों के लिए शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे स्वर्ग चले जाते हैं अत: अशोच्य हैं । जो मेरी स्थिति है वही तेरी है । हमको कौन आश्वासन देगा । कृष्णे ! मेरे ही अपराध से इस श्रेष्ठ कुल का विनाश हुआ है ।'[१] यह आश्वासन देवी गान्धारी के हृदय की विशालता को व्यक्त करता है ।

कुन्ती— सम्पूर्ण महाभारत में कुन्ती आत्मत्याग, धैर्य, तपस्या एवं अनासक्ति की भावना से पूर्ण दिखाई पड़ती है । वह राजा की पुत्री एवं हस्तिनापुर के राजा पाण्डु की पत्नी थी । उनके तीन पुत्र युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन थे एवं दो सौतेले पुत्र नकुल एवं सहदेव थे । पतिभक्ता कुन्ती ने अपने पति के साथ अनेक वर्षों तक वन में निवास किया था । पति की मृत्यु के बाद से कुन्ती देवी का जीवन बराबर कष्ट में बीता । परन्तु ये बड़ी ही विचारशीला तथा धैर्यवती थीं । अत: इन्होंने कष्टों की कुछ भी चिन्ता नहीं की और अन्त तक धर्म पर आरूढ़ रहीं । दुर्योधन के अत्याचारों का भी यह निश्चल होकर सहन करती रहीं । इनका स्वभाव बड़ा ही कोमल तथा दयालु था ।

कुन्ती देवी का सत्यप्रेम भी आदर्श था । ये विनोद में भी कभी झूठ नहीं बोलती थीं । भूल से भी इनके मुख से जो बात निकल जाती थी उसका वे प्रयत्नपूर्वक पालन करती थीं । अर्जुन और भीम स्वयंवर में द्रौपदी को जीतकर

---

१. यथैवाहं तथैव त्वं को नाकश्वासयिष्यसि ।
मयैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम् ।।

— महाभारत, स्त्री पर्व, १५।४४

जब माता के पास लाये और कहा 'माता ! आज हम यह भिक्षा लाये हैं।' तब कुन्ती ने बिना देखे ही कह दिया-'बेटा ! पांचों भाई मिलकर इसका उपभोग करो।'[१] किन्तु जब इन्हें मालूम हुआ कि ये एक कन्या लाये हैं तब वे बड़ी असमंजस में पड़ गयीं। इन्होंने सोचा-'यदि मैं अपनी बात वापस लेती हूं तो असत्य का दोष लगता है, और यदि अपने पुत्रों को उसी के अनुसार चलने के लिए कहती हूं, तो सनातन मर्यादा का लोप होता है।' पांच भाइयों का एक स्त्री से विवाह हो -यह पहले कभी भी नहीं था। ऐसी स्थिति में निश्चय न कर सकने के कारण कुन्ती देवी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयीं। अन्त में उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर की सम्मति पूछी और उन्होंने भी इनसे सत्य पर दृढ़ रहने को कहा। पीछे राजा द्रुपद की ओर से आपत्ति होने पर वेदव्यास जी ने द्रौपदी के पूर्वजन्मों की कथा कहते हुए उन्हें समझाया कि शङ्कर के वरदान से ये पांचों ही द्रौपदी से विवाह करेंगे। इस प्रकार पांचों के साथ द्रौपदी का विवाह होने पर कुन्ती की सत्यनिष्ठा की विजय हुयी।

कुन्ती की नि:स्वार्थ भावना विशेषत: दृष्टव्य है। पाण्डवों के वनवास एवं अज्ञातवास के समय ये उनसे अलग हस्तिनापुर में ही रहीं और वहीं से इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अपने पुत्रों को क्षत्रिय धर्म पर स्थिर रहने का सन्देश भेजा। इन्होंने विदुला और सञ्जय का दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दों में उन्हें कहला भेजा -'पुत्रों जिस कार्य के लिए क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती हैं, उस कार्य के करने का समय आ गया है।'[२]

---

१. कुटीगता सात्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

—महाभारत १।१९०।२

२. एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदर:।
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागत:॥

— महाभारत, उद्योगपर्व १३६।९,१०

महाभारत के युद्ध के समय भी वे वहीं रहीं और युद्ध समाप्ति के बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट पद पर अभिषिक्त हुए एवं इन्हें राजमाता बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय कुन्ती ने पुत्र वियोग से दु:खी अपनी जैठ-जैठानी की सेवा का भार अपने ऊपर ले लिया तथा द्वेष एवं अभिमान रहित होकर उनकी सेवा में लगी रहीं। जब दोनों युधिष्ठिर से अनुमति लेकर वन जाने को उद्यत हुए तब युधिष्ठिर आदि के समझाने पर भी कुन्ती उनके पीछे चली गयीं। जीवन भर दुख एवं क्लेश भोगने पर भी अन्त में सुख के समय सांसारिक ऐश्वर्य की अवहेलना कर स्वेच्छा से त्याग, सेवा एवं तपस्या के व्रत को धारण कर लिया। वह भीम से कहती है --मैं अपने पति के जीवन काल में बहुत ही भोगैश्वर्य प्राप्त कर चुकी हूं। अब मुझको भोग की इच्छा नहीं है।' वह अपने पुत्रों को औचित्य एवं मर्यादा की शिक्षा देती हैं --' धर्म में अपनी बुद्धि रखो , सदा उदार-चेता बनो।'[1]

द्रौपदी -- द्रौपदी पञ्चाल नरेश राजा द्रुपद की अयोनिजा पुत्री थी। इनकी उत्पत्ति यज्ञवेदी से हुयी थी। इनका रूप लावण्य अनुपम था। इनके जन्म के समय आकाशवाणी ने कहा था - ' देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए, क्षत्रियों के संहार के उद्देश्य से इन रमणी रत्न का जन्म हुआ है। इनके कारण कौरवों को बड़ा भय होगा।'[2] पूर्वजन्म में दिये हुए भगवान् शङ्कर के वरदान से

---

१. ' धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च।'

—महाभारत—आश्रमवासपर्व १७।२१

२. या बिभर्ति परं रूपं यस्या नास्त्युपमा भुवि।
देवदानवयक्षाणामीप्सिता देवरूपिणीम्॥
तां चापि जातां सुश्रोणीं वागुवाचाशरीरिणी।
सर्वयोषिद्वरा कृष्णा निनीषुः क्षत्रियान् क्षयम्॥

—महाभारत आदि पर्व १६६।४७,४८

इन्हें इस जन्म में पांच पति प्राप्त हुए । अकेले अर्जुन के द्वारा स्वयंवर में जीती जाने पर भी माता कुन्ती की आज्ञा से द्रौपदी ने पांचों भाइयों से विवाह किया था ।

द्रौपदी आदर्श पत्नी थी । राजसूय यज्ञ से लौटने पर दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा था -- " राजन् उस यज्ञ में द्रौपदी पहले स्वयं भोजन करके इस बात की देखभाल करती थी कि कुबड़ों और बौनों तक में सब लोगों में कौन खा चुका और किसको भोजन नहीं मिला ।"[१]

द्रौपदी उच्चकोटि की पतिव्रता एवं भगवद्भक्ता थीं । इनकी भगवान् कृष्ण के चरणों में अविचल प्रीति थी । ये उन्हें अपना रक्षक, हितैषी एवं आत्मीय तो मानती ही थीं, उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्ता में भी इनका पूर्ण विश्वास था । जब कौरवों की सभा में दुष्ट दु:शासन ने इन्हें अनावृत करना चाहा तो सभासदों के न बोलने पर, अमानुषी अत्याचार को रोकने के लिए अत्यन्त आतुर होकर श्रीकृष्ण का आह्वान किया -- " हे गोविन्द ! हे द्वारकावासी ! हे गोपीजन प्रिय ! हे केशव ! क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौरवों के द्वारा अपमानित हो रही हूं । हे नाथ ! हे रमापति ! हे व्रजेश ! हे संकटों का नाश करने वाले जनार्दन ! मुझ कौरव रूपी समुद्र में डूबती हुयी अबला का उद्धार करो । हे महायोगी ! हे विश्वात्मा ! विश्वभावन श्रीकृष्ण ! कौरवों के बीच विपन्नावस्था को प्राप्त मुझ शरणागत की रक्षा कीजिए ।"[२]

उसकी पुकार सुनकर धर्मरूप से द्रौपदी के वस्त्रों में छिपे हुए श्रीकृष्ण ने उसकी लज्जा की रक्षा ।

---

१. महाभारत सभापर्व -- ५२।४८

२. गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजन प्रिय ।।
कौरवै परिभूता मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन । कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन्विश्व-भावन ।।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम् ।।
-- महा० सभापर्व६८।४१--४४

इसी प्रकार एक बार जब पाण्डव द्रौपदी के साथ काम्यक वन में रह रहे थे उस समय दुर्योधन के भेजे हुए दुर्वासा अपने दस हजार शिष्यों सहित पाण्डवों के पास पहुंचे । चूंकि तत्काल द्रौपदी और पांचों पाण्डव भोजन करके विश्राम कर रहे थे अत: महाराज युधिष्ठिर को सूर्य द्वारा प्राप्त पात्र भी अपनी युक्ति में समर्थ न हुआ । ऋषि के शाप के भय की आशङ्का से द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की पुन: स्तुति की -"तुम्हीं भूतों के आदि और अन्त हो, तुम्हीं सब के परम आश्रय हो । तुम परात्पर हो । ज्योतिर्मय विश्वात्म हो, सब ओर मुंह वाले परमेश्वर हो । ज्ञानी लोग तुमको ही इस जगत् का परमबीज तथा सम्पूर्ण सम्पदाओं की निधि बतलाते हैं । हे देवेश ! यदि तुम मेरे रक्षक हो तो मुझे समस्त आपदाओं से भी भय नहीं । जैसे तुमने पहले कौरव सभा में दु:शासन से मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम्हीं इस सङ्कट में मेरा उद्धार कर सकते हो ।"[१]

पुन: स्तुति सुन कर आये हुए भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी शरणागतवत्सलता का परिचय देकर द्रौपदी की रक्षा की ।

द्रौपदी में क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा दोनों का अभूतपूर्व सम्मिश्रण था । ये बड़ी बुद्धिमती और विदुषी भी थीं । इनका त्याग भी अद्भुत था । इनका पातिव्रत्य तो विख्यात है । जब इन्हें दुष्ट दु:शासन बाल खींचते हुए सभा में घसीट कर लाया, उस समय भी इन्होंने उन्हें डांटते हुए अपने पतियों के कोप का भय दिखाया और सारे सभासदों को धिक्कारते हुए द्रोण, भीष्म और विदुर जैसे सम्मान्य गुरुजनों को भी उनके मौन के लिए धिक्कारा । भरी सभा में अपमानित होने पर भी द्रौपदी की नैतिक विजय हुयी ।

---

१. त्वादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम् ।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतो मुख: ।।
त्वामेवाहु: परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम् ।
त्वयानाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि ।।
दु:शासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा ।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि ।।

— महाभारत वनपर्व, २६३।१४—१६

द्रौपदी वीर क्षत्राणी थी । राजसभा में हुए अपने अपमान के कारण वह सदैव सन्धि का विरोध करती रही तथा अपने तिरस्कार की याद दिलाकर अपने पतियों को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करती रही । जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव लेकर कौरवों के पास जाने लगे तो द्रौपदी ने अपने लम्बे लम्बे बालों को लेकर श्रीकृष्ण से कहा -" श्रीकृष्ण ! तुम सन्धि करने जा रहे हो सो तो ठीक है, परन्तु तुम मेरे केशों को न भूल जाना ।"[1] द्रौपदी ने यहां तक कह दिया कि " यदि पाण्डवों की युद्ध करने की इच्छा नहीं है तो कोई बात नहीं, अपने महारथी पुत्रों सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवों से सङ्ग्राम करेंगे तथा अभिमन्यु के सहित मेरे पांचों बली पुत्र उनके साथ लड़ेंगे ।"[2]

काम्यकवन में दुष्ट जयद्रथ द्वारा द्रौपदी हरण करने पर द्रौपदी ने उसे इतनी जोर का धक्का दिया कि वह कटे हुए वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ा । किन्तु पुन: संभल कर वह द्रौपदी को ले गया किन्तु बाद में भीम और अर्जुन के द्वारा जयद्रथ के पकड़े जाने, द्रौपदी ने दयापूर्वक उसे छुड़ा दिया । इनका पातिव्रत्य तेज अपूर्व था । दुर्योधन, दुश्शासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सभी को अपने दुष्कर्मों का परिणाम भोगना पड़ा था । महाभारत युद्ध में कौरवों के नाश का मूल सती द्रौपदी का अपमान ही था । अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पांचों पुत्रों की हत्या की जाने पर, द्रौपदी ने द्रोण पुत्र को मार-कर उसकी मणि लाने के लिए भीमसेन से कहा । पाण्डवों में अनेक असाध्य कर्मों के सम्पादन के कारण भीमसेन के पराक्रम पर द्रौपदी को अधिक विश्वास था । भीमसेन अश्वत्थामा को मारने गये तो बिना मारे ही व्यास जी के समझाने से मणि लेकर चले आये जिससे कि उनका यश समाप्त हो जाये ।

---

१. महाभारत-उद्योगपर्व ८२।२४

२. वही ८२।२४-३२

द्रौपदी का क्रोध शान्त हो गया उसने कहा -" अच्छा ही किया जो आपने अश्वत्थामा को छोड़ दिया। वह गुरु पुत्र है। मेरे गुरु के समान है। मणि ले लेने से बदला चुक गया। अब इस मणि को महाराज युधिष्ठिर सिर पर धारण करें।"[१] अपने पुत्रों का बध करने वाले अश्वत्थामा को भी गुरु पुत्र समझकर उसके प्रति गुरुभाव व्यक्त करना द्रौपदी की विशाल हृदयता एवं क्षमाशीलता का द्योतक है।

पुराणकाल में मार्कण्डेय पुराण में चित्रित मदालसा का चरित्र उल्लेखनीय है। मदालसा विश्वावसु की सुन्दरी, गुणवती, शीलवती एवं पतिव्रता भार्या थी। साथ ही वह ब्रह्मवादिनी महिषी भी थी। एक बार जब वह उद्यान में क्रीड़ा कर रही थी उस समय पातालकेतु नामक दानव उसका हरण करके ले गया था, वहां उसकी मित्रता विन्ध्यवत् की कन्या कुण्डला से हो गयी। ऋतध्वज नाम के सुन्दर राजकुमार ने पातालकेतु का अन्त करकर मदालसा से विवाह कर लिया। उसी समय मदालसा द्वारा कहा गया कथन नारी के उद्गारों का सुन्दर चित्रण करता है —

" पति को सदा भार्या की भृति और रक्षा करनी चाहिए। धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि में पत्नी पति की सहगामिनी है। जब पति पत्नी परस्पर वशीभूत होते हैं, तभी धर्म, अर्थ, काम तीनों का मेल होता है? पत्नी के बिना पति धर्म, अर्थ या काम कैसे पा सकता है, क्योंकि उसी में तीनों की निधि है? वैसे ही पति के बिना पत्नी भी धर्म, अर्थ और काम में समर्थ नहीं होती। यह त्रिवर्ग दाम्पत्य-जीवन के ही आधीन है। बिना पत्नी के पुरुष देवता, पितर, अतिथि और अपने भृत्यों ~~के ही आधीन है। बिना~~

---

१. केवलानृण्यमाप्तास्मि गुरुपुत्रो गुरुर्मम।
शिरस्येतं मणिं राजा प्रतिबध्नातु भारत ॥

— महाभारत सौप्तिक पर्व १६।३४

का पूजन नहीं कर सकता। पुरुष घर में धन ले भी आवे तो भी पत्नी के बिना या निन्दित स्त्री के हाथ में पड़कर उसका क्षय हो जाता है। बिना पत्नी के काम का सुख नहीं मिल पाता। यह तो प्रत्यक्ष ही है। दम्पति की एक साथ धर्म चर्या से ही वेद धर्मों का अनुष्ठान किया जा सकता है। जैसे सन्तति से पितरों को, अन्न से अतिथियों को, पूजा से देवों को तृप्त किया जाता है, वैसे ही उसी भाव से पुरुष पत्नी की रक्षा करता है।"[1]

मदालसा पुराण युग की नारी-भावनाओं की प्रतिनिधि है। पुराण लेखक ने मदालसा को उस युग की पुरन्ध्रि नारियों का प्रतीक मानकर उसके द्वारा गृहस्थ धर्म, आचार धर्म और राजतन्त्र की भी व्याख्या कराई है।

एक दिन अचानक पाताल केतु के छोटे भाई तालकेतु ने बहाना बनाकर ऋतध्वज का कण्ठभूषण माँगकर मदालसा के पिता शत्रुजित के राज्य में ऋतध्वज की मृत्यु की असत्य सूचना दे दी जिसे सुनकर शोक के कारण मदालसा ने अपने प्राण दे दिये। तालकेतु ने पुन: अपनी कुटिया में आकर ऋतध्वज को धन्यवाद देकर उसे कर्तव्यच्युत कर दिया। किन्तु राजधानी वापस आने पर, मदालसा की मृत्यु के समाचार को सुनकर ऋतध्वज अत्यन्त दु:खी हुआ किन्तु बाद में नागराज के द्वारा प्राप्त वर से पुन: उसने मदालसा को प्राप्त करके

---

१. भर्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा। धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्तृसहायिनी
यदा भार्या च भर्ता च परस्परवशानुगौ। तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगतम् ।।
कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वा पुरुष:प्रभो। प्राप्नोति काममथवा तस्यां त्रितयमाहितम्।
तथैव भर्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने। न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यं समुपाश्रित: ।।
देवतापितृ-भृत्यानामतिथीनां च पूजनम्। न पुंभि:शक्यते कर्तुमृते भार्यां नृपात्मज ।।
प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम्। क्षयमेति विना भार्यां कुभार्यासंश्रयेऽपि वा
कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते। दंपत्यो: सह धर्मेण त्रयीधर्ममवाप्नुयात्।
पितॄन् पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीन् नर:। पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीं भार्यां नरोऽवा
— मार्कण्डेय पुराण — २१।६८-७५

नगर की ओर प्रस्थान किया ।

ऋतध्वज के साथ सुखपूर्वक रहते हुए मदालसा ने विक्रान्त नाम के पुत्र को प्राप्त किया । उस बुद्धिमती नारी ने लोरी के रूप में ही यह सिखाना शुरू किया किया — 'हे तात तुम शुद्ध बुद्ध हो, शुद्ध स्वरूप हो, तुम्हारा नाम कैसा ? यह तो अभी पिता ने कल्पना से रख दिया है । तुम किसके लिए रुदन करते हो । इन्द्रियों के गुण और अगुण भी सब भौतिक हैं । इस देह में अन्न, जल आदि भूतों से भूतों भूतों की वृद्धि हो रही है । वस्तुत: तुम्हारे स्वरूप की न वृद्धि है न हानि । यह देह एक चोला है जो शुभ अशुभ कर्म और मोह मदादि विकारों ने तुम्हारे चारों ओर कल्पित कर दिया है । चोला पुराना हो जाय तो मोह नहीं होता ऐसे ही देह के विषय में भी समझो ।'[1]

'मोहवश प्राणी दु:खों से छूटना और भोगों से सुख पाना चाहते हैं फिर उन्हीं सुखों को दु:ख रूप में अनुभव करते हैं — ऐसा यह मोह का चक्र है ।'[2]

माता के उपदेश से कुमार को आत्मबोध हो गया और वह गृहस्थ धर्म से विरक्त हो गया । इसी प्रकार सुबाहु नामक द्वितीय, तथा शत्रुमर्दन नामक तृतीय पुत्र को भी मदालसा ने निष्काम पथ का उपदेश दिया । जब वह

---

१. शुद्धोऽसि रे तात न तेऽस्ति नाम कृतं हि ते कल्पनयाधुनैव ।
पंचात्मकं देहमिदं तवेदन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतो: ।।
न वा भवान्रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम् ।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्ते गुणाश्च भौता: सकलेन्द्रियेषु ।।
भूतानि भूतै: परिदुर्बलानि वृद्धिं समायन्ति यथेह पुंस: ।
अन्नाम्बुपानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानि: ।।
त्वं कंचुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिश्च देहे मूढतां मा व्रजेथा: ।
शुभाशुभै: कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढै: कंचुकस्तेऽपि नद्धः ।।

—मार्कण्डेय पुराण २५।११-१४

२. दु:खानि दु:खोपगमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेता: ।
तान्येव दु:खानि पुन: सुखाय जानाति विद्वानविमूढचेता: ।

वही, १०६।२५

चौथे पुत्र अलर्क को भी उसी प्रकार ज्ञान देने लगी तो मर्माहित राजा ने कहा - "प्रिये मेरी बात मान कर इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग पर लगाओ।"

अतः पति का वचन मानकर मदालसा ने चतुर्थ पुत्र को इस प्रकार उपदेश दिया - "बालरूप में बान्धवों का मन प्रसन्न करना। कुमार रूप में गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना। युवा रूप में सत्कुल की भूषणा स्त्रियों का मन प्रसन्न करना और वृद्धावस्था में वन का आश्रय लेना।"[१]

मदालसा अपने पुत्र को प्रजारञ्जन पर आश्रित राजतन्त्र, वर्णाश्रम धर्म, गार्हस्थ्य धर्म, नित्य और नैमित्तिक कर्म, श्राद्ध, देवता पूजन, आचार परिपालन और वर्ज्यावर्ज्य पदार्थों के विषय में लम्बा उपदेश देती हैं।

गृहस्थाश्रम की महिमा एवं तेजस्वी स्वरूप को प्रकट करने वाले प्रवचन में मदालसा कहती हैं - "हे वत्स, जिसने गृहस्थ आश्रम धारण किया वह मनुष्य मानो सब जगत के पोषण का भार अपने ऊपर ले लेता है। देव, पितर, मुनि, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतंग, पशु, और पक्षी सब गृहस्थ के ही भरोसे जीते हैं और वहीं से तृप्ति प्राप्त करते हैं।"[२]

<u>देवहूति</u>- आध्यात्म ज्ञान से पूर्ण एक अन्य नारी देवहूति का उल्लेख हमें भागवत-पुराण में मिलता है जो सांख्य दर्शन की विवेचना करने वाले महर्षि कपिल की माता थीं। भागवत्[३] के अनुसार देवहूति स्वायंभुव मनु की कन्या थी,

---

१. बाल्ये बालक्रिया पूर्वं तद्वत्कौमारके च या।
यौवने चापि या योग्या वार्धके वनसंश्रया॥

— मार्कण्डेय पुराण १०६।२४

२. वत्स गार्हस्थ्यमादाय नरः सर्वमिदं जगत्। पुष्णाति तेन लोकांश्च स जयत्याभिवाञ्छितान्॥
पितरो मुनयो देवा भूतानि मनुजास्तथा। कृमिकीटपतङ्गाश्च वयांसि पशवो सुराः॥
गृहस्थमुपजीवन्ति ततस्तृप्तिं प्रयान्ति च। मुखं चास्य निरीक्षन्ते अपि नो दास्यतीति वै॥

— मार्कण्डेय पुराण २६।३,४,५

३. भागवतपुराण - ३।२१-३३

जिसमें जन्म से ही योग के सभी गुण समन्वित थे । जब वे बड़ी हुयीं तो उन्होंने प्रजापति कर्दम के चरित्र एवं उनकी एक महान् ऋषि के रूप में ख्याति को सुनकर, उनसे विवाह करने का निश्चय किया । उसी समय कर्दम मुनि भी सुयोग्य कन्या से विवाह करके सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृऋण से मुक्त होना चाहते थे । अत: विष्णु के पूजा करने पर, विष्णु ने उन्हें देवहूति से विवाह करने का आश्वासन दिया । देवहूति के संकल्प को जानकर स्वायंभुव मनु ने एक दिन अपनी पत्नी एवं पुत्री सहित सरस्वती नदी के किनारे पर स्थित कदर्म ऋषि के आश्रम की ओर प्रस्थान किया ।

वहाँ जाकर उन्होंने अपनी पुत्री की विवाह कर्दम ऋषि के साथ करने की प्रार्थना की । महर्षि कर्दम देवहूति के यौवन सौन्दर्य के ज्ञान से पूर्व परि-चित थे अत: उन्होंने कहा " मैं आपकी इस साध्वी कन्या को अवश्य स्वीकार करूंगा, किन्तु एक शर्त के साथ । जब तक इसके सन्तान न हो जायगी तब तक मैं गृहस्थ धर्मानुसार इसके साथ रहूंगा । उसके बाद भगवान् के बताये हुए सन्यास प्रधान हिंसा रहित शम दमादि धर्मों को अधिक महत्त्व दूंगा ।"[1] तब श्री कर्दम मुनि की आज्ञा से, स्वायंभुव मनु अपनी कन्या एवं ऋषि का विवाह ब्राह्म विधि से सम्पन्न करके, स्वयं पत्नी सहित बर्हिष्मती नगरी को वापस चले गये । माता पिता के चले जाने पर देवहूति तन्मय होकर पति की सेवा करने लगी । उसने काम वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मद का त्याग कर बड़ी सावधानी और तन्मयता के साथ सेवा में तत्पर रह कर विश्वास, पवित्रता और गौरव, संयम , सुश्रूषा, प्रेम एवं मधुर भाषणादि गुणों से अपने परम तेजस्वी

---

१. अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ।
ततो धर्मान् पारमहंस्यमुख्यान् शुक्लप्रोक्तान् बहुमन्येऽविहिंस्रान् ।।
—भागवतपुराण ३।२२।१९

पतिदेव को सन्तुष्ट कर लिया ।[1]

समय बीतने पर देवहूति ने अनेक कन्याओं को जन्म दिया । किन्तु जब शुद्ध स्वभाववाली देवहूति ने देखा कि उसके पति संन्यासाश्रम ग्रहण करने के लिए वन जाना चाहते हैं तो व्याकुल एवं सन्तप्त हृदय से अति मधुर वाणी में कहा - " ब्रह्मन् इन कन्याओं के लिए योग्य वर खोजने पड़ेंगे और आप के वन को चले जाने के बाद मेरे जन्म-मरण रूप-शोक को दूर करने के लिए भी कोई होना चाहिए ।[2] संसार में जिन पुरुषों के कर्मों से न तो धर्म का सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान की सेवा ही सम्पन्न होती है वह पुरुष जीते ही मुर्दे के समान है ।"[3]

देवहूति के कथनों को सुनकर कर्दम जी ने कहा " सर्वशक्तिमान ईश्वर (विष्णु) तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर संसार में ब्रह्म ज्ञान का उपदेश देकर मेरे

---

१. विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ।
सुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ।।
विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं लोभमघं मदम् ।
अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ।।३।२३।२-३

~~मार्कण्डेय~~ भागवत-पुराण ३।२३।२-३

२. ब्रह्मन्दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ।
कंचित्स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ।।

-भागवत पुराण ३।२३।५२

३. नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ।।

-भागवत पुराण ३।२३।५६

यश को विस्तृत करेगा । कपिल की उत्पत्ति होने पर कर्दम ऋषि ने सन्यासाश्रम को स्वीकार कर लिया एक दिन देवहूति ने कपिल से कहा -" भूमन ! प्रभो ! इन दुष्ट इन्द्रियों की विषय लालसा से मैं बहुत ऊब गयी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहने से घोर अज्ञानान्धकार में पड़ी हुयी हूँ । अब आपकी कृपा से मेरी जन्म परम्परा समाप्त हो चुकी है । इसी से इस दुस्तर अज्ञानान्धकार से पार लगाने के लिए सुन्दर नेत्र रूप आप प्राप्त हुए हैं । आप सम्पूर्ण जीवों के स्वामी भगवान् आदि पुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकार से अन्धे पुरुषों के लिए नेत्र स्वरूप सूर्य की भांति उदित हुए हैं । देव ! इन देह गेह आदि में जो मैं-मेरे पन का दुराग्रह होता है भी वह आपका ही कराया हुआ है , अत: आप मेरे इस महामोह को दूर कीजिए । आप अपने भक्तों के कुठार रूप वृक्ष के लिए कुठार के समान हैं : मैं प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आप शरणागतवत्सल की शरण में आई हूँ । आप भागवत धर्म मानने वालों में सबसे श्रेष्ठ हैं,मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।"[१]

माता की तत्त्व ज्ञान विषयक अभिलाषा को जानकर कपिल जी ने प्रकृति पुरुष आदि तत्त्वों का निरूपण करने वाले सांख्यशास्त्र का उपदेश दिया साथ ही भक्ति विस्तार एवं योग का भी वर्णन किया । अपनी असाधारण

---

१. निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ।येन
 येन सम्भाव्यमानेन प्रपन्नान्धतम: प्रभो : ।।
 तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारगम् ।
 सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ।।
 य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान् किल ।
 लोकस्य तमसान्धस्य चक्षु: सूर्य इवोदित: ।।
 अथ मे देव सम्मोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ।
 योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतस्मिन् योजितस्त्वया ।।

 — भागवत — ३।२५।७-१०

 तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरो: कुठारम् ।
 जिज्ञासयाहं प्रकृते: पुरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ।।

 — भागवत ३।२५।११

बुद्धि एवं रुचि से देवहूति ने ब्रह्म विषयक अनेक प्रश्नों को कपिल से पूछा एवं कपिल के उत्तर से सन्तुष्ट हुयी देवहूति ने वास्तविक ज्ञान उपलब्ध कर ब्रह्मवादिनी की संज्ञा को सार्थक किया ।

बौद्ध साहित्य –

बौद्ध काल के पालिग्रन्थों में से थेरी गाथा (स्थविरियों या वृद्धाओं की गाथायें) में हमें नारियों की आध्यात्मिक साधना का उल्लेख मिलता है 'थेरी गाथा' में ७३ भिक्षुणी स्त्रियों की जीवन-गाथा तथा उनके काव्यपूर्ण उद्गारों का परिचय मिलता है ।

महाप्रजापती गौतमी –

देवदह नगर के महासुप्रबुद्ध की पुत्री एवं भगवान-बुद्ध की मामा मायादेवी की सबसे छोटी बहन थी । दोनों का पाणिग्रहण राजा शुद्धोदन के साथ हुआ । गौतम वंशीय होने के कारण महा प्रतापी 'गौतमी' कहलाती थी । बुद्ध के जन्म के सातवें दिन महामायाका देहान्त हो गया । इस अवस्था में गौतमी ने ही उसका पालन-पोषण किया । शुद्धोदन की मृत्यु के बाद महाप्रजापत्नीगौतमी ने संसार को त्याग देने की इच्छा की । किन्तु भगवान् तथागत ने महा-प्रजापती और कुछ अन्य शाक्य स्त्रियों को प्रव्रजित होने की आज्ञा दे दी । बाद में भिक्षुणियों का एक अलग संघ ही बन गया । महाप्रजापती गौतमी बड़ी उच्चकोटि की साधिका थी ।[१] भगवान बुद्ध में उनकी कितनी उत्कट श्रद्धा थी और किस प्रकार वह उन्हें बहुजनों के कल्याण के लिए अवतरित हुआ मानती थीं, इसका एक चित्र इस सुन्दर गाथा में व्यक्त किया गया है —

---

१. थेरी गाथायें--लेखक भरत सिंह उपाध्याय , पृ० ५६

हे बुद्ध ! हे वीर ! हे सर्वोत्तम प्राणी ! तुझे नमस्कार ।
जिसने मुझे और अन्य बहुत से प्राणियों को दुःख से उबारा[१] ।।

मैंने उन भगवान् बुद्ध के दर्शन किये (मुझे अनुभव हुआ) यह मेरा अन्तिम शरीर है । मेरा गमनागमन क्षीण हो गया । अब मुझे फिर जन्म लेना नहीं है ।।[२]

खेमा- सागल की राजकन्या खेमा अद्वितीय सुन्दरी एवं स्वर्णवर्णा थी । मगधराज बिंबिसार की रानी बनने पर एक दिन भगवान् बुद्ध वेलुवन आये । सारा राज परिवार उनके दर्शन के लिए गया किन्तु रूपगर्विता खेमा नहीं गयी क्योंकि वह जानती थी कि भगवान् बुद्ध रूप सौन्दर्य की तुच्छता दिखाते हैं । किसी प्रकार उद्यान की शोभा दिखाने के बहाने से वह वहां ले जाई गयी किन्तु अकस्मात भगवान-तथागत के दर्शन होने पर शान्ता ने रूपगर्विता की निस्सारता दिखाने के लिए अपने अलौकिक योगबल से एक अप्सरा को उत्पन्न करके उसकी प्रथम, मध्यम एवं वृद्धावस्था दिखाई । सौन्दर्य की अन्तिम परिणति को देखकर खेमा भगवान के उपदेश को ग्रहण कर प्रज्ञावती भिक्षुणी बन गयी । एक बार आसन लगाये वृक्ष के नीचे बैठी खेमा और युवा-पुरुष के रूप में आयी मार के संवाद में खेमा ने अपनी अद्भुत ज्ञान-साधना व्यक्त की — ' देख यह काम तृष्णा भाले के समान विद्ध करने वाली है , ये स्कन्धसमूह छुरी के समान काटने वाले हैं । जिसे तू भोग का

---

१. बुद्ध वीर नमो व्यत्थु सब्बसत्तानमुत्तम ।
   यो हं दुक्खा पमोचेसि अञ्ञञ्च बहुकं जनं ।।
   — थेरी गाथा — १५७

२. दिट्ठो हि मे सो भगवा अन्तिमो यं समुस्सयो ।
   विक्खीयो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भवो ।।
   —थेरी गाथा — १६०

आनन्द कहता है। वही मेरे लिए घृणा का उत्पादक है।"[१]

पटाचारा— यह श्रावस्ती के एक सेठ की पुत्री थी किन्तु भाग्यवश अपनी दुर्बुद्धि के कारण उसे अपने पति, दो पुत्रों, माता पिता एवं भाई की क्रमश: मृत्यु के कारण उसे अपने शरीर के वस्त्रों का भी ध्यान नहीं रहा और लज्जा के अभाव के कारण उसका नाम "पटाचारा" पड़ा। बाद को भगवान् बुद्ध की अनुकम्पा से उसे शान्ति प्राप्त हुयी। एक दिन पैर धोकर उसने पानी फेंका तो देखा कि कुछ दूर जाकर पानी सूख गया। दूसरी बार फेंकने पर कुछ अधिक दूर तथा तीसरी बार फेंकने पर उससे कुछ अधिक दूर जाकर सूख गया। इस दृश्य को देखकर पटाचारा सोचने लगी" इसी प्रकार कुछ प्राणी प्रथम वयस् में, कुछ मध्यम में भी और कुछ अन्तिम वयस् में भी मरते हैं। सभी अनित्य हैं।" अर्हत्व प्राप्त कर अपने साधना-सपन्न जीवन का प्रत्यवेक्षण करती हुयी पटाचारा कहती है :—

" हल से भूमि को जोतकर मनुष्य उसमें बीज बोते हैं, इस प्रकार अपने स्त्री पुत्रादि का पालन करते हुए वे धन उपार्जन करते हैं तो फिर क्यों न मैं साधिका निर्वाण को प्राप्त कर पाती ? मैं, जो कि शील से सम्पन्न हूं, अपने शास्ता के शासन को करने वाली हूं। अप्रमादिनी हूं अचंचल और विनीत हूं।"[२]

शुभा(प्रथम)— राजगृह के किसी सोनार की कन्या थी। अत्यधिक सौन्दर्य के कारण शुभा नाम पड़ा। आयु प्राप्त होने पर एक दिन भगवान् बुद्ध के उपदेशों से प्रव्रजित हो गयी। बाद में आत्मीयजन आकर बार बार घर लौटने का

---

१. सत्तिसूलूपमा कामा खन्धानं अधिकुट्टना ।
यं त्वं कामरतिं ब्रूसि अरति दानि सा ममं ।। थेरीगाथा— १४१

२. नङ्गलेहि कसं खेत्तं बीजानि पवपं छमा ।
पुत्तदारानि पोसेन्ता धनं विदन्ति मानवा: ।। थेरीगाथा— ११२
किमहं सीलसम्पन्ना सत्थुसासनकारिका ।
निब्बानं नाधिगच्छामि अकुसीता अनुद्धता ।। थेरीगाथा— ११३

अनुरोध करने लगे किन्तु सांसारिक जीवन के दोष दिखाकर उसने सबको लौटा दिया - " भोग समूह अनन्त दुष्परिणामों के आकर हैं, बहुत दु:खों से भरे हुए हैं। महाविष वाले हैं, ये अशान्तिकर हैं, लड़ाई झगड़ा कराने वाले हैं, और मानव जीवन के उज्ज्वल पक्ष का शोषण करने वाले हैं।"[1]

शुभा-(द्वितीय)-

राजगृह के एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कन्या थी। शरीरावयवों की सुन्दरता के कारण उसका नाम शुभा रक्खा गया। राजगृह में भगवान् बुद्ध के धर्मोपदेश से उपासिका बनकर महाप्रजापती गौतमी के पास प्रव्रज्या ले ली। उत्कट साधना करते हुए उसे पूर्व-जन्मों का ज्ञान उत्पन्न हुआ। ऐन्द्रिय सुख-भोग के दुष्परिणामों का चिन्तन कर निष्पाप जीवन बिताने लगी। एक दिन आम्रवन में जाते हुए एक भ्रष्टचरित्र युवक ने उसे धर्म पतित करने की चेष्टा की। भिक्षुणी ने सोचा कि यह धूर्त मेरे नेत्रों से आकृष्ट हो अन्धा हो रहा है अत: उसने अपनी आँखें फोड़कर उसे भय से कम्पित कर दिया बाद में भगवान-बुद्ध के दर्शन से उसके नेत्र पूर्ववत् हो गये। धूर्तयुवक से संलाप करती हुयी शुभा ज्ञानपूर्ण उपदेश देती है -

" निन्दा और स्तुति में दु:ख और सुख में, मुझे सदा कायिक, मानसिक जागरूकता उपस्थित रहती है। जो कुछ संस्कृत है, सब अशुभ है, ऐसा जानकर संस्कारों से मैं पूर्णत: अनासक्त हो चुकी हूं। क्या तू नहीं जानता कि आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अनुसरण करने वाली मैं बुद्ध की शिष्या हूं, मैंने (वासना के) तीर को निकाल फेंका है, वेदनाओं और चित्त-मलों से रहित होकर मैं सूने स्थानों में जाकर ध्यान करती हूं, इसी में मेरा आनन्द है।"[2]

---

१. अनन्ता-दीनवा कामा बहुदुक्खा महाविसा।
अप्पसादा रणाकरा सुक्कपक्खविसोसना॥
- थेरीगाथा - ३५८॥

२. मयहं हि अक्कुट्ठवन्दिते सुखदुक्खे च सति उपट्ठिता।
सङ्खतमसुभन्ति जानिय सब्बत्थेव मनो न लिम्पति॥ - थेरीगाथा - ३८८.
साहं सुगतस्स साविका मग्गट्ठङ्गिकयाननयायिनी।
उद्धतसल्ला अनासवा सुञ्ञागारगता रमामहं॥ वही ३८९

अम्बपाली —(आम्रपाली)—

वैशाली के राजोपवन में आम के वृक्ष के नीचे जन्म होने के कारण अम्बपाली नाम हो गया। अत्यधिक सुन्दरी होने से वैशालिक राजकुमारों ने उससे विवाह करने की परस्पर स्पर्धा की। कलह शान्ति के लिए पंचायत के निर्णय के द्वारा वह सबकी सामान्य पत्नी बनकर रहने लगी। अन्त में भगवान् बुद्ध के उपदेश से वह भिक्षुणी बन गयी। वृद्धावस्था में अपने शरीर के परिवर्तनों को देखकर आम्बपाली ने बुद्ध वचनों की सत्यता प्रतिफलित होते हुए देखी और उसे संसार की सभी वस्तुओं की अनित्यता का ज्ञान हुआ। अपने निरन्तर जर्जरित होते हुए शरीर को देखकर वह कहती है —" एक समय यह शरीर ऐसा सौन्दर्यपूर्ण था। इस समय वह जर्जर एवं अनेक दुःखों का घर है। जीर्ण घर जैसे बिना लिपाई पुताई के गिर जाता है, उसी प्रकार यह जरा का घर (शरीर) भी बिना थोड़ी सी रखवाली किए शीघ्र गिर जायगा —सत्यवादी के वचन कभी मिथ्या नहीं होते।"[१]

इसी प्रकार थेरी-गाथा में अनेक स्थविर भिक्षुणियाँ इसिदासी, सुमेधा, सुजाता, सुन्दरी, नन्दुत्तरा, आदि के भावनापूर्ण उद्गारों का वर्णन है।

बौद्धों के अतिरिक्त " जैन आगमों" में भी विविध विदुषियों के उल्लेख प्राप्त हैं। जैनों के अन्तिम तीर्थंकर महावीर को जन्म देने वाली वसिष्ठ - गोत्रीय त्रिशला को विदुषी बताया जाता है।[२] मल्लिनाथ कुमारी ने स्त्री

---

१. एदिसो अहु अयं समुस्सयो जज्जरो बहुदुक्खानमालयो।
सो' पलेपपतितो जरागतो सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा ॥ थेरीगाथा २७० ॥

२. आचाराङ्ग २,३,३९९-४००, कल्पसूत्र पांच के अनुसार महावीर ब्राह्मणकुण्ड ग्राम के ऋषभदत्त की पत्नी देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ में अवतरित हुए लेकिन क्योंकि अर्हत, चक्रवर्ती, बलदेव, तथा वासुदेव भिक्षुक और ब्राह्मण आदि कुलों में जन्म धारण नहीं करते, अतः इन्द्र ने उन्हें क्षत्रियकुण्डग्राम के गण राजा सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला के गर्भ में परिवर्तित कर दिया। तथा देखिए व्याख्या प्रज्ञप्ति ९।६।८३६,८४१ दिगम्बर सम्प्रदाय में गर्भ परिवर्तन की मान्यता स्वीकार नहीं की गयी है।

होकर भी तीर्थङ्कर की पदवी प्राप्त की ।[1] उनकी जीवन गाथा का रुचिपूर्ण चित्र 'नायधम्मकहाओ' (न्यायधर्मकथायें) नामक जैन रचना में उपलब्ध होता है ।[2] मल्लिनाथ कुमारी मिथिला के राजा कुम्भ की सुन्दरी एवं विदुषी कन्या थी । उसकी रुचि एवं सौन्दर्य से आकृष्ट होकर, कौसल, अङ्ग, काशी, कुणाल, कुरु एवं पांचाल देशों के शासक उसके साथ विवाह करने को उत्सुक थे किन्तु राजा कुम्भ ने सबको अस्वीकार कर दिया । अत: सभी ने मिथिला पर आक्रमण कर दिया, पराजय के समीप आने से पूर्व ही मल्लि ने सब राजाओं को आमन्त्रण देकर मिलना चाहा सबके आ जाने पर अपनी एक स्वर्ण प्रतिमा द्वारा उसने सबको संसार की अनित्यता एवं अपने वैराग्य की सूचना दे दी । मल्लि के उपदेशों ने उन सभी राजाओं को अपने अपने उत्तराधिकारियों पर शासन भार छोड़कर मल्लि का अनुसरण कर सन्यास धर्म स्वीकार कर लिया ।

राजीमती —

भोजराज उग्रसेन की कन्या राजीमती का नाम जैन आगमों में बड़े सम्मान से स्मरण किया जाता है । विवाह के अवसर पर बाड़ों में बंधे हुए पशुओं का परिचय सुन, जब अरिष्टनेमि को वैराग्य हो आया, तो राजीमती ने भी उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन कर श्रमण दीक्षा ग्रहण की । एक बार, अरिष्टनेमि, उनका भाई रथनेमि एवं राजीमती तीनों गिरनार पर्वत पर तप कर रहे थे ।

---

१. ज्ञातृधर्मकथा ८ । ध्यान देने की बात है कि श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार (कल्पसूत्र २, पृ०३२अ-४२अ) स्त्रियों द्वारा निर्वाण प्राप्त करने को दस आश्चर्यों में गिना गया है । दिगम्बरों के अनुसार मल्लि को मल्लिकुमार माना गया है और इस परम्परा में स्त्रीमुक्ति का निषेध है ।

४. नायधम्मकहाओ — अध्याय ८

इस समय वर्षा के कारण राजीमती के वस्त्र गीले हो गये। उसने अपने वस्त्रों को सुखा दिया और वह पास की एक गुफा में खड़ी हो गयी। संयोगवश, इस समय रथनेमि भी उसी गुफा में ध्यानावस्थित थे। राजीमती को निरवस्त्रावस्था में देख उनका मन चलायमान हो गया। उन्होंने राजीमती को भोग भोगने के लिए निमन्त्रित किया। राजीमती ने उसका विरोध किया। उसने मधु और घृतयुक्त पेय का पानकर ऊपर से मदनफल खा लिया, जिससे उसे वमन होगया। रथनेमि को शिक्षा देने के लिए, वमन किये हुए पेय को उसने रथनेमि को प्रदान कर व्रत-पालन में दृढ़ता प्रदर्शित की। वह रथनेमि से कहती है — "तुम्हारे पुरुषार्थ को धिक्कार है। यश की कामना करने वाले ! जो तुम जीवित रहने के कारण वमन किये हुए को (अरिष्टनेमि के द्वारा त्यक्त मेरा उपभोग करना चाहते हैं) व पीना चाहते हो अत: तुम्हारा मरण ही कल्याणकारी है।"[1]

"यदि तुम प्रत्येक नारी को देखकर उसके प्रति आकृष्ट हो जाओगे तो वायु द्वारा प्रेरित वनस्पति विशेष (हड) की भांति अस्थिर चित्त वाले हो जाओगे।"[2]

जैन सूत्रों में ब्राह्मी, सुन्दरी, चन्दना, मृगावती आदि ऐसी कितनी ही

---

१. धिरत्थु ते जसो कामी जो तं जीविककारणा।
वंतं इच्छसि आविउं सेयं ते मरणं भवे ॥
(छाया)
धिगस्तु ते यशस्कामिन् ! यस्त्वंजीवितकारणात्।
वान्तमिच्छस्यापातुं श्रेयस्ते मरणं भवेत् ॥
(दशवैकालिक सूत्र, अध्याय २, गाथा ७)

२. जइ तं काहिसि भावं जा जा दिच्छसि नारीओ।
वायाविद्धुव्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥ दशवैकालिक सूत्र २।९
(छाया)
यदि त्वं करिष्यसि भावं या या द्रक्ष्यसि नारी:।
वाताविद्धो व हड:, अस्थिरात्मा भविष्यसि ॥

महिलाओं के उदाहरण है जिन्होंने संसार का त्याग कर सिद्धि प्राप्त की और जनता को हित का उपदेश दिया।[१] आर्यचन्दना महावीर की प्रथम शिष्या थी। श्रमणियों में उनका बहुत ऊंचा स्थान था, अनेक साध्वओं ने उनके नेतृत्व में रहकर, सम्यक चारित्र्य का पालन करते हुए मोक्ष की प्राप्ति की।[२] जयन्ती कौशाम्बी के राजा शतानीक की भगिनी थी। अमूल्य वस्त्रों का त्याग कर वह साध्वी बन गयी थी।[३]

इस प्रकार भारतीय प्राचीन धार्मिक रचनाओं में विविध विदुषी नारियों के चरित एवं उल्लेख भी भरे पड़े हैं।

---

१. अन्तकृद्दशा ५,७,८ ज्ञातृधर्मकथा २, श्रुतस्कन्ध १–१० पृ० २२०-३०
२. अन्तःकृद्दशा ८, कल्पसूत्र ५।१३५
३. व्याख्या प्रज्ञप्ति १२।२, पृ० ५५६

तृतीय-अध्याय

संस्कृत कवयित्रियों की तिथि एवं रचनाएं

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक हमें विदुषी स्त्रियों की प्रतिभा काव्य साहित्य के सृजन में दिखाई पड़ती है। यह दूसरी बात है कि किसी विशेष कारण अथवा परिस्थितियों के आधीन होकर, पुरुषों की भांति काव्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त कर सकीं, किन्तु यथा सम्भव समय समय पर अनेक प्रतिभाशालिनी नारियों का प्रादुर्भाव हुआ। काव्य-रचना में प्रवीण ललनाओं का योगदान कुछ इस प्रकार है।

सम्पूर्ण स्त्री कवयित्रियों का विभाजन दो श्रेणियों में किया जा सकता है। प्रथम वे जिन्होंने स्फुट पद्यों की रचना की जिनका उल्लेख विविध सुभाषित ग्रन्थों में मिलता है। द्वितीय कोटि की वे जिन्होंने प्रबन्ध काव्यों का निर्माण किया है। सर्वप्रथम सङ्ग्रह ग्रन्थों में उल्लिखित कवयित्रियों का सूक्ष्म विवरण प्रस्तुत है।

१. चन्द्रकान्ता भिक्षुणी—

"भिक्षुणी" उपनाम से ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत: यह नेपाल में रहने वाली बुद्ध की उपासिका थीं। किन्तु इन्होंने संस्कृत में "अवलोकितेश्वर"[१] स्तोत्र की रचना की जो कि आठ श्लोकों से पूर्ण अष्टक स्तोत्र है।

२. चण्डाल विद्या—

ये कालिदास की समकालीन थीं अर्थात् इनका उद्भव चौथी शताब्दी ईसवी में हुआ। इनका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है। ये प्रसिद्ध शासक विक्रमादित्य के दरबार की कवयित्री प्रतीत होती हैं क्योंकि सदुक्तिकर्णामृत नामक

---

१. संस्कृत पोयटेसेज़, भाग १, पृ० ३

सुभाषित सङ्ग्रह में चण्डालविद्या, विक्रमादित्य और कालिदास के सत्कृतित्व के रूप में एक पद्य[1] उद्धृत किया गया है ।

(३) फल्गुहस्तिनी –

इनके दो पद्यों में से एक पद्य की प्रथमपंक्ति वामन (कश्मीर के राजा जयापीड़ के मन्त्री) रचित काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में उद्धृत की गयी है चूंकि वामन का समय ८ वीं शताब्दी ई० है अतः फल्गुहस्तिनी का स्थिति-काल इससे पूर्व है । फल्गुहस्तिनी के दोनों पद्य शाङ्र्गधरपद्धति, सुभाषितावली एवं सूक्तिमुक्तावली आदि ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं ।

(४) विज्जिका –

इनका विविध ग्रन्थों में विज्जिका, विज्जका, विज्जाका अथवा विज्जा या विद्या नाम से उल्लेख मिलता है । इनका शुद्ध नाम `विज्जका` ही प्रतीत होता है, जिसका शुद्ध रूप` विद्या`है ।

समय –

विज्जका के विभिन्न पद्यों को संस्कृत आलङ्कारिकों ने उदाहरण स्वरूप अपनी रचनाओं में उद्धृत किया है । मम्मटाचार्यने अपने `शब्दव्यापार-विचार` में इनके दृष्टि है प्रतिवेशिनि क्षणामिहाप्यस्मद्गृहे दास्यसि`[3] और धन्यासि या कथयसि`[4] ये को उद्धृत किया है । दूसरा पद्य काव्य प्रकाश के

---

१. सदुक्ति-कर्णामृत – २।३६०

२. काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति -३८, पृ० १७१ वाणी विलास संस्करण

३. सदुक्तिकर्णामृत– ५४१, पृ० १४६

४. सदुक्ति– ५३१, पृ० १४३

चतुर्थ उल्लास में अर्थमूलक वस्तु प्रतिपाद्य अलङ्कार ध्वनि के उदाहरण के रूप में रखा गया है। द्वितीय पद्य मुकुल भट्ट की `अभिधावृत्ति मातृका`[१] में भी प्रयुक्त किया गया है। मुकुल भट्ट, भट्ट कल्हण के पुत्र थे, जो कि कश्मीरी राजा अवन्ति वर्मन के समकालीन थे। इसका शासन काल ८५५-८८३ ई० है अत: विज्जा इस काल के पूर्व की है -इतना निश्चित है।

इसके अतिरिक्त दण्डी के काव्यादर्श[२] में जो सरस्वती को `सर्वशुक्ला` कहा गया है, तो विज्जका ने उसका प्रतिवाद करते हुए स्वयं को वाग्देवता सरस्वती मानकर कहा कि ` नील कमल के सदृश श्यामा मुझ विज्जिका को जाने बिना ही दण्डी ने सरस्वती को सर्वशुक्ला कहा।`[३] अत: विज्जिकाका स्थिति काल ७ वीं एवं ९ वीं शताब्दी ई० के मध्य का समय है।[४] विज्जिका की तिथि सम्बन्धी विस्तृत विवेचन अन्यत्र (कौमुदी महोत्सव नाटक के अध्याय में) प्रस्तुत किया जायगा।

(५) शीला भट्टारिका-

भट्टारिका सम्भवत: रानियों या परिव्राजिकाओं को कहते थे। सम्भवत: शीला राजा की पत्नी थीं। इनका समय भर्तृहरि (७ वीं शताब्दी ईसवी) और माघ (७ वीं ई० का उत्तरार्द्ध) का है। इनके पद्य `य: कौमार-हर: स एव हि वर:` आदि को राजानक रुय्यक (११५०ई०) ने अपने अलङ्कार सर्वस्व[५] में उद्धृत किया है, यही पद्य कवीन्द्रवचन समुच्चय में भी

---

१. अभिधावृत्ति मातृका , निर्णय सागर संस्करण, पृ० १२

२. चतुर्मुखमुखाम्भोजवनहंसवधूर्मम। काव्यादर्श १, पृ० १,
मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती ।। , सं० १९९०

३. नीलोत्पलदलश्यामां विज्जिकां मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ।।
— शाङ्र्गधरपद्धति ९८०

४. संस्कृत पोयटेसेज़ , भाग २, लेखक जतीन्द्र विमल चौधरी, पृ०

५. अलंकार सर्वस्व पद्य, १६६ पृ० २३७ मोतीलाल बनारसीदास,बना

उपलब्ध होता है जो कि इससे पहले की तिथि का है। शार्ङ्गधरपद्धति के कथनानुसार शीला ने `इदमनुचितमक्रमश्च पुंसाम्` इत्यादि पद्य को भोजराज[1] के साथ क्रीडाकाल में लिखा था। तत्पश्चात् राजशेखर ने भी एक पद्य में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है।[2] सम्भवतः भोजराज एवं शीला के मध्य स्नेहाधिक्य रहा होगा।[3]

(६) विकट-नितम्बा—

विकट-नितम्बा रचित एक पद्य `लावण्यसिन्धुरपरैवकेयमत्र` आदि को आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक[4] में उद्धृत किया है। आनन्दवर्धन का स्थितिकाल, काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मन्[5] (८५५-८८३ ई०) का समय है। उन्होंने उद्भट का नामोल्लेख किया है[6] अतः ऐसा प्रतीत होता है कि विकट-नितम्बा का समय नवीं शताब्दी ईसवी का प्रथम चरण है।

(७) सीता—

सीता या शीता के नाम से एक मात्र पद्य वामन (जयापीड के मन्त्री) के काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति[8] एवं राजशेखर की काव्यमीमांसा[9] में उद्धृत किया गया है अतः इनका इसका स्थिति काल आठवीं एवं दशवीं ईसवी का

---

१. शार्ङ्गधर-पद्धति—४६४
२. सूक्तिमुक्तावली, पृ० ४७, बड़ौदा संस्करण १६३८
३. शार्ङ्गधरपद्धति ४६४
४. ध्वन्यालोक—पृ० ४५६—चौखम्बा संस्करण बनारस, सं० १६६७
५. राजतरङ्गिणी (कल्हण), ५।३४ पण्डित पुस्तकालय, काशी, १६६०
६. ध्वन्यालोक, काव्यमाला संस्करण; पृ० ६६—१०८
७. काव्यमीमांसा, पृ० ३०, गायकवाड़ औरियण्टल सीरीज, तृतीय संस्करण
८. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, ३।२।८ पृ०, २५१ आत्मा०एं०, दिल्ली, १६५४
९. काव्यमीमांसा, पृ० ८६

मध्यकाल है।

(८) त्रिभुवन सरस्वती — राजशेखर ने अपनी कर्पूरमंजरी[1] में महीतल सरस्वती की ज्येष्ठ भगिनी के रूप में त्रिभुवन सरस्वती का उल्लेख किया है। यदि सदुक्तिकर्णामृत[2] (१३ वीं शताब्दी ई०) में उद्धृत तथा राजशेखर द्वारा बतायी गयी, दोनों त्रिभुवन सरस्वती एक ही हैं, तब इनका स्थितिकाल १० वीं शताब्दी ईसवी से पूर्व एवम् १३ वीं शताब्दी ई० के पश्चात् नहीं हो सकता।

(९) चिन्नम्मा —

अपने नाम से ही यह दक्षिण भारतीय कवयित्री प्रतीत होती हैं। उनके एक पद्य को भोज (१० शताब्दी ई०) ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण[3] में उद्धृत किया है, वही पद्य पुनः शाङ्र्गधरपद्धति में[4] भी उपलब्ध होता है।

(१०) सरस्वती —

सरस्वती के दो पद्यों में प्रथम सरस्वती कण्ठाभरण[5] (१० वीं शताब्दी ई०) तथा द्वितीय शाङ्र्गधरपद्धति[6] तथा सदुक्तिकर्णामृत[7] आदि सुभाषित सङ्ग्रहों में प्राप्त होता है। अतः इनका समय दसवीं शताब्दी ईसवी से पूर्व है।

(११) जघनचपला —

जघन चपला द्वारा जघन चपला नामक छन्द में रचित एक पद्य उप-

---

१. कर्पूरमंजरी, द्वितीय अङ्क, पृ० ४६

२. सदुक्तिकर्णामृत — १३६६

३. सरस्वतीकण्ठाभरण — ३।१०४

४. शाङ्र्गधरपद्धति — मूल प्रति - सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जौर.

५. सरस्वतीकण्ठाभरण — पृ० २२५

६. शाङ्र्गधरपद्धति — १०१२ पृ० १६२

७. सदुक्तिकर्णामृत — पद्य १७९८ — के०एल० मुखोपाध्याय, कलकत्ता १९६५

लब्ध होता है जिसका उल्लेख हमें केवल काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में ही नहीं मिलता अपितु विद्याकर रचित सुभाषित रत्न कोष[1] (११ वीं शताब्दी ईसवी) काव्य-तथा अन्य सुभाषित कोश सम्बन्धी रचनाओं में भी मिलता है। अत: इतना निश्चित है कि जघन-चपला ११ वीं ई० की पूर्ववर्तिनी हैं।

(१२) भवदेवी —

विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों में भवदेवी, भावकदेवी या भावाकदेवी के नाम पर तीन पद्य उपलब्ध होते हैं। इनमें से दो कवीन्द्र वचन समुच्चय[2] तथा एक पद्य सदुक्तिकर्णामृत[3] में मिलता है। इनके समय के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, केवल जिन रचनाओं में इनका नामोल्लेख है, उससे पूर्व ही इन्हें माना जा सकता है। कवीन्द्रवचनसमुच्चय का संग्रहकाल ११ वीं शताब्दी ईसवी तथा सदुक्तिकर्णामृत का संग्रह काल १३ वीं शताब्दी ईसवी से पूर्व का नहीं माना जा सकता है। अत: भवदेवी या भावकदेवी का उद्भव इन दोनों तिथियों से पूर्व होना ही सम्भव है।

(१३) मौरिका —

मौरिका द्वारा रचित चार पद्य, विविध कोश काव्यों अर्थात् सूक्ति मुक्तावली,[4] शार्ङ्गधर पद्धति,[5] सुभाषितावली[6] आदि में मिलते हैं। इनके अतिरिक्त मौरिका द्वारा लिखित न तो किसी काव्य रचना का परिचय मिलता है और न किसी ऐतिहासिक वृत्तान्त का ही। अत: इनका स्थितिकाल निश्चित करना अत्यन्त दुष्कर है। किन्तु शार्ङ्गधर पद्धति[7] में मिले एक पद्य से

---

१. सुभाषितरत्न कोष—८२५, पृ० १५३
२. कवीन्द्रवचनसमुच्चय पद्य १७७ एवं पद्य ३५६
३. सदुक्तिकर्णामृत—पद्य ७०६
४. सूक्ति मुक्तावली —पृ० २५६
५. शार्ङ्गधर-पद्धति—३४०३
६. सुभाषितावली—१३९६ पृ० २३४ एवं १०५०, पृ० १७५
७. शार्ङ्गधरपद्धति—१६३, पृ० २६

इतना कहा जा सकता है कि मौरिका १३ वीं शताब्दी ईसवी से पूर्व की है एवं १५ वीं शताब्दी ईसवी के बाद की नहीं हैं।

(१४) मारुला-

मारुला के नाम से जल्हण की सूक्ति मुक्तावली (१३ वीं शताब्दी ईसवी) में एक पद्य, तथा शाङ्र्गधर पद्धति (१४ वीं शताब्दी ईसवी) में भी एक पद्य प्राप्त होता है। अतः इतना निश्चित है कि मारुला इससे पूर्ववर्तिनी हैं।

(१५) राजकन्या-

राजकन्या रचित दो पद्य शाङ्र्गधर पद्धति[1] तथा सुभाषितावली[2] में उद्धृत किये गये हैं। दोनों ही पद्यों में राजकन्या[3] तथा उसके प्रति अनुरक्त चित्त वाले-बिल्हण की उक्ति है। चूंकि बिल्हण का समय १०८५ ईसवी है अतः राजकन्या का स्थिति काल भी ११ वीं शताब्दी ईसवी प्रतीत होता है।

(१६) लक्ष्मी-

लक्ष्मी या लक्ष्मी देवी मिथिला के राजा, जिनका शासनकाल तेरहवीं शताब्दी ईसवी है, हरि सिंह देव की रानी थी।[4] विद्याकर मिश्र द्वारा संगृहीत विद्याकरसहस्रकम्[5] नामक रचना में लक्ष्मी देवी के नाम से सात

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति, पद्य ५६७, पृ० ८१

२. सुभाषितावली १६६४, पृ० ३३५

३. राजकन्या शशीकला, या चन्द्रकला, कश्मीर के राजा की बुद्धिमती कन्या थी जिसका कि राजकवि बिल्हण के साथ प्रेमसम्बन्ध प्रसिद्ध था।

४. विद्याकरसहस्रकम्-विद्याकर पृ० १३, डा० उमेश मिश्र द्वारा प्रयाग विश्व विद्यालय से प्रकाशित सन् १९४२ ई०

५. वही, पद्य ११६-१२२, पृ० २१-२२

पद्य उपलब्ध होते हैं, ये सभी पद्य भ्रमरान्योक्तियों से सम्बन्धित हैं। इन्हीं में से एक पद्य शाङ्र्गधर पद्धति[1] में भी मिलता है।

(१७) सरस्वती-कुटुम्बदुहिता--

इनके नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये किसी शिक्षित परिवार की कन्या थीं। इनके तथा इनके पिता द्वारा रचित पद्य शाङ्र्गधर-पद्धति[2] (१४ वीं शताब्दी ईसवी) में उद्धृत किये गये हैं।

(१८) मदालसा--

मदालसा चौदहवीं ईसवी से पूर्ववर्तिनी हैं क्योंकि इनका एक पद्य शाङ्र्गधर पद्धति[3] में प्राप्त होता है।

(१९) गन्धदीपिका--

शाङ्र्गधर पद्धति[4] में आर्याछन्द के अन्तर्गत रचित एक पद्य गन्ध-दीपिका के नाम से उद्धृत किया गया है। अन्य किसी भी पूर्ववर्तिनी रचना में इनका उल्लेख नहीं मिलता है अतः ऐसा प्रतीत होता है कि गन्धदीपिका चौदहवीं शताब्दी ई० से पूर्व की है।

(२०) नागम्मा--

इनके नाम से ही प्रतीत होता है कि ये दक्षिण भारतीय महिला थीं। इनका समय भी चतुर्दश-शताब्दी ई० से पूर्व ही माना जा सकता है क्योंकि शाङ्र्गधरपद्धति[5] में नागम्मा के नाम से एक पद्य प्राप्त होता है।

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति--८१७

२. वही, ५११

३. वही, ४७१

४. वही, पद्य ३२५९, पृ० ४६८

५. वही, पद्य ८६, पृ० १२

(२१) सुभद्रा-

सुभद्रा के नाम से वल्लभदेव की सुभाषितावली[1] में एक पद्य मिलता है। प्रसिद्ध कवि, नाटककार एवं काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ राजशेखर[2] ने भी सुभद्रा के वाक्-व्यापार के चातुर्य की प्रशंसा की है अतः स्पष्ट है कि सुभद्रा दशम शताब्दी ईसवी के पूर्व की है।

(२२) इन्दुलेखा-

इन्दुलेखा का एक मात्र पद्य वल्लभदेव की सुभाषितावली[3] में उपलब्ध होता है अतः इन्दुलेखा १५ वीं शताब्दी ईसवी के पूर्व की मानी गयी है।

(२३) लक्ष्मीदेवी ठकुरानी-

लक्ष्मीदेवी ठकुरानी के नाम से एक पद्य सुन्दरदेव के सूक्तिसुन्दर[4] तथा लखिमाठक्कुराज्ञी के नाम से अनेक पद्य विद्याकर मिश्र रचित विद्याकरसहस्रकम्[5] में प्राप्त होते हैं। ये दोनों एक ही स्त्री द्वारा रचित प्रतीत होते हैं। ये मिथिला के प्रसिद्ध राजा शिवसिंह, की पट्टमहिषी थीं, जिन्होंने १५ वीं शताब्दी ई० में शासन किया था। वह एक प्रतिभाशालिनी कवयित्री थी, जिनके निर्देशन में महान् मैथिल कवि विद्यापति ने अपने गीतों की रचना की थी। यवनों द्वारा पति के मारे जाने पर, उन्होंने लगभग १२ वर्षों तक मिथिला में शासन भार को संभाला। वे असाधारण योग्यता से पूर्ण कवयित्री थीं।

---

१. सुभाषितावली, पद्य ३२५६, पृ० ५३७

२. सूक्तिमुक्तावली, पृ० ४७

३. सुभाषितावली, पद्य १६०२, पृ० ३२३

४. सूक्ति सुन्दर-पद्य संख्या ४६

५. विद्याकरसहस्रकम् - १६७, ४५५, ४५६, ५२७, ५२८, ५७६, ६०२-६०६, ६२१, ६७३,-८१४, ८१५

(२४) रसवती-प्रियंवदा-

रसवती प्रियंवदा[१] सोलहवीं शताब्दी ईसवी के प्रारम्भ में बङ्गाल के फरीदपुर जिले में उत्पन्न हुयी थीं। ये शिवराम की पुत्री और रघुनाथ की पत्नी थीं। ये विख्यात काव्य रचयित्री थीं, जिन्होंने `श्यामरहस्य` नामक धार्मिककृति की रचना की थी।

(२५) गौरी-

गौरी द्वारा रचित अनेक पद्यों में से पद्य सूक्ति सुन्दर[२] तथा अन्य पद्यवेणी[३] में उल्लिखित किये गये हैं। ये दोनों ही कृतियां सत्रहवीं शताब्दी ईसवी से पूर्व तथा अठारहवीं शताब्दी ईसवी के पश्चात् की नहीं हैं, अतः इनका समय १७ वीं शताब्दी ईसवी का मध्यकाल माना जा सकता है।

(२६) वेणीदत्ता-

वेणीदत्ता का एक मात्र पद्य वेणीदत्त द्वारा संगृहीत `पद्यवेणी` में[४] मिलता है। अतः इनको सत्रहवीं शताब्दी ईसवी के पूर्व का मानना ही उचित प्रतीत होता है।

(२७) केरली-

केरली नाम से प्रतीत होता है कि इन कवयित्री का कुछ सम्बन्ध केरल प्रदेश से रहा होगा। वेणीदत्त की पद्यवेणी[५] में केरली के नाम से उपलब्ध

---

१. संस्कृत पोयटेसेज़, भाग १, पृ० ३१

२. सूक्तिसुन्दर, पद्य संख्या ४८, १५७

३. पद्यवेणी - १७, ६३, ६५, १४५, १६६, १५६-१५७, १६२, १६५, २२४, २३८, २४०, २४५, ५०३, ५४६, ६६२, ६६७

४. पद्यवेणी - पद्यसंख्या ६३

५. वही - ७७८

पद्य से इतना निश्चित है कि यह सत्रहवीं ईसवी के पूर्व की कवयित्री हैं।

(२८) मधुरवणी–यह नहीं कहा जा सकता है कि तन्जोर के भूप रघुनाथ नायक (१६१४ ईसवी) के दरबार की प्रसिद्ध कवयित्री एवं हरिकवि द्वारा संगृहीत सुभाषितहारावली[1] (सत्रहवीं शताब्दी ईसवी) में उद्धृत एक पद्य की रचना करने वाली मधुरवणी दोनों एक ही थीं। किन्तु यह पूर्णरूपेण उचित हैं कि मधुरवणी का स्थिति काल सत्रहवीं शताब्दी ईसवी से पूर्व का है।

(२९) अज्ञातनामा–

किसी कवयित्री द्वारा लिखा हुआ एक पद्य सुभाषित हारावली[2] (सत्रहवीं शताब्दी ईसवी) में प्राप्त होता है।

(३०) पद्मावती–

पद्मावती द्वारा रचित दो पद्य 'दन्तालि दिण्डिम बीज' आदि एवम् 'हरिण्यस्त्वरण्ये' आदि हरिभास्कर रचित 'पद्मामृततरङ्गिणी'[3] में उद्धृत किये गये हैं, चूंकि हरिभास्कर के स्वयं के कथन के आधार पर पद्यामृत-तरङ्गिणी की रचना विक्रम संवत् १७३० अर्थात् १६७४ ईसवी में हुयी थी पद्यवेणी[4] में भी पद्मावती द्वारा रचित प्रायः सभी पद्य प्राप्त होते हैं। पद्मावती के जीवन एवं जन्मस्थान के विषय में कुछ कहना सम्भव नहीं है। इनके पद्यों से भी देश या स्थान का कुछ परिचय नहीं मिलता। गुजराती स्त्रियों का विशेष पक्षपात होने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह गुजराती थीं।

---

१. सुभाषित हारावली–~~पंक्ति~~- पद्य ७७, मूलप्रति संख्या २२६६, बम्बई विश्व-विद्यालय पुस्तकालय, १६४४

२. सुभाषितहारावली–४०

३. पद्यामृततरंगिणी–१४०- २, ६

४. पद्यवेणी ५४, १२२, २१६, २१८, २२७, २४६, २६१, २६८, ५०६, ६१८, ५६७, ६३६, ६६४, ७०६, ७५४, ७६४, ८०८, ८८७

एक पद्य में किसी राजा का वर्णन एवम् नखशिख वर्णन के अनेक ललित पद्य इनका सम्बन्ध सामन्ती दरबार से बतलाते हैं।

(३१) मदिरेक्षणा-

मदिरेक्षणा के नाम से सुभाषित सार समुच्चय[१] में एक पद्य उल्लिखित किया गया है। चूंकि इस संग्रह के रचनाकाल के विषय में ही सन्देह है अतः मदिरेक्षणा का समय निश्चित नहीं किया जा सकता।

(३२) कुटला- कुटला द्वारा आर्या छन्द में रचित 'कुलटोक्ति' से सम्बद्ध एक पद्य हरि कवि द्वारा सङ्गृहीत 'सुभाषितहारावली'[२] (सत्रहवीं शताब्दी ईसवी) में हस्तगत होता है।

(३३) विद्यावती-

विद्यावती के स्थिति काल एवम् जन्मस्थान आदि के बारे में कोई विशेष परिचय नहीं मिलता है। विद्यावती के द्वारा रचित बारह पद्यों का अनुष्टुप छन्द में एक स्तोत्र प्राप्त होता है, जो कि मीनाक्षी देवी की स्तुति के लिए लिखा गया है।

इन स्त्री कवयित्रियों के अतिरिक्त द्वितीय कोटि में वे महिलायें आती हैं, जिन्होंने प्रबन्ध काव्यों की रचना की है। इनमें से कुछ के काव्य आज भी उपलब्ध होते हैं और कुछ स्त्रियों की रचनाओं का तो नाम मात्र शेष मिलता है, उनकी सम्पूर्ण सामग्री काल की कराल छाया में लिप्त हो गयी है।

---

१. सुभाषितसार समुच्चय, प० २३, मूल प्रति संख्या ५४५४ एसियाटिक सोसाइटी पुस्तकालय कलकत्ता, १६३४

२. सुभाषित हारावली-प० संख्या ७६

संस्कृत कवयित्रियों द्वारा रचित उपलब्ध प्रबन्ध काव्य—

(१) गङ्गादेवी—

गङ्गादेवी द्वारा रचित 'मधुराविजयम्'[१] या वीरकम्परायचरितम् नौ सर्गों का महाकाव्य है। इस ऐतिहासिक कृति में उन्होंने अपने पति द्वारा की गयी मधुरानगरी की विजय का विस्तृत वर्णन किया है। चूंकि वीर कम्पराय बुक्कराय के द्वितीय पुत्र थे, जिन्होंने १३४३ ईसवी से १३७९ ई० तक शासन किया अत: मधुराविजयम् की रचना १४ वीं शताब्दी ईसवी के मध्य में हुयी होगी।

(२) तिरुमलाम्बा—

विजयनगर साम्राज्य के शासक अच्युतराय की प्रधान महिषी तिरुमलाम्बा ने 'वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू'[२] की रचना की। इस चम्पू का निर्माण अच्युतराय के राज्यकाल में ही हुआ होगा। अच्युतराय का राज्याभिषेक १५२९ ई० में हुआ था। ऐसा कलहस्ति शिलालेख से ज्ञात होता है। उन्होंने १६४२ ई० तक शासन किया।[३] साथ ही इस चम्पू काव्य की कथा अच्युतराय के पुत्र चिन्न वेङ्कटाद्रि के युवराज पद पर अभिषिक्त होने तक की है अत: १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में ही वरदाम्बिका परिणाय चम्पू का निर्माण काल सम्भव है।

(३) मधुरवाणी—

मधुरवाणी तन्जौर के रघुनाथ भूप के दरबार की प्रमुख विदुषी स्त्री थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि मधुरवाणी एवं सुभाषितहारावली[४]

---

१. मधुराविजयम्—श्री एस० तिरुवेङ्कटाचारी द्वारा अन्नमलाई विश्वविद्यालयसे प्रकाशित, १९५७

२. वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू—डा० लक्ष्मण स्वरूप द्वारा परिचय सहित, मोतीलाल बनारसी दास—लाहौर से प्रकाशित।

३. मध्यकालीन भारत— निवासाचारी एवं रामस्वामी आयंगर, पृ० २७६ प्रका०, रामनारायण लाल, इलाहाबाद १९५१

४. सुभाषितहारावली, पद्य सं० ७७

में उद्धृत मधुरवाणी एक ही कवयित्री है। रघुनाथ नायक के कहने से मधुरवाणी ने रघुनाथ द्वारा रचित आन्ध्ररामायण का संस्कृत अनुवाद किया। आज उस आन्ध्र रामायण एवम् उसके अनुवाद का उल्लेख अनेक पुस्तकों में मिलता है किन्तु मूलप्रति अप्राप्य है। इस प्रकार इनका समय सत्रहवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया जाता है।

(४) रामभद्राम्बा-

रामभद्राम्बा ने १७ वीं शताब्दी ई० के उत्तरार्ध में नायक शासक रघुनाथ की संरक्षता में 'रघुनाथाभ्युदय'[१] नामक बारह सर्गों के एक महाकाव्य का निर्माण किया। इस ऐतिहासिक तत्त्वों से पूर्ण कृति में तन्जोर के राजा अच्युतराय के पुत्र रघुनाथ की विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। रामभद्राम्बा रघुनाथ भूप की रानी तो नहीं थी किन्तु एक विदुषी के रूप में उनके दरबार में निवास करती थीं।

(५) सुभद्रा-

कोचीन के राजपरिवार से सम्बन्धित सुभद्रा ने अपने मन्दिर के देवता पूर्णत्रयीश की प्रशंसा में 'पूर्णत्रयीशस्तोत्र की रचना की।[२] इनका समय (मुस्लिम संवत १०१६ - १०६६) अर्थात् १६१२ - १६८६ ईसवी है। सुभद्रा रचित पूर्णत्रयीशस्तोत्र[३], ४६ पद्यों का एक विस्तृत स्तोत्र है। प्रस्तुत स्तोत्र में

---

१. रघुनाथाभ्युदय --तन्जोर महाराजा सरफोजी पुस्तकालय में प्राप्त मूल प्रति संख्या ३७२२

२. पूर्णत्रयीश स्तोत्र --केरल विश्वविद्यालय की ओरियन्टल लाइब्रेरी की पुस्तिका के भाग १४, संख्या ४ में प्राप्त, त्रिवेन्द्रम् १९६५ ई०

३. वही--यह संस्करण त्रिवेन्द्रम् पुस्तकालय में उपलब्ध मूल प्रति, संख्या १२५६५ के आधार पर किया गया है।

कवयित्री ने सर्वप्रथम देवताओं की वन्दना के पश्चात् अपने पिता एवम् गुरु का संक्षिप्त परिचय देकर पूर्णत्रयीश के विविध अवतारों का वर्णन करने का प्रयास किया है।

देवकुमारिका—

देवकुमारिका द्वारा लिखी गयी `वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति`[१] उपलब्ध होती है। देवकुमारिका राणा अमरसिंह की पत्नी, जयसिंह की पुत्र-वधू, तथा चित्तौड़ के राजा संग्राम सिंह तथा चन्द्रकुमारिका की माता थीं।[२] वह सबल सिंह की पुत्री, एवम् सुलतान सिंह की भगिनी थी।[३] इसका उद्भव काल सत्रहवीं शताब्दी ईसवी का उत्तरार्ध तथा अठारहवीं शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध है। उनके पुत्र का राज्याभिषेक सन् १७१०--११ ई० में हुआ था।[४] तथा एक विधवा के रूप में देवकुमारिका ने १७१६ ई० में वैद्यनाथ के मन्दिर की प्रतिष्ठा की।[५] यह शिलालेख पांच प्रकरणों में विभक्त है। (१) वंश प्रकरण (२) सङ्ग्राम सिंह पट्टाभिषेकादि (३) दान प्रशंसा (४) वाह्वानोद्भव (५) प्रतिष्ठा। इस प्रशस्ति की रचना वैद्यनाथ मन्दिर के प्रतिष्ठापन कार्य के शुभ अवसर पर १७१६ ई० में की गयी थी।

लक्ष्मी राज्ञी—मालावार की रानी लक्ष्मी राज्ञी ने सन्तान गोपाल काव्य[६] का

---

१. वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति—श्री जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा अपनी `संस्कृत पोयटेसेज` के द्वितीय भाग में परिचायात्मक टिप्पणी सहित कलकत्ता से प्रकाशित, १९४०

२. पद्यसंख्या १०९, पृ० ३८

३. वही पद्यसंख्या १००- १०१, पृ० ३५

४. वही, पद्यसंख्या ५०--पृ० १७

५. वही, पद्यसंख्या १३३, पृ० ४५

६. हस्तलिखित प्रति इण्डिया आफिस लाइब्रेरी में उपलब्ध, तथा श्री जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा `संस्कृत पोएटेसेज` के अन्तर्गत कलकत्ता से प्रकाशित १९४०

स्थानम् पर 'साहित्यचन्द्रिका' की उपाधि से विभूषित किया गया।[१]

उपर्युक्त उपलब्ध रचनाओं के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य की प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका द्वारा रचित कौमुदी महोदत्सव[२] नाटक भी प्राप्त होता है। चूंकि प्रस्तुत कृति का रचना काल विवादग्रस्त एवं अनेक विद्वानों के मतों से समन्वित है अत: इसका विवेचन नाटक के आलोचनात्मक अध्ययन के अध्याय में विस्तारपूर्वक किया जायगा।

प्रबन्ध काव्यों के अतिरिक्त स्त्री-विदुषियों ने स्मृति एवं पुराण सम्बन्धी ग्रन्थों की भी रचना की है।

बीनबाई रचित द्वारकापत्तलम्[३] की हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ रामानुज मत से सम्बद्ध[४] है इसकी प्रति में भी १५१८ ई०[५] का समय लिखा हुआ मिलता है अत: बीनबाई का उद्भव काल रामानुज के पश्चात् (१२ वीं शताब्दी ईसवी का प्रारम्भ) तथा १५१८ ई० के मध्यका मानना उचित है।

स्वयं रचयित्री का कथन है कि उनके पिता, यादव वंश में उत्पन्न होने वाले, मण्डलिक नृप थे।[६] यह कहना उचित होगा कि यह मण्डलिक गिरनार (काठियावाड़) में होने वाले चूड़ासम मण्डलिक शासकों में से एक थे। मण्डलिक प्रथम का शासन काल ११ वीं शती ईसवी का प्रारम्भ है और रामानुज का जन्म उसके कुछ वर्षों उपरान्त हुआ। अत: मण्डलीक प्रथम को बीनबाई का पिता नहीं माना जा सकता। सम्भवत: चतुर्थ चूड़ासम मण्डलिक राजा को, बीनबाई का

---

१. ग्रामज्योति परिचय, पृ० ४

२. कौमुदी महोत्सव—अनुवादक देवदत्त शास्त्री, जननी कार्यालय, प्रयाग, सं० २००८

३. द्वारकापत्तलम् श्री जतीन्द्रविमल चौधरी द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित

४. रामानुजमतस्यायं ग्रन्थ: —द्वारका पत्तलम्, पृ० १

५. संवत् १५७४ वर्षे भाद्रपद - शुक्ले १३ सोमे लिखितम्।

६. आसीद् यादव-वंशज: परिलसत्-कीर्त्तिः प्रतापोन्नतो,
मानी मण्डलिकाभिध: क्षितिपति: सद्धर्मविद्याश्रय:।
आसीन्निर्जित-वीर-वैरि-निवयस्त्यागार्थ कोशोपमो
योऽर्थि प्रार्थितद: कलाविद युगेऽगण्यैर्गुणैरन्वित:॥ द्वारकापत्तलम प्रस्तावना पृ० २

पिता नहीं माना जा सकता । सम्भवत: चतुर्थ चूड़ासम माण्डलिक राजा को, बीनबाई का पिता मानना उचित है ।[१]

द्वारकापत्तलम् से ही ज्ञात होता है कि बीनबाई राजा हर सिंह की प्रधान राज्ञी[१क] थी । हरसिंह, वीरसिंह के पुत्र, राजा प्रताप के पौत्र थे । प्रताप वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, जिन्होंने गंगा के तट पर स्थित पाटलिपुत्र में शासन किया था ।

अत: बीनबाई का स्थितिकाल बारहवीं से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी ईसवी के अन्त के बीच मानना उचित होगा । इनके स्थान के सम्बन्ध में गिरनार काठियावाड़ के सम्बन्ध में सम्भावना की जाती है ।

विश्वास देवी ने गङ्गावाक्यावली[२] नामक स्मृति विषयक ग्रन्थ की रचना की । विश्वासदेवी, मिथिला के राजा शिवसिंह के अनुज पद्मसिंह की पत्नी थीं । शिवसिंह की मृत्यु हो जाने पर, पद्मसिंह को शासन सत्ता प्राप्त हुई । मिथिला का राजपरिवार सभ्य एवं सुशिक्षित था । विश्वासदेवी और शिवसिंह की रानी लखिमादेवी दोनों ही विदुषी एवं काव्यरचना में समर्थ नारियाँ थीं । उन्हीं की राजसभा में विद्यापति तथा अन्य कवि भी विद्यमान रहते थे ।

संस्कृत कवयित्रियों द्वारा रचित अनुपलब्ध प्रबन्ध-काव्य—

प्रस्तुत कृतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य रचनाओं का भी उल्लेख विविध ग्रन्थों में मिलता है, किन्तु आज उनमें से अधिकांश पुस्तकें उपलब्ध नहीं होती ।

---

१. द्रष्टव्य – द्वारका पत्तलम् का परिचय (लेखक श्री यतीन्द्र विमल चौधरी), पृ०२

१क. तस्य कन्या वदान्यासीद् बीनबायीति विश्रुता ।
हरसिंहमहीपस्य वल्लभा पुण्य-वल्लभा ।। द्वारकापत्तलम् प्रस्तावना, पृ० ३

२. गंगावाक्यावली – श्री जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित

(१) अनसूया कमलाबाई बापट-

अनसूया कमलाबाई[१] एक मराठी महिला थीं, जिन्होंने दत्तात्रेय की संस्कार सम्बन्धिनी पूजा के ऊपर, 'श्रीदत्तपंचामृत' नामक प्रयोग या निबन्ध की रचना की थी। इसके प्रथम दो अध्याय लेखिका का स्वरचित अंश है, शेष अंश विविध साधनों द्वारा संगृहीत किया गया है।

(२) बालाम्बिका-

मद्रास नगर की निवासिनी बालाम्बिका[२], डा० ए० आर० वैद्यनाथ शास्त्री की कन्या थीं। उन्होंने अनेक संस्कृत ग्रन्थों की रचना की।

अ- सुबोध रामचरित--यह साधारण भाषा में लिखा गया, रामायण से सम्बन्धित काव्य है, जिसमें उत्तर काण्ड नहीं है।

ब--आर्य रामायण--यह भी रामकथा पर आधारित है।

स--गान कदम्ब --इसके अन्तर्गत सुन्दर तथा सङ्गीतमय छन्दोबद्ध रचनायें हैं।

द--दैवीत्रयत्रिंशन्माला।

(३) हनुमाम्बा-- दक्षिण भारत के मद्रास नगर प्रान्त में नेल्लुरुपुर में रहने वाली हनुमाम्बा[३], ब्रह्मानन्द सरस्वती की शिष्या थीं। अपने गुरु की प्रशंसा में उन्होंने 'ब्रह्मानन्द सरस्वती पादुका पूजन' की रचना की। इसमें उन्होंने गुरु के प्रति विविध प्रयोग एवं पद्धतियों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रसिद्ध अद्वैतवादी भगवान् शंकराचार्य की प्रशंसा में 'शंकर भगवद्-

---

१. संस्कृत पोयटैसेज परिचय-भाग १, पृष्ठ एल० ६

२. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर-लेखक एम० कृष्णामाचारियर, पृ० ३६७

३. संस्कृत पोयटैसेज परिचय-भाग १, पृ० एल० १०

पादसहस्रनामावली` को भी अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया । इसी प्रकार की उनकी तीसरी कृति `दत्तपूजागीताकदम्ब` का भी उल्लेख मिलता है । इसमें उन्होंने भगवान् दत्तात्रेय की पूजा की पद्धति का रागात्मक श्लोकों में वर्णन किया है । इसके द्वारा विविध राग-रागिनियों के ज्ञान का भी परिचय मिलता है ।

(४) ज्ञानसुन्दरी--

कुम्भकोनम् की नर्तकी कन्या ज्ञानसुन्दरी[१] एक प्रसिद्ध कवयित्री थीं । इनका २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही स्वर्गवास हो गया । मैसूर दरबार में उन्हें `कविरत्न` की उपाधि से विभूषित किया गया । वे श्री कृप्पू स्वामी शास्त्री की शिष्या थीं । उन्होंने `बालास्य चम्पू` नामक काव्य की छः स्तवकों के अन्तर्गत रचना की ।

(५) कामाक्षी--

कामाक्षी[२] श्री पंचपगेसार्य की कन्या तथा तंजोर निवासी श्री जी०ए० मुथुकृष्णा अय्यर की पत्नी थी । उन्होंने कालिदास की कृतियों से प्रभावित होकर `रामचरित` की रचना की ।

(६) मण्डयम धाटी आलमेलाम्मा[३]--इन दक्षिण भारतीय कवयित्री ने, भगवान् बुद्ध के जीवन पर आधारित `बुद्धचरितामृत` को सरल एवं सुगम भाषा में लिखा ।

(७) राधाप्रिया--

राधाप्रिया[४] उड़ीसा के राजा रघुनाथ देववर्मन् के पुत्र विश्वनाथ

---

१. त्रिवेन्द्रम से प्रकाशित सिलवर जुबली पब्लिकेशन (१६३४ में श्री कृष्णामाचारियर द्वारा लिखित` संस्कृत कवयित्रियों` से सम्बद्ध लेख पृ० ६३
२. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६७
३. संस्कृत पायटैसेज, भाग १, पृ० एल० १२
४. रुक्मिणी परिणय--लेखक विश्वनाथ पृ० ३६६ मन्मथनाथ घोष द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित, १६०५

दैववर्मन् की रानी थी । उन्होंने अपने पति की सहायता से 'राधागोविन्द - शरदरास' की रचना की । उन्होंने अपने पति द्वारा रचित 'रुक्मिणी - परिणय' पर 'राधाप्रिया' नामक विद्वतापूर्ण व्याख्या लिखी, तथा कृष्ण के साथ राधा के विवाहोत्सव से सम्बन्धित ग्यारह सर्गों की कविता लिखी ।

(८) रमाबाई—

कवयित्री रमाबाई[1] मैसूर प्रान्त के गड्गामूल नामक स्थान पर उत्पन्न हुयी थी । जिनके पिता का नाम अनन्त सूरी तथा माता का नाम अम्बा था ।[2]

उनकी कृति 'लक्ष्मीश्वरचम्पू काव्य' १८७६—८० ई० में प्रकाशित हुआ था अत: सम्भव है कि रमाबाई का उद्भव १६ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ होगा । 'लक्ष्मीश्वरचम्पू' पाँच सर्गों का एक चम्पूकाव्य है । इस कृति की रचना उन्होंने मिथिला के राजा के जन्म तथा राज्याभिषेक से सम्बन्धित अनेक घटनाओं को लेकर की थी ।

(९) श्रीदेवी बालराज्ञी—

श्रीदेवी बालराज्ञी[3] ने भागवत-पुराण पर आधारित 'चम्पूभागवत' नामक गद्यपद्य मिश्रित रचना की ।

(१०) सुनामणी देवी—

सुनामणी देवी[4] ने 'कामाक्षामृत' नामक धार्मिक कृति को अपनी

---

१. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, सन् १९३९

२. वही, पृ० ४५४

३. संस्कृत पोयटेसेज, भाग १, पृ० एल० २०

४. वही (परिचय), पृ० एल० २०

लेखनी द्वारा प्रसूत किया ।

(११) सुन्दरवल्ली—सुन्दरवल्ली[1] मैसूर प्रान्त की निवासिनी थी । इनके पिता का नाम नरसिंह आयंगर और गुरु का नाम कस्तूरी रंगाचार्य था । उन्होंने रामायण के विविध काण्डों के आधार पर की 'रामायण चम्पू काव्य' की रचना छः सर्गों में की ।

(१२) त्रिवेणी—

दक्षिण भारतीय लेखिका त्रिवेणी,[2] का उद्भव भी उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ । वह 'यादवराघवपाण्डवीय' के रचयिता अनन्ताचार्य की पुत्री थीं, तथा उनका विवाह श्रीपेरुम्बुदुर निवासी वेंकटाचार्य के साथ सम्पन्न हुआ । अकस्मात् पति तथा एक मात्र पुत्र की मृत्यु के शोक के कारण उन्होंने एकान्तवास स्वीकार कर लिया । वह ऐसी लेखिका थीं, जिन्होंने नाटक, काव्य गीतिकाव्य तथा भक्तिपरक रचनायें भी कीं । उनकी कृतियों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है —

अ- भक्तिपरक रचनायें —लक्ष्मी सहस्त्र, रंगनाथ सहस्त्र ।
आ- गीतिकाव्य —शुक संदेश, भृंगसंदेश । (भृंगसंदेश)
इ—काव्य —रंगाभ्युदय, सम्पत्कुमार विजय ।
ई— रंगराट्समुदय, तत्त्वमुद्राभद्रोदय ।

---

१. त्रिवेन्द्रम द्वारा १६३४ में प्रकाशित सिलवर जुबली पब्लिकेशन, पृ० ६३
२. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ३६८

चतुर्थ-अध्याय

स्फुट पद्यों की रचयित्रियों की कृतियों का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन

इस अध्याय में सर्वप्रथम स्फुट पद्यों की रचना करने वाली संस्कृत कवयित्रियों की रचनाओं का आलोचनात्मक मूल्याङ्कन प्रस्तुत किया जायगा, तत्पश्चात् प्रबन्ध काव्य की निर्मात्री नारियों का उल्लेख क्रमश: किया जायगा ।

(१) चन्द्रकान्ता भिक्षुणी —

चन्द्रकान्ता भिक्षुणी द्वारा लिखा गया 'अवलोकितेश्वर स्तोत्र'[१] आठ पद्यों का अष्टक स्तोत्र है । इसमें उन्होंने भगवान् अवलोकितेश्वर की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का वर्णन किया है । वे चन्द्रमा की भाँति पवित्र तथा कमल की भाँति आकर्षक हैं । वे सम्पूर्ण संसार पर दया करने वाले तथा ज्ञान के भण्डार हैं । समस्त व्याधियों को दूर करने वाले तथा अनेक सुखों को प्रदान करते हैं ।[२]

प्रस्तुत अवलोकितेश्वर स्तोत्र द्वारा निश्चित रूप से कवयित्री की आन्तरिक श्रद्धा एवं पवित्र हृदय का स्पष्ट परिचय मिलता है । इसमें महायान सम्प्रदाय के देव बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की प्रशंसा की गयी है । यद्यपि कवयित्री ने अपने भावों को रुचिकर पदावली में व्यक्त नहीं किया, किन्तु फिर भी

---

१. संस्कृत पोयट्रिसेज, भाग १ पृष्ठ २

२. कटि-वेष्टितचित्रसुवस्त्रधरं, जिनज्ञानमहोदधिपारगतम् ।
बहुपुण्यमुपार्जितलब्धवरं, ज्वर-व्याधिहरं बहु-सौख्यकरम् ।।
—अवलोकितेश्वर स्तोत्र ५

सभी पद्यों के द्वारा उसकी भक्ति एवम् भावना झलकती है। अवलोकितेश्वर स्तोत्र वैदर्भी शैली का सुन्दर उदाहरण है, जिसमें अनुप्रासमयी भाषा का प्रयोग[1] उक्तियों द्वारा किया गया है। उपमा अलङ्कार[2] की शोभा भी दर्शनीय है। इनके पद्यों में छन्द विषयक दोष[3] भी विद्यमान है। आठों पद्यों में त्रोटक छन्द का प्रयोग किया गया है।

(२) फल्गुहस्तिनी –

फल्गुहस्तिनी के नाम से दो पद्य शाङ्र्गधरपद्धति, सुभाषितावली, सूक्तिमुक्तावली तथा अन्य सुभाषितसंग्रह सम्बन्धी ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इनमें से प्रथम काव्य सम्बन्धी तथा द्वितीय दार्शनिक भावना से ओत-प्रोत रचना है।

प्रथम पद्य में चन्द्रोदय वर्णन का चित्र अङ्कित किया गया है। इसमें चन्द्र के स्वाभाविक सौन्दर्य का का दिग्दर्शन कराया गया है। भगवान् शिव की जटाओं में उसकी स्थिति, निशा के मुख की मुस्कान तथा कामदेव के धनुष आदि के रूप में उसकी शोभा रुचिकर है।[4] द्वितीय पद्य में नश्वर संसार तथा प्राणिमात्र की क्षणभंगुरता की ओर सङ्केत किया गया है। विधाता ने निस्सन्देह रूप से महान् एवं श्रेष्ठ वस्तुओं का सृजन किया गया है। किन्तु रचना करने के पश्चात् वह उसे शीघ्र ही नष्ट भी कर देता है, यह तो दैव की मूर्खता ही है।[5] यदि वह वस्तु कुछ समय तक स्थायी रहे, तो उससे लाभ की सम्भावना अधिक की जा सकती है।

---

१. कुटिलामलपिङ्गलधूम्रजटं, शशिबिम्बसमुज्ज्वलपूर्णमुखम् ।
कमलायतलोचन-चारुकरं, हिमखण्डविमण्डल-पुण्डपुटम् ।। -अवलोकितेश्वर स्तोत्र ३

२. अधरंजितपङ्कजनाभिसमम् - अवलो०, स्तोत्र ४

३. अवलोकितेश्वर स्तोत्र, पद्यसंख्या १,५,६,८

४. शाङ्र्गधरपद्धति ३६३०, सुभाषितावली-१६६३, पृ० ३४१

५. सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः।
तदनु तत्क्षण-भङ्ग-करोति चेदहह कष्टमपण्डितता विधेः ।।
— सुभाषितावली ३१२५, सूक्तिमुक्तावली पृ० ४५१

सम्भावना अधिक की जा सकती है।

जब वामन जैसे काव्यशास्त्रीय विद्वान् ने अपनी 'काव्यलङ्कार-सूत्रवृत्ति' में फल्गुहस्तिनी के प्रथम पद्य का उद्धरण दिया है, तो निश्चित रूप से वे एक उच्चकोटि की कवयित्री थीं। उनके पद्य में रूपकों की छटा कितनी सुहावनी है।[1] उसके हृदय में प्रकृति के प्रति स्वाभाविक प्रेम विद्यमान था, इसी भाव के कारण जहां उन्होंने प्रथम पद्य में प्रकृति वर्णन किया है, वहीं, द्वितीय पद्य में विधि को उपालम्भ दिया है। इनकी पदावली सरस एवम् सुगम हैं। उनके पद्यों की प्रमुख विशेषता विचारों की स्पष्टता, भावों की उच्चता एवं प्रकृति प्रेम है।

विज्जका या विज्जिका —

संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका का उल्लेख विद्या, विज्जा, विज्जिका, विजया, विजयाङ्का, कर्णाटराजप्रिया आदि अनेक नामों से मिलता है। आज तक इनके नाम से उद्धृत किये गये अनेक पद्य मिलते हैं। सभी पद्य सुभाषित प्रबन्धों, शार्ङ्गधर-पद्धति, सदूक्तिकर्णामृत, सूक्तिमुक्तावली, सुभाषित-सुधारत्नभाण्डागारम् आदि तथा अलङ्कार विषयक ग्रन्थों में आदर पूर्वक उल्लिखित किये गये हैं। कुछ कवितायें काल की कराल छाया में निमग्न भी हो चुकी होंगी जिनसे कि हम परिचित नहीं है। उनकी कविता का उदाहरण देने वाले लोगों में मुकुलभट्ट ही प्रथम हैं —ऐसा आज ज्ञात होता है।

---

१. त्रिनयन-जटावल्ली पुष्पं निशा वदनस्मितं-
गृहकिसलयं सन्ध्यानारीनितम्बनखक्षतम् ।
तिमिरभिदुरं व्योम्नः शृङ्गं मनोभवकार्मुकं -
प्रतिपदि नवस्येन्दोर्बिम्बं सुखोदयमस्तु नः ।।

—शाङ्र्गधरपद्धति ३६३०, सुभाषितावली १९९३, पृ० ३४१, सम्भालङ्करणम् (गोविन्दजित्) ३६६ पृ० ३३ प्राच्यवाणी, चौधरी, कलकत्ता, १९४७, सुभाषितसुधारत्न भाण्डागारम् — १४८।८७

विज्जा की कविता का अध्ययन करने पर उसे तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है - १- मानव सम्बन्धी २- दैवसम्बन्धिनी ३- प्रेमसम्बन्धिनी ।[1]

सर्वप्रथम दैवसम्बन्धिनी कविता ही उल्लेखनीय है। दैव को रोकने में कोई भी समर्थ नहीं पाता । अत्यन्त उच्च व्यक्ति भी समय आने पर कभी निम्न, दीन, दुःखी अवस्था को प्राप्त करता है। भाग्य का विपर्यय है कि जिस सरोवर में मद दिग्गज से शोभित लहर आकाश को छूती थी, वही आज एक बगुले के चलने से मलिन होने योग्य हो गया ।[2]

जब मनुष्य स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है, तो वह स्वयं को दोषी न ठहराकर दैव को ही उपालम्भ देता है। नियति की गति अचिन्त्य है, वह अपने पथ पर स्वच्छन्दता पूर्वक विचरण करती है। चिन्ता चक्र पर दुष्ट विधाता हमारे मन को मिट्टी की भाँति विपत्ति रूपी दण्ड से एकत्रित करके बलात् घुमाता रहता है। वह क्या करेगा- इसका ज्ञान साधारण प्राणी को नहीं हो पाता ।[3]

---

१. द्रष्टव्य-'कवने काञ्चन कामिन्यः' शीर्षक में विद्वान् काशीप्राणेशाचार्य द्वारा लिखा गया लेख-श्रीमन्महाराजा संस्कृत महापाठशाला पत्रिका १९३८ जनवरी-मार्च , मैसूर ।

२. माद्यद्दिग्गज-दान-लिप्त-करट-प्रक्षालन-शोभिता-
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पान्तर-स्थायिनस्-
तस्याप्येकबक-प्रचार-कलुषं कालेन जातं जलम् ।।

— शाङ्र्गधरपद्धति- ११३१, सूक्तिमुक्तावली ८।१०४, सु०सु०र० भाण्डागारम्- ६०५।१४

३. प्रियसखि । विपद्दण्ड-प्रान्त-प्रपात-परम्परा,
परिचय-बले चिन्ता चक्रे निधाय विधिः खलः ।
मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलालवत्
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र करिष्यति ।।

शाङ्र्गधरपद्धति, ४५१, पृ० ६७
सुभाषितावली ३१३७, पृ० ५९८
सुभाषितसुधारत्न भाण्डागारम् ३७७।६४

इसी भांति एक अन्य पद्य में विज्जिका दैव को सम्बोधित करके कहती हैं कि विपत्ति में भी बड़े लोगों का धैर्य टूटता नहीं है क्योंकि इनका स्वभाव अविचल कुलपर्वत के सदृश है, क्षुद्र जलराशि नहीं है।[१]

किन्तु विज्जका की रचनायें सर्व-व्यापकी हैं, जहां एक ओर उन्होंने दैव या विधाता को उपालम्भ दिया है, वहीं दूसरी ओर उन्होंने सांसारिक विषयों की ओर भी दृष्टिपात किया है।

कमल विजयी नायिका के मुख की प्रशंसा कितनी सुन्दर श्लिष्टपदावली में की है। "कमल ने खिले हुए कोश (कोष), चारों खिले हुए पत्ते (पत्र, वाहन) दुर्गम (किला) जल, तथा उज्ज्वल मैत्र मण्डल (सूर्य मण्डल) को मित्र बनाया। कण्टकों को भी उसने नीचे कर दिया। इतना ही नहीं, उसने शिलीमुख (बाण तथा भ्रमर) को भी खींच रक्खा है, किन्तु फिर भी मुख को जीतने में समर्थ न हो सका।"[२]

विज्जा द्वारा लिखित चाटुकारिता से सम्बन्धित एक उक्ति भी उल्लेखनीय है इसमें भी श्लिष्ट पदों द्वारा पृथ्वी रूपी नायिका पर राजा के अधिकार का वर्णन है। " (उसने) चन्द्रसूर्य वंशी कौन से राजा नहीं पाये, किन्तु है देव, हम समझते हैं, पृथ्वी ने तुम्हीं को एक स्वामी पाया, जिसने कि अङ्गदेश को जीतकर कुन्तल को छीनकर, विस्तृत चोल देश को हरा कर, अब मध्यदेश को लेकर, काञ्ची के ऊपर हाथ डाला है।"[३]

---

१. विरम विफलायासादस्माद् दुरध्यवसायतो,
विपत्तिमहतां धैर्यध्वंसं यदीप्सितुमीहसे।
अयि जडविधे कल्पापाय-व्यपेत-निज-क्रमाः,
कुलशिखरिणः क्षुद्राः नैते न वा जलराशयः।।
— सुभाषितावली ३१३८

२. ~~[illegible]~~, शार्ङ्गधर-पद्धति ३३१२, सु०सु०र०भाण्डागारम् ८०।८८

३. सदुक्तिकर्णामृत १४४१

अन्य कवयित्रियों की भांति विज्जिका ने भी 'दृष्टि' का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। इसमें उन्होंने सम्भवत: अपने आश्रयदाता किसी राजा की विविध भंगिमाओं का चित्रण किया है। उनकी दृष्टि प्रणयी जनों में लक्ष्मी, शत्रुओं में नाश में और स्त्रियों में काम को उत्पन्न करने वाली है।[१]

इसी प्रकार विद्या ने एक पद्य में राजा की खड्ग की प्रशंसा की है। "हे देव समर में तुम्हारी खड्गलता से यश रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ, वायु उसके धूलि रूपी राशि को फैलाता है, आलियां उच्च स्वर में गाती है, शिर-हीन धड़ नाचते हैं, संसार के बन्धन से शत्रुओं का मोक्ष तुरन्त हो गया।"[२]

इन विषयों के अतिरिक्त प्राकृतिक विषयों की ओर भी उन्होंने दृष्टिपात किया है। किसी चम्पक वृक्ष की दयनीय अवस्था का कितना स्वाभाविक वर्णन किया गया है।[३]

एक अन्य वृक्ष की महानता का गुणगान करती हुयी वह कहती है कि -" अच्छे छायायुक्त, फल के भार से नत शिखर वाले, सबसे अधिक शान्ति-

---

१ जनयति जननाथ दृष्टिरेषा, तवनवनीलसरोरुहाभिरामा।
प्रणयिषु सुमाश्रितेषु लक्ष्मीमरिषु च मङ्गमनङ्गमङ्गनासु ।।
— सदुक्तिकर्णामृत १४०१

२. सदुक्ति कर्णामृत १५०६

३. मञ्जी रोमाञ्चिताङ्गी रतिमृदिततनो: कर्कटी वाटिकायां,
कान्तस्याङ्गे प्रमोदादुभयभुजपरिष्वक्त-कण्ठे निलीना।
पादेन प्रेङ्खयन्ती मुखरयति मुहु: पामरी फेखाणां,
राश्रावृत्रास-कैतीवृति-शिखर-लता-लम्बिनीं कम्बुमालाम् ।।
—सदुक्ति कर्णामृत, ५७६

प्रद, सुवृक्ष तुम्हे देखकर, हम मार्ग त्याग कर आ गये। यदि कोटर के गर्भ में चलते साँपों के लहलहाते मुखों से उगले, विष ज्वाला के कारण, तुम्हारा आन्तरिक रूप अति भयप्रद है, तो आप धन्य हैं।"[१]

संस्कृत साहित्य की मान्य परम्परा में सूर्योदय एवम् सूर्यास्त का वर्णन अत्यधिक किया है। विज्जा ने भी उस मार्ग को अपनाकर अपनी लेखनी द्वारा सूर्य की शोभा का निरीक्षण किया है। उसकी उपमा अड़हुल के फूल के पत्र से दी गयी है।[२]

विविध सुभाषित-संग्रहों में विज्जका या विज्जाका के नाम से वर्षा ऋतु के चित्रण से सम्बन्धित तीन पद्य उपलब्ध होते हैं। प्रथम पद्य में विद्युत् के दुर्व्यवहार को देखकर उसको उपालम्भ देती हुयी वह कहती है कि भले ही मेघ, वायु आदि अपने कार्यों द्वारा मुझे पीड़ित करें, किन्तु वियोगिनी स्त्री के समीप तेरा चमकना उचित नहीं है क्योंकि समान नारीत्व के कारण तुझे तो उसके प्रति समवेदना होनी चाहिए।[३]

द्वितीय पद्य में वर्षाकालीन इन्द्रधनुष की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।" अस्थिर, नाना रङ्गों से युक्त, गुणरहित, नित्य-कुटिल, और दुर्लभ (यह) वर्षाकाल का इन्द्रधनुष युवती के चित्र की भाँति

---

१. सदूक्तिकर्णामृत—१८८३, पृ० ५११

२. शाङ्गर्धरपद्धति ३७३६, सु०सु०र०भा० १६०।८

३. सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो मुञ्चन्तु नादं घनाः।
वातावान्तु कदम्बरेणु-शवला नृत्यन्त्वमी बर्हिणः।
मग्नां कान्तवियोगदुःख:जलधौ दीनां विलोक्याङ्गना-
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्यकरुणा स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ।।
—सूक्ति मुक्तावली, पृ० २२३

दिखाई पड़ता है।"[१]

तृतीय पद्य भी चित्ताकर्षक वर्षाऋतु के चित्रण से सम्बन्धित है। घने अन्धकार से दिशायें मलिन तथा तृणों से भूमि श्यामल है — ऐसे समय में वियोगिजनों के लिए विरह व्यथा को सहन करना दुष्कर हो जाता है।[२]

वर्षा की भाँति ही विद्या का वसन्त वर्णन भी दर्शनीय है। "टेसू की कली के भीतर स्थित, चन्द्रकला के साथ स्पर्धा करने वाला केसर ऐसा सुशोभित होता है, मानों लाल थैली में छिपा, लाख से मुद्रित कामदेव का धनुष हो।"[३]

एक अन्य पद्य समस्यापूर्ति से सम्बन्धित है यदि किसी के प्रति परोपकार करके व्यक्ति स्वयं को कृतार्थ करने में असमर्थ है, तो उसकी महानता व्यर्थ है। उदाहरणार्थ समुद्र के पाथोधि, जलधि, पयोधि, उदधि एवं वारिधि आदि नामों का कुछ भी महत्त्व नहीं है, क्योंकि क्षारपूर्ण जल के कारण वह किसी भी जीवधारी की पिपासा शान्त नहीं कर पाता।[४]

---

१. सूक्तिमुक्तावली, पृ० २२१

२. मलिन-ह्ल-भुग्-धूप-श्यामैर्दिशो मलिना घनै-
रविरल-तृणैः श्यामा भूमिर्नवोद्गतकन्दलैः।
सुरत-सुभगो नूनं कालः स एव समागतो-
मरण-शरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः॥
—शार्ङ्गधरपद्धति ३८६७

३. शार्ङ्गधरपद्धति ३७६४, सूक्तिमुक्तावली, पृ० २०८, सु० सु० रत्नभाण्डागारम्, १६७।११

४. थूत्कृत्य वमद्भिरध्वगजनैरप्राप्त-कण्ठं पयः,
शुष्यत्तालु-गलै-विरज्य लवणोदन्वानुपालभ्यते।
केन क्षारजले वृथैव भवतो नानामृतं निर्मितं-
पाथोधिर्जलधिः पयोधिरुदधिर्वारां निधिः वारिधिः॥
—सदुक्तिकर्णामृत २३२६, पृ० ६४५

इसके अतिरिक्त विज्जा ने अपनी लेखनी द्वारा नारी के विविध रूपों का दर्शन भी कराया है। इन्होंने तीन पद्यों में असती चरित का दिग्दर्शन कराया है। प्रथम पद्य में किसी विश्वासहीना नारी, तथा पुत्र वात्सल्य से रहित माता एकान्त में अपने प्रेमी से मिलने को जल लाने का बहाना करके जाने वाली शुष्क हृदया नारी का चरित्र अङ्कित किया गया है।[१]

द्वितीय पद्य में सती पुत्री के प्रति जो कि एक ही पति के आधीन होकर निवास करने के पक्ष में है, उसकी असती माता के व्यङ्ग्यात्मक वचनों को उद्धृत किया गया है।[२]

तृतीय पद्य में कोई असती नारी अपने प्रेमी से अपने मन की प्रसन्नता व्यक्त करके कहती है कि किस प्रकार उसने बीते हुए दिनों में वहाँ पर आनन्द लाभ किया था।[३]

इन विषयों के अतिरिक्त शृङ्गारिक वर्णन में भी विद्या पर्याप्त निपुण है। एक पद्य में किसी नायिका द्वारा अपनी सखी से सम्भोग का वर्णन

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति, ३७६६, सदुक्तिकर्णामृत ५४१, पृ० १४६, सु०स०र० भाण्डागारम् २६४।२४३

२. वयं बाल्ये बालांस्तरुणिमनि यून: परिणता-
वपीच्छामो वृद्धांस्तदिह कुलरक्षा समुचिता।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना,
न मे गोत्रे क्वचिदपि सती लाञ्छनमभूत् ।।
--सदुक्तिकर्णामृत ५३६, पृ० १४५

३. सिकतिल तला: सान्द्रच्छाया-तटान्त विलम्बिन: ,
शिशिरमरुतां, नीतावासा:क्वणाज्जल-रङ्कव: ।
अविनयवती, निर्विच्छेद-स्मर-व्यय-दायिन:,
कथय, मुरले, केनामी ते कृता निचुल-द्रुमा: ।।
— सदुक्तिकर्णामृत — ५३१, पृ० १४३

किया गया है।[१] अन्य पद्य में सुरत केलि के अवसर पर मानिनी नायिका का चित्र उपस्थित किया गया है।[२]

साथ ही श्रृङ्गार के द्वितीय पक्ष वियोग या विप्रलम्भ के भी दर्शन होते हैं। प्रियतमा से पृथक किसी प्रेमिका की विरह कथा प्रस्तुत्य है। दूती के प्रति स्व-अवस्था का निवेदन अत्यन्त मार्मिक शब्दों में करती है।[३]

अन्यत्र भी विरहिणी प्रलाप का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।[४] नारी सुलभ मनोवैज्ञानिक स्थिति के परिचय के कारण कवयित्री ने प्रोषित-पतिका नायिका की वेदना को भली भाँति अवगत कर लिया है। विरहिणी को चन्द्रकिरणें भी उष्णता प्रदान कर रही हैं, इसी कारण वह पति के आगमन के दिनों की संख्या जानने को उत्सुक है।[५]

काम व्यथा से पीड़ित नायिका का उपालम्भ दर्शनीय है — हे कामदेव! पहले तू देव चन्द्रशेखर के द्वारा, पुन: विशाल बुद्धि वाले बुद्ध के द्वारा, तत्पश्चात् मेरे पथिक कान्त द्वारा जीता गया। उन्हें छोड़कर, मुझ अनाथा अति दुर्बला, बाला, स्त्री को तू मार रहा है। तुझे धिक्कार, तेरे पौरुष को धिक्कार, तेरे उदय को धिक्कार, धनुष को धिक्कार, तेरे शरों को धिक्कार।[६]

---

१. सुभाषितावली -- ३१४२, शार्ङ्गधरपद्धति ३७४६, सु०स०र०भाण्डागारम्, १६२।६

२. उन्नमय्य सकचग्रहमास्यं, चुम्बति प्रियतमे हठवृत्त्या।
हुं ममेति वदनान्तरलीनं, जल्पितं जयति मानवतीनाम्॥
— सुभाषितावली २०६०, शार्ङ्गधरप०५०६, सु०स०५२२।२

३. सुभाषितावली ११४१, पृ० १६१

४. नार्या: सा रतिशून्यता नयनयोर्दिग्दृष्टिपाते स्थित:,
कामी प्राप्तरतार्थ एव न भवत्यालिङ्गनतुवाञ्छति।
आश्लेषादपिपापरं मृगयते धिक् तामयोग्या स्त्रियं, वह
श्रोणिगोचरतामागतो रति-फलं प्राप्नोति किंयह० न किम्॥
— सुभाषितावली ११७५, पृ० १६८

५. सदुक्ति-कर्णामृत — ७५४

इसी प्रकार पथिक-कामिनी की उक्ति भी दृष्टव्य है — एक वियोग पीड़िता बेचारी दीन स्त्री को मारने के लिए, वर्षा काल-मेघ, बिजली एवं श्यामला का आश्रयलेकर मिथ्या आडम्बर धारण करता है।[१]

एक पद्य विशिष्ट कवि प्रशंसा से सम्बद्ध है, जो कि कवयित्री की दर्पपूर्ण उक्ति है।[२]

इसके साथ ही, उन्होंने सामान्य कवि प्रशंसा भी की है। जिन कवियों के विचारों से पाठक गम्भीर एवम् शान्त प्रशंसा से ओत-प्रोत हो जाते हैं, उनके प्रति भी श्रद्धांजलि अर्पित की गयी है।[३]

सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य की स्त्री कवयित्रियों, स्फुट रचना करने वाली नारियों में से, विज्जिका को ही सर्वश्रेष्ठ माना जा सकता है। तथा सबसे अधिक स्फुट पद्य भी इन्हीं के उपलब्ध होते हैं। इन्होंने अपनी सर्वव्यापकी प्रतिभा द्वारा केवल एक विषय को नहीं लिया, अपितु विविध सांसारिक विषयों को लेकर रचना की। एक ही पद्य में सम्पूर्ण भाव को संचित कर देना इनकी विशेषता है। इनकी रचनायें उच्चकोटि की हैं, यही कारण है कि काव्य प्रकाश,[४] शब्द व्यापार विचार आदि श्रेष्ठ लक्षणग्रन्थों में उनके उदाहरण प्राप्त होते हैं। उन्हें अपनी कविता पर गर्व था, यही कारण है कि उन्होंने अपने आप को सरस्वती का अवतार माना है।[५] धनदेव ने भी उनकी काव्य-मयी प्रतिभा की ओर सङ्केत करके उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित

---

१. मेघैर्व्योमनवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो,
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूर्वैर्वृता: निम्नगा: ।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं,
प्रावृट्-काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ।। शाङ्र्गधर० ३६००

२. शाङ्र्गधरपद्धति- १८०

३. कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं, स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ।
वद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैः, जनस्य तूष्णीं भवतोऽयमञ्जलिः । सुभा० १५८

४. काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास

५. शाङ्र्गधर पद्धति १८०

की है।[१] विज्जिका के पद्यों में उत्तम कविता के प्रायः सभी गुण मिलते हैं। कवयित्री ने नारी हृदय के गूढ़ मनोभावों का अध्ययन भली भांति किया है। उनकी भाषा सुगम तथा आकर्षक है। यद्यपि उन्होंने तुल्ययोगिता, अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति आदि अनेक अलंकारों का आश्रय लिया है किन्तु साङ्गरूपक[२] एवम् स्वभावोक्ति[३] अलङ्कार की छटा दर्शनीय है। विज्जिका ने शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी जैसे विशाल छन्दों के साथ ही साथ आर्या, हरिणी, अनुष्टुप् तथा द्रुतविलम्बित आदि छन्दों का भी प्रयोग कुशलतापूर्वक किया है।

शीला भट्टारिका-

विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों सुभाषितावली, सूक्तिमुक्तावली तथा शाङ्र्गधर-पद्धति आदि में शीला के नाम से कुल मिलाकर छः पद हस्तगत होते हैं। ये सभी शृङ्गार सम्बन्धी रचनायें हैं।

प्रथम पद्य में किसी विरहिणी की नायकानुनय का चित्रण किया

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति, १९३, पृ० २६-२७

२. प्रिय सखि। विपद-दण्ड-प्रान्त-प्रपात-परम्परा,
   परिचय चले, चिन्ता चक्रे निधाय विधिः खलः।
   मृदमिव बलात् पिण्डीकृत्य प्रगल्भ कुलालवद्-
   भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र करिष्यति ।।
   — शाङ्र्गधरपद्धति- ११३१, पृ० १८४

३. विलास मसृणोल्लसन्मुसल-लोल-दोःकन्दली-
   परस्पर परिस्खलद्-वलय-निःस्वनोद्बन्धुराः।
   लसन्ति कलहुङ्कृति-प्रसभ-कम्पितोरःस्थल-
   त्रुटद्-गमक-सङ्कुलाः कलम-कण्डनी-गीतयः ।।
   — शाङ्र्गधरपद्धति ५८२, सूक्तिमुक्तावली, पृ० २३१

गया है । ' दीर्घ कालीन विरह के कारण कामदेव शरीर को कृश बनाता चला जा रहा है, न तो मान व्याधि से ग्रस्त उसका प्रेमी ही उसे सन्तुष्ट कर रहा है और न यमराज ही उसे अपने समीप बुला रहा है, ऐसी स्थिति में किसलय से भी अधिक मृदु, नारी, जीवन धारण करने में किस प्रकार समर्थ हो सकती है ।'[१]

द्वितीय पद्य में, इसके विपरीत, अपनी प्रियतमा की विरह व्यथा से व्याकुल किसी प्रेमी नायक का चित्राङ्कन किया गया है । अपनी प्रेमिका के विरह में उसके समीप से निद्रा भी चली गयी है अर्थात् रात्रि एवं दिन चिन्ता करने के कारण निद्रा का समागम होने ही नहीं पाता ।[२] निद्रा तथा चिन्ता दोनों एक दूसरे के विरुद्ध हैं, जहां प्रथम का निवास होता है, वहां द्वितीय की उपस्थिति दुर्लभ हो जाती है ।

तीसरे पद्य में नायिका द्वारा दूती को किया गया कितना सुन्दर उपदेश है । दूती द्वारा नायक के प्रति सान्त्वनापूर्ण सन्देश भेजते हुए नायिका का कथन है ' दूती तुम भी तरुणी हो, वह युवा नायक भी चंचल है, साथ ही दिशायें भी अन्धकार से पूरित हैं । रहस्यपूर्ण सन्देश है तथा उसका सङ्केतस्थल भी विपिन मध्य है । पुन: पुन: यह वासन्तिक समीर मन को उन्मत्त कर रहा है, ऐसी स्थिति में तुम्हारा कल्याण देवतागण करें[३]।'

चतुर्थ पद्य द्वारा परिचय मिलता है कि नायिका का संदेह व्यर्थ में ही नहीं था । नायिका द्वारा बार बार सचेत किये जाने पर भी युवा चंचल नायक एवं निपुण संदेश-वाहिका, दोनों ही स्वयं को सीमित

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति ३५७२, सुभाषितावली १६३३

२. प्रिया विरहितस्याद्य हृदि चिन्ता समागता ।
इति मत्वा गता निद्रा के कृतघ्नमुपासते ।।
—सुभाषितावली ११६७, शाङ्र्गधरपद्धति, ३४४७
सु०स०र० भाण्डागारम्, १००।१

३. सूक्तिमुक्तावली , पृ० १४५, सुभाषितावली, ११८, शाङ्र्गधरपद्धति ३४३६

न रख सके ।[१] प्रस्तुत पद्य में उपहास पूर्ण व्यङ्ग्य का समावेश किया गया है ।

अन्य पद्य में किसी असती नारी के अन्यायपूर्ण व्यवहार का चित्र प्रस्तुत किया गया है । वह कभी भी अधिक दिनों तक एक प्रेमी से सन्तुष्ट नहीं हो पाती । उसकी कौमार्यावस्था का हरण करने वाला वर, चैत्र की रात्रि तथा प्राकृतिक दृश्य भी पूर्ववत् ही विद्यमान है, फिर भी उस मन उत्कण्ठित हो रहा है ।[२]

अन्तिम उपलब्ध पद्य में पूर्वार्द्ध में शीला भट्टारिका तथा उत्तरार्द्ध में भोजराज की कामक्रीड़ा सम्बन्धिनी उक्ति है ।[३]

उपर्युक्त सभी पद्यों को देखने से ज्ञात होता है कि शीला भट्टारिका की सभी रचनायें शृङ्गार परक हैं । यही कारण है कि प्राय: सभी प्रसिद्ध सङ्ग्रह ग्रन्थों के साथ ही काव्य शास्त्रीय कृतियों में भी इनका उल्लेख किया गया है । प्राय: सभी पद्यों में वाच्य एवं लक्ष्यार्थ को छोड़कर व्यङ्ग्यार्थ को प्रधानता दी गयी है । विशेष रूप से नारी की अन्तर्व्यथा को अभिव्यंजित करने में शीला के पद्य समर्थ हैं । उन्होंने शृङ्गार के दोनों पक्षों — सम्भोग एवं वियोग, को समान रूप से चित्रित किया है । उन्होंने ईर्ष्या, सन्देह आदि भावों का स्वाभाविक चित्रण किया । यही कारण है कि

---

१. श्वासा: किं त्वरितागतै: पुलकिता: कस्मात्प्रसाद: कृत: ,
 स्रस्ता वेण्यपि पादयोर्निपतनान्नीवी गमादागमात् ।
 स्वेदार्द्रं मुखमातपेन गलितं पामा किमित्युक्तिभि,
 दूति म्लानसरोरुहद्युतिधरस्योष्ठस्य किं वक्ष्यसि ।।
 —सूक्तिमुक्तावली पृ० १६६, सुभाषितावली, १
 सभ्यालङ्करणम् २७६ पृ० २५, सु०सु०र०भा० १३

२. सूक्तिमुक्तावली पृ० ३०१, शार्ङ्गधरपद्धति ३७६८, सु०सु०र०भा० २३४।४२

३. इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां, यदिह जरास्वपि मान्मथा: विकारा: ।
 इदमपि न कृतं नितम्बिनीनां , स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा ।।
 — शार्ङ्गधरपद्धति, ३५६४, पृ० ६०

धनदेव ने अन्य कवयित्रियों की अपेक्षा शीला को प्रथम स्थान दिया है।[१]

प्रसिद्ध काव्यवेत्ता एवं नाटककार राजशेखर के मतानुसार शीला ने पाञ्चाली रीति का आश्रय लिया है, जिसके कारण वह महान् गद्यकार बाण भट्ट की कोटि में आ जाती है।[२] शब्द तथा अर्थ की समान रचना को पाञ्चाली रीति कहते हैं --जैसा विशद शब्द, वैसा मनोहर अर्थ। ऐसी रीति हमें शीला की कविता में स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। यह दर्शनीय है कि किस प्रकार एक स्त्री की कविता, एक प्रसिद्ध कवि की कविता के तुल्य मानी गयी है।

शीला की रचना में माधुर्य सर्वत्र विद्यमान है। शब्दों का सौष्ठव और अर्थ गाम्भीर्य सहृदय के मन को मोहित कर लेता है --इसी कारण उनका काव्य उच्चकोटिका माना गया है। दूती को दिया गया उपदेश कितना सारगर्भित एवं सुन्दर है।[३]

विकटनितम्बा--

विटनितम्बा द्वारा रचित पद्य सुभाषितावली, शाङ्र्गधरपद्धति, सूक्तिमुक्तावली, सम्यालङ्कारणम् आदि ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। उन्होंने मानव सम्बन्धी तथा प्राकृतिक विषयों की ओर भी अपना ध्यान आकृष्ट किया है।

---

१. शीलाविज्जामारुला-मोरिकाद्याः, काव्यं कर्तुं सन्तु विज्ञाः स्त्रियोऽपि।
   विद्यां वेत्तुं वादिनो निर्विजेतुं, दातुं वक्तुं यः प्रवीणः स वन्द्यः ।।
   --शाङ्र्गधरपद्धति १६३

२. शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
   शीलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ।।
   --सूक्ति मुक्तावली, पृ० ४७

३. दूतिस्त्वं तरुणि युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः,
   संदेशः सरहस्य एव विपिने सङ्केतकावासकः।
   भूयो भूयः इमे वसन्त-मरुतश्चेतो हरन्त्यन्यतो,
   गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणो रक्षन्तु ते देवताः ।।सुभाषितावली १९८८

प्रथम पद्य किसी राजा की चाटुकारिता हेतु निर्मित किया गया है। इसमें शासक के शत्रु की सेना की तुलना लज्जावती वधू से की गयी है। शत्रुसेना, राजा के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित करने में सर्वथा अयोग्य है।[१]

एक अन्य पद्य भी आश्रयदाता की प्रशंसा से सम्बद्ध है। राजा की सर्वव्यापिकी कीर्ति का विस्तार सभी दिशाओं में हो रहा है।[२]

विकटनितम्बा ने अन्योक्तिपरम्परा का भी आश्रय लिया है। प्रस्तुत मधुकरान्योक्ति के अन्तर्गत लोभी भ्रमर को उपदेश दिया गया है कि क्यों वह व्यर्थ में रजरहित, कोमल कलिका को पीड़ित कर रहा है[३]। परिमल-पूर्ण, केतकी के पुष्प में मधु का अभाव बना रहता है। अतः तुम्हारी स्वार्थ सिद्धि इससे हो जाय, ऐसा सम्भव नहीं प्रतीत होता।[४]

प्राकृतिक विषयों में ऋतु वर्णन के अन्तर्गत, कवयित्री ने वसन्त-ऋतु को प्रधानता दी है। वसन्त सभी जनों को सुख एवम् आल्हाद प्रदान करता है। जो आम का वृक्ष अन्य ऋतुओं में मनोहर एवं उत्तेजक होता है, वही वसन्त-काल में विरहिणी स्त्री के लिए मृत्यु का साधन हो जाता है, क्योंकि इसमें काम विषयक ज्वर तीव्र हो उठता है।[५]

---

१. अभिहिताप्यभियोगपराङ्मुखी, प्रकटमङ्गविलासमकुर्वती।
उपरि नेे पुरुषायितुमक्षमा, नववधूरिव शत्रुपताकिनी।।
--सुभाषितावली २४८६, पृ० ४२४

२. सुभाषितावली २४८८, पृ० ४२४

३. शाङ्गर्धरपद्धति ८२३, पृ० १३८, सुभाषितावली ७३५, पृ० ११७

४. अपसर मधुकर दूरं परिमल-बहुलेऽपि केतकी-कुसुमे।
इह न हि मधुलवलेशो भवति परं धूलि-धूसरं वदनम्।।
— पद्यवेणी ६८५

५. सुभाषितावली १६८२ पृ० २८५, सूक्तिमुक्तावली २०६

किन्तु विकटनितम्बा के अधिकांश पद्य शृंगारिक है। इसमें संयोग एवं वियोग दोनों ही पक्षों का समान वर्णन किया गया है। एक पद्य में दीर्घ-कालीन प्रवास के पश्चात् वापस आये हुए प्रेमी एवम् प्रेमिका के मिलन के अवसर पर दोनों की प्रसन्नता का चित्रण किया गया है।[१]

इसी प्रकार एक अन्य पद्य में किसी नायिका के अङ्गों का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है।[२] इसी प्रकार एक स्थल पर मध्य भाग के सौन्दर्य चित्रण से सम्बन्धित पद्य मिलता है।[३]

शृंगारिक चित्रण में ही किसी अभिसारिका के शृंगार का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। "अपने प्रियतम से मिलने के लिए उत्सुक बाला, सूची भेद्य अन्धकार में भी, एकाकिनी गमन करने में लेशमात्र भी भयभीत नहीं होती, क्योंकि एक तो उसके पास प्राण प्रिय का सम्बल है, और दूसरे तीक्ष्ण बाणों से युक्त, मदन, उसका सहायक है।"[४]

एक ओर, जहां नववधू के सङ्गम के अवसर पर सखी की उक्ति दर्शनीय है, वह अपनी सखी के पति को लज्जा त्याग देने तथा आदर्श पति के स्तर से च्युत न होने के लिए प्रोत्साहित करती है;[५] वहीं दूसरी ओर, पति से

---

१. सुभाषितरत्नकोष — ५७२

२. लावण्यसिन्धुरपरैव कैयमत्र यत्रोत्पलानि शशिना सह संप्लवन्ते।
उन्मज्जति द्विरदकुम्भतटी च तत्र यत्रापरे कदल-काण्ड-मृणाल-दण्डा: ।।
—सदुक्तिकर्णामृत ४६४, पृ० १३४, काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति ४।३।४पृ०२२६
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली १६५४

३. सुभाषितावली १५४६, पृ० २६१

४. शाङ्र्गधर पद्धति ३६१०

५. बालातन्वी मृदुतनुरियं त्यज्यतामत्र शङ्का, दृष्टा काचित् भ्रमर-भरतो मञ्जरीभज्यमाना।
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया, मन्दाक्रान्ता विसृजति नेक्षु-यष्टि:समग्रम्।।
—शाङ्र्गधरपद्धति-३६७१,सुभाषितावली १४०१,पृ०२३५,सु०सु०र०भा०
१७४।४, सम्यालङ्करणम् ४७२, पृ० ४१

रुष्ट किसी मानिनी नायिका का चित्र भी उल्लेख्य है। पहले तो पति के द्वारा अत्यधिक प्रयास करने पर भी वह प्रसन्न नहीं हुयी, बाद में पति के चले जाने पर अरण्य रोदन करने से क्या लाभ हुआ ?[१]

विकटनितम्बा की रचना में मधुरता तो कूट कूट कर भरा हुआ है। शब्दों की कोमलता तथा भावों की शुद्धि मन को हठात् वश कर लेती है । पाठक का चित्त पढ़ते समय प्रसन्न हो सकता है। प्राय: सभी कवितायें शृंगार रस से पूर्ण हैं। विकटनितम्बा की शब्द रचना एवं शैली मनोहारिणी है। यही कारण है कि राजशेखर जैसे आलोचक ने उनकी प्रशंसा में लिखा है -- "विकटनितम्बा की वाणी से आकृष्ट हुए कौन व्यक्ति, अपनी पत्नियों के मुग्ध एवं मधुर वचनों की ~~निन्दा~~ निन्दा नहीं कर देते।"[२]

विकटनितम्बा के अन्योक्ति विषयक पद्यों में अप्रस्तुत प्रशंसा[३] एवं अलंकार की छटा देखने योग्य है। इनके कोई कोई पद्य शिक्षा प्रद भी प्रतीत होते हैं। एक पद्य में कामशास्त्र की सुन्दर शिक्षा निविष्ट की गयी है।[४]

सीता-

सीता या शीता के नाम से एक पद्य[५] वामन रचित काव्यालङ्कार -

---

१. सुभाषितावली १०७०, पृ० १९७, सुभाषितरत्न कोष ६५६

२. के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रञ्जिता: ।
 निन्दन्ति निजकान्तानां मौग्ध्यमधुरं वच: ।।
 — सूक्तिमुक्तावली, पृ० ४७

३. सदुक्ति-कर्णामृत ४६४, पृ० १३४

४. शार्ङ्गधरपद्धति- ३६७१

५. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति ३।२।८, पृ० ३५१, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली ,१९५४

सूत्रवृत्ति तथा राजशेखर की रचना काव्यमीमांसा में उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत पद्य एक प्रेम सम्बन्धिनी कविता है। इसमें किसी अन्य के प्रति अनुरक्त, अपने भयभीत प्रेमी को उत्साहित करती हुयी, नायिका, चन्द्र के बहाने साधारण शब्दों में कुछ कहने का प्रयास करती है।[१]

अप्रस्तुतप्रशंसा के रूप में सीता द्वारा रचित पद्य महत्वपूर्ण है।

त्रिभुवन-सरस्वती —

त्रिभुवन-सरस्वती द्वारा रचित दो पद्य श्रीधर के सदूक्ति कर्णामृत में उल्लिखित किये गये हैं।

प्रथम पद्य में किसी राजा के सौन्दर्य का निरीक्षण किया गया है। वह राजा चन्द्र से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि वह चन्द्र की अपेक्षा समस्त नारियों के प्रति आकृष्ट होता है।[२]

द्वितीय पद्य में समुद्रमन्थन के समय, लक्ष्मी के प्रति आकृष्ट हुए, भगवान हरि (विष्णु) की प्रसन्नता का दिग्दर्शन कराया गया है।[३]

---

१. मा भैः शशाङ्क मम सीधुनि नास्ति राहुः,
 खे रोहिणी वसति, कातर किं बिभेषि।
 प्रायो विदग्धवनिता नवसङ्गमेषु,
 पुंसां मनः प्रचलतीति किमत्र चित्रम्॥
 —काव्यमीमांसा अध्याय १६, पृ० २५३, काव्यानु०, पृ० १६

२. श्रीमद्-रूपविटङ्क देव सकल-क्ष्मापाल चूडामणे-
 युक्तं संहरणं यदत्र भवतश्चन्द्रेण रात्रावपि।
 मा भूत्त्वद्वदनावलोकन-वशाद्व्रीडाविलक्षः शशी,
 मा भूच्चेयमरुन्धती दुःशीलताभाजनम्॥
 —सदूक्तिकर्णामृत १३६६

३. वही ३२३

उपर्युक्त पद्यों से ज्ञात होता है कि अलङ्कारों की ओर कवयित्री की विशेष दृष्टि थी । प्रथम पद्य में व्यतिरेक अलङ्कार तथा द्वितीय में रसवत् या देव विषयक रति की छटा अनुपम है । काव्य परम्पराओं एवम् पौराणिक कथाओं का भी त्रिभुवन सरस्वती को पर्याप्त ज्ञान था ।

चिन्नम्मा-

चिन्नम्मा के एक पद्य को भोज ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में उद्धृत किया है ।

इनकी एक मात्र रचना भगवान्-शिव से सम्बन्धित है । इसमें नृसिंह, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारों का भी स्पष्टीकरण किया गया है, जिसे अद्वितीय शक्ति सम्पन्न महाभैरव , शिव के रूप में स्थित किया गया है । प्रलयङ्कर शिव की महिमा अपार है ।[१] उनके गुणों का गुणगान करना ही कवयित्री का अभीष्ट है ।

चिन्नम्मा की शैली दीर्घ समास युक्त है, यही कारण है कि उन्होंने शार्दूल विक्रीडित जैसे छन्द का प्रयोग किया है । उनके एक मात्र पद्य के द्वारा ही उनका स्मृति एवं पुराण विषयक ज्ञान परिलक्षित होता है । उनका मन्थरगति से भावों का समावेश करने में समर्थ है । एक ही पद्य में उत्कृष्ट ज्ञान को सन्निहित कर देना उनकी विशेषता है ।

---

१. कल्पान्ते शमित-त्रिविक्रम-महाकङ्काल-दण्डी स्फुरच्-
छेष-स्यूत-नृसिंह-पाणि-नखर-प्रोतादि-कोलामिष: ।
विश्वैकार्णवता-नितान्त-मुदितौ तौ मत्स्य-कूर्मावुभौ,
कर्षन्-धीवरतां गतोऽस्यतु महा-मोहं महा-भैरव: ।।
—सरस्वती कण्ठाभरण ३।१०४ , पृ० ३६१ निर्णय सागर प्रेस प्रकाशन, १९३४

सरस्वती—

सरस्वती के दो पद्यों में प्रथम सरस्वती कण्ठाभरण तथा द्वितीय शाङ्र्गधरपद्धति एवं सदुक्तिकर्णामृत आदि कृतियों में प्राप्त होता है।

प्रथम राजविषयक स्तुति है, जिसमें शासक को पाताल, आशाओं का भण्डार (संसार) एवम् अमरलोक कहा गया है, अर्थात् राजा को ही तीनों लोकों के रूप में माना गया है।[१]

द्वितीय रचना मुक्तक छन्द का ज्वलन्त उदाहरण है। इसमें आमोद प्रेमी भ्रमर को सम्बोधित किया गया है कि वह केतकी के पुष्प के अनेक दुर्गुणों, कांटों, मधु की हीनता, घने अन्धकार आदि को देखकर भी उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है।[२] इससे कवयित्री का तात्पर्य है कि श्रेष्ठ तथा सज्जन व्यक्ति किसी की भी न्यूनता को न देखकर सदैव उसके गुण और श्रेष्ठता को ही देखते हैं। प्रस्तुत पद्य में नीति परक उपदेश भी निहित है।

जघन-चपला—

जघन्न-चपला के नाम से एक पद्यसुभाषितरत्न-कोष, पद्यवेणी तथा शार्ङ्गोलकर रचित पद्य-रचना में मिलता है।

प्रस्तुत पद्य में पति के विदेश चले जाने पर जघन-चपला श्रेणी की विश्वासहीना, स्वच्छन्द प्रेम की उपासिका, किसी असती नारी की प्रसन्नता

---

१. सरस्वती कण्ठाभरण, पृ० २२५

२. पत्राणिकण्टकसहस्रदुरासदानि,
वार्ताऽपि नास्ति मधुनो रजसाऽन्धकार: ।
आमोदमात्ररसिकेन मधुव्रतेन,
नालोकितानि तव केतकि दूषणानि ।।
— सदुक्तिकर्णामृत १७६८

का वर्णन किया गया है[१]।

जघन-चपला रचित पद्य में किसी प्रकार की भाव-व्यंजना नहीं की गयी है, ~~किन~~ किन्तु फिर भी इस पद्य का उल्लेख अनेक सुभाषित ग्रन्थों में प्राप्त होता है। जघन-चपला ने अपने पद्य की रचना जघनचपला छन्द में ही की है, यह उनकी विशेषता मानी जा सकती है।

भवदेवी--

भवदेवी, भावकदेवी या भावाकदेवी के नाम से तीन पद्य कवीन्द्र-वचनसमुच्चय, सदुक्तिकर्णामृत, सुभाषितरत्नकोश, आदि रचनाओं में हस्तगत होते हैं।

प्रथम पद्य में किसी तरुणी की भावाभिव्यक्ति दयनीय है।[२]

द्वितीय पद्य में अपने पति के प्रति रुष्ट, किसी मानिनी नायिका का कथन है -- पहले तो हम तुम दोनों एक दूसरे के प्रति ऐसे आसक्त ~~हुए~~ हुए कि आत्मा एवं शरीर का अन्तर भी समाप्त सा हो गया, उसके पश्चात् तुम प्रिय रहे और मैं भी हताशा प्रियतमा के रूप में रही, आज तुम नाथ हो, और

---

१. दुर्दिननिशीथपवने निःसंचारासु नगरवीथीषु।
पत्यौ विदेशयाते परं सुखं जघन-चपलायाः॥

--सुभाषितरत्नकोश: ८२५, पृ० १५३, पद्यवेणी, ३२।
प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता, १९४४

२. सजन्मानौ तुल्यावभिजनभुवा जन्म च सह
प्रवृद्धौ नाम्ना च स्तन इति समावुदयिनौ।
मिथः सीमामात्रे यदिदमनयोर्मण्डलवतोर्-
अपि स्पर्धा युद्धं तदिह हि नमस्यः कठिनिमा॥

--सुभाषितरत्नकोष: ४२६
--कवीन्द्रवचन समुच्चय १७७

मैं एक साधारण पत्नी हूं, मुझे अपने कठोर प्राणों का यही परिणाम प्राप्त हुआ।'[१] अपनी स्थिति का परिचय वह कितने मार्मिक शब्दों में देती है, जिसके द्वारा उसकी आन्तरिक व्यथा का परिचय स्पष्टत: मिल जाता है।

तृतीय पद्य में नायक के प्रति मानिनी नायिका का वचन है। पत्नी के कठोर किन्तु दयनीय शब्दों को सुनकर अपराधी पति के व्यवहार में अकस्मात् परिवर्तन आ गया। वह पत्नी के चरणों पर गिरकर क्षमा याचना करने को तत्पर हो गया किन्तु पत्नी उसके प्रति कटाक्ष करती हुयी कहती है कि, 'इस पाद पतन के कार्य को छोड़ दो। स्वामी जन अपने आप में स्वतन्त्र रहते हैं। इतने समय तक जो कुछ भी तुमने आनन्दलाभ किया है, उसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है। वस्तुत: अपराधिनी तो मैं स्वयं हूं, जिसने तुम्हारे वियोग में भी जीवन धारण किया,' स्त्रियां पति के प्राण होती हैं अत: मुझे ही तुमसे प्रार्थना करनी चाहिए।'[१]

तीनों ही पद्य नारी विषयक हैं। प्रत्येक पद्य में नारी की विविध स्थितियों का चित्र प्रस्तुत किया है। कवयित्री ने मनोवैज्ञानिक रीति से नारी की आन्तरिक दशा का परचय दिया है। एक क्षण के लिए पति से रुष्ट हो जाने पर भी, वह कुछ ही देर में उसे क्षमा भी कर देती है। भावकदेवी की पदावली सुव्यक्त, अत्यन्त रुचिकर एवं सुगम है। उन्होंने छोटे छोटे पदों में ही अपने भावों को व्यक्त किया है, कहीं भी दीर्घ समासों का आश्रय नहीं लिया है। उनके पद्य में श्लिष्ट समासोक्ति तथा अतिशयोक्ति और तृतीय पद्य में अर्थान्तरन्यास तथा आक्षेप अलंकार का प्रयोग किया गया है।

---

१. सदुक्तिकर्णामृत ७०६, सुभाषित रत्नकोष ६४३

२. किं पादान्ते पतसि विरम स्वामिनो हि स्वतन्त्रा:,
कञ्चित् कालं क्वचिदसि रतस्तेन कस्तेऽपराध: ।
आगस्कारिण्यहमिह मया जीवितं त्वद्वियोगे ,
भर्तृ-प्राणा: स्त्रिय: इति ननु त्वं मयैवानुनेय: ।।
—सदुक्तिकर्णामृत ७०६

मोरिका—

मोरिका द्वारा लिखित चारपद्य, सूक्तिमुक्तावली, शाङ्र्गधर-पद्धति, सुभाषितावली आदि में उपलब्ध होते हैं। इनकी सभी रचनायें प्रेम विषयक हैं।

प्रथम पद्य में प्रियतम के वियोग से पीड़िता किसी विरहिणी का चित्र है। अपने प्रियतम के आगमन के दिनों की गणना करने हेतु उसने पृथ्वी-तल पर कुछ रेखायें खींची, किन्तु अश्रुपूरित नेत्रों के कारण वह उन्हें गिनने में समर्थ न हो सकी।[१]

द्वितीय पद्य में प्रेमिका द्वारा प्रेमी के समीप भेजी गयी दूती की उक्ति है। चतुरदूती नायिका के प्रति नायक को आकृष्ट करके कहती है कि—"प्रियतम तुम इसके योग्य हो, और प्रियतमा आपके योग्य है। न तो रात्रि विहीन चन्द्र सुशोभित होता है, और न रात्रि ही बिना शशि के सुन्दर लगती है।"[२]

तृतीय पद्य में नायक के प्रति नायिका का कथन है। प्रेमी के प्रेम से उल्लसित होकर नायिका उससे पुन: गृह से बहिर्गमन न करने का आग्रह करती है। यद्यपि हीन स्थिति के कारण वह नायक का उचित सत्कार करने योग्य नहीं है, किन्तु फिर भी वह स्वयं को समर्पित करने के लिए प्रतिक्षण तत्पर है।[३]

---

१. लिखति न गणयति रेखां निर्भर-वाष्पाम्बु - धौत-गण्डतटा।
अवधि-दिवसावसानं मा भूदितिशङ्कता बाला॥
—शाङ्र्गधरपद्धति ३४०३, पद्यरचना, पृ० ४८,
सु०सु०र०भा०, १०१।७

२. सुभाषितावली--वल्लभदेव, १३६६, पृ० २३४

३. मा गच्छ प्रमदाप्रिय-प्रियशतैरभ्यर्थितस्त्वं मया,
बाला प्राङ्गणमागतेन भवता प्राप्नोत्यवस्थांपराम्।
किं चास्या:कुचभारनि:सहतैरङ्गैरभङ्गाकुले-! स्त्रुट्यत्कञ्चुक-जालकैरनुदिनैनिस्सूत्रमस्मद्गृहम्।
सूक्तिमुक्तावली, पृ० १५६, सु०स०र०भा०१६६।४

चतुर्थ पद्य में प्रिय एवं प्रिया के पुनर्मिलन का दृश्य अङ्कित किया गया है। इस समय सर्वोच्च शान्ति एवं सुख का लाभ करने के उपरान्त, उन दोनों को पूर्व वियोग पूर्णतः विस्मृत सा हो गया है, एवं सांसारिक धन, ऐश्वर्य आदि का मूल्य कुछ भी भासित नहीं होता।[1]

मोरिका संस्कृत साहित्य की एक विख्यात कवयित्री हैं। उनके पद्य सुभाषित ग्रन्थों के अतिरिक्त काव्य शास्त्रीय कृतियों में अधिक पाये जाते हैं। यद्यपि इनकी सभी रचनायें शृङ्गारिक हैं, किन्तु फिर भी अश्लीलता का चित्रण कहीं भी नहीं प्राप्त होता है। मोरिका ने प्रेमी हृदय का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उसके पद्यों की भाषा सरल एवं सरस है। साधारण पदावली में मनोव्यथा एवं भावाभिव्यक्ति सरस तथा मनोहर ढङ्ग से उपस्थित की गयी है। यही कारण है कि अन्य कवयित्रियों के साथ धनदेव ने[2] शाङ्गर्धर-पद्धति में मोरिका की प्रशंसा की है।

मारुला—

मारुला के नाम से जल्हण की सूक्ति-मुक्तावली तथा शाङ्गर्धर पद्धति में दो पद्य मिलते हैं।

इनके दोनों पद्य प्रेम सम्बन्धी हैं। प्रथम पद्य में विरह तथा द्वितीय में पुनर्मिलन का चित्र प्रङ्कित किया गया है।

प्रथम पद्य में किसी वियोगिनी के प्रति उसकी सखी की उक्ति दृष्टव्य है। " अपने गुरुजनों के समीप विरहजनित दुःख को छिपाती हुयी, मुग्धा बाला, नेत्रों से बहने वाले अश्रु-प्रवाह को रोक लेती है, किन्तु रात्रि बेला में, एकान्त में रात्रिपर्यन्त रुदन करते करते, उसकी शय्या का एक प्रान्त आर्द्र हो जाता है, उसे जब वह धूप में सूखने को डालती है, तो उसकी वास्त-

---

१. सुभाषितावली १०५०, पृ० १७५

२. शाङ्गर्धरपद्धति, १६३, पृ० २६

विकता का ज्ञान सब को हो जाता है ।'[१]

अन्यत्र, दीर्घ प्रवास के पश्चात् आये प्रेमी एवं प्रेमिका के मिलन का दृश्य चित्रित किया है । प्रिय की वेदना से व्याकुल, एवं कृश प्रियतमा ने प्रिय के आगमन पर अपने वस्त्रों एवं आभूषणों की सज्जा की ओर दृष्टिपात तक नहीं किया । प्रियतम के द्वारा उसकी कृशता एवं म्लानता का कारण पूछने पर, वह बहाना बनाने लगी, तथा कामपीड़ा से व्यथित, वह अधिक कुछ भी उच्चारण न कर सकी, अपितु प्रिय के स्पर्श सुख की आनन्दानुभूति में निमग्न हो गयी ।[२]

मारुला के पद्यों के उद्धरण संस्कृत की शास्त्रीय रचनाओं में बहुत मिलते हैं । मानव हृदय की भावनाओं का अनुभव करने में मारुला दक्ष हैं । मनुष्य के जीवन में प्रेम रस का सचार करता है, यही कारण है कि शृङ्गार रस का भी विशेष महत्त्व है । उनकी दोनों शृङ्गारिक कविताओं के द्वारा उनकी गम्भीर सहानुभूति तथा मर्मव्यथा को अवगत करने की शक्ति स्पष्ट परिलक्षित होती है । कवयित्री ने दार्शनिक ज्ञान के अनुसार सुख एवं दुःख दोनों का समान चित्रण किया है । अलङ्कार विहीन होने पर, उनकी कविता मनोहारिणी है । मन्दाक्रान्ता छन्द जो विशेषरूप से उद्गारों के व्यक्तीकरण में सहायक होता है, का प्रयोग किया गया है । नायिका की मुग्धता का सच्चा चित्र दर्शनीय है ।[३] धनदेव ने मारुला के काव्य तत्त्व सम्बन्धी गुणों की प्रशंसा की है ।

---

१. सूक्तिमुक्तावली, पृ० १४०

२. सुभाषितावली, ३२६, पृ० २२१, सु०सु०र०भा०१५४।२

३. कृशाकेनासि त्वं प्रकृतिरियमङ्गस्य ननु मे,
   म्लाधूम्रा कस्माद्, गुरुजन गृहे पाचक-तया ।
   स्मरत्यस्मान् कच्चिन्नहि नहि नहीत्येवमगमत् ,
   स्मरोत्कम्पं बाला मम हृदि निपत्य प्ररुदिता ।।
   —सुभाषितावली ३२६, पृ० २२१

राजकन्या-

राजकन्या लिखित दो पद्य शाङ्र्गधर-पद्धति तथा सुभाषितावली में उद्धृत किये गये हैं। दोनों ही पद्यों में राजकन्या तथा बिल्हण का प्रश्नोत्तर है।

प्रथम पद्य के पूर्वार्द्ध में राजकन्या की बिल्हण के प्रति उक्ति है कि -' इस महल में सिंह (अर्थात् उसका पिता) उसका रक्त पान करना चाहेगा, जो हाथी (प्रेमी) उसके स्पर्श की अभिलाषा करेगा।' उसी के समान बिल्हण भी प्रत्युत्तर देता है कि -' भले ही ऐसा हो जाय किन्तु हाथी इस नवोढ़ा (राजकन्या) पशु के हेतु अपने प्राणों की भी बलि दे देगा।'[1]

द्वितीय पद्य के पूर्वार्द्ध में बिल्हण तथा उत्तरार्द्ध में राजकन्या की उक्ति है।' यदि नलिनीने चन्द्रबिम्ब का दर्शन नहीं किया, तो उसका जन्म ही निरर्थक व्यतीत हो गया।' उत्तरार्द्ध में राजकन्या का कथन है कि 'चन्द्र का जन्म ही व्यर्थ चला गया, उसने निद्रा होकर, सम्पूर्ण रात्रियों को व्यतीत करने वाली नलिनी का दर्शन नहीं किया।'[2] प्रस्तुत पद्य भोजदेव के सरस्वती-कण्ठाभरण, रसगङ्गाधर, तथा साहित्यदर्पण में भी उल्लिखित किया गया है।

इस प्रकार की प्रश्नोत्तर सम्बन्धी रचनायें संस्कृत साहित्य में अल्प मात्रा में प्राप्त होती है, विशेष रूप में स्त्रियों द्वारा ऐसी रचना मिलना दुर्लभ है। इस दृष्टि से ये दोनों ही पद्य महत्त्वपूर्ण हैं। द्वितीय पद्य के

---

१. शाङ्र्गधरपद्धति, ५६७, पृ० ६१

२. सुभाषितावली -१६६४, पृ० ३३५

द्वारा कवयित्री प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय मिलता है।[१] राजकन्या तीक्ष्ण बुद्धि सम्पन्न कन्या थी, ऐसा केवल दोपद्यों से ही ज्ञात हो जाता है। प्रथम पद्य में श्लेष अलङ्कार की शोभा अनुपम है।

लक्ष्मी —

लक्ष्मी या लक्ष्मी देवी के नाम से शाङ्र्गधरपद्धति तथा विद्याकर मिश्र द्वारा रचित 'विद्याकर-सहस्रकम्' में सात पद्य प्राप्त होते हैं। ये सभी पद्य भ्रमरान्योक्तियों से सम्बन्धित हैं।

'भ्रमर कैरविनी, नलिनी, एवं लवङ्गलतिका के प्रतिआसक्त हो जाता है। किन्तु मालती के आतिथ्य से अनुरञ्जित चित्त वाला भृङ्ग, जीवन-पर्यन्त इसकी स्मृति को त्याग नहीं पाता।'[२]

मधु के साथ मधुकर का स्वाभाविक आकर्षण है। प्राय: सभी पुष्पों पर गुञ्जार करते हुए भ्रमर दिखायी पड़ते रहते हैं किन्तु दुर्भाग्यवश कभी ऐसा भी समय उपस्थित हो गया, जबकि वह तृष्णाकुल भ्रमण जिस जिस कुसुम के समीप रस पान हेतु गया, उसी ने अपने मुख को सङ्कुचित कर लिया — भाग्य विपरीत होने पर किसी का भी आश्रय मिलना दुर्लभ रहता है।[३]

भृङ्ग के सुख के विषय में जिज्ञासा करते हुए किसी का प्रश्न है कि 'पद्मिनी एवं कैरविणी दोनों के प्रति ही तुम उन्मुख हुए किन्तु उनमें से किसके

---

१. निरर्थकं जन्म गतं नलिन्या, यया न दृष्टं तुहिनांशुबिम्बम्।
उत्पत्तिरिन्दोरपि निष्फलैव, दृष्टा विनिद्रा नलिनी न येन।।
— शाङ्र्गधरपद्धति, ५६८, पृ० ९१,
सु०सु०र०भा०अगारम् ५६४।८

२. विद्याकर-सहस्रकम् — पद्य संख्या ११६, पृ० २१

३. विद्याकरसहस्रकम्, ११७, पृ० २१

समीप तुमने अधिक सुख प्राप्त किया ।"[१]

षड्, सक्म मलिन, नीरस तथा उग्रगन्धपूर्ण कुसुमों की ओर भ्रमर दृष्टिपात भी नहीं करता । द्विरेफ तो मल्ली की माला से चलते हुए, निरन्तर स्वादिष्ट मधुर धारा के सार को खींचने वाला होता है ।[२]

" भले ही भ्रमर विभिन्न पुष्पों के मकरन्द का पान करें, किन्तु मधुपावलि को कमल की स्पृहा नित्य ही रहती है ।"[३] अर्थात् भले ही कोई प्राणी सभी से प्रेम करता हो, किन्तु किसी एक के प्रति उसका विशेष प्रेम रहता है ।

" जो व्यक्ति आर्तिनाशक तथा सेवनीय वस्तु को छोड़कर अन्य के प्रति आसक्त हो जाता है, उसका परिणाम उसके लिए सुखदायी नहीं होता ।"

अन्तिम पद्य विशेष रूप से महत्वपूर्ण है । ईश्वरेच्छा ही बलवती होती है । क्या मनुष्य क्या प्रकृति सभी के ऊपर उसका समान अधिकार है ।" वन में चारों ओर नव मञ्जरियों पर भ्रमण करता हुआ भ्रमर, चम्पक कलिका को सूंघ भी नहीं सका । क्या वह रमणीय नहीं है ? अथवा भ्रमर रमण करने योग्य नहीं है ? इसके लिए कवयित्री स्वयं उत्तर देती है कि विधाता की इच्छा ही सर्वशक्तिमती होती है ।[५]

---

१. विद्याकरसहस्त्रकम् ११८, पृ० २२

२. वही, पृ० २२ पद्य ११६

३. वही, पद्य १२०, पृ० २२

४. वही, पद्य १२१

" सेव्यं विहाय कमलाकरमर्तिनाशं यत्कैतकीसुमनसं प्रति भावितोऽसि ।
तस्यान्यस्य फलमेतदुपागतन्ते, किङ्कर्णसि भ्रमरकण्टकभग्नपक्षः ।।

५. शाङ्र्गधरपद्धति ८१७, विद्याकरसहस्त्रकम् १२२, पृ० २२, सु०सु०र०भा०, ३७६।६६

लक्ष्मी द्वारा रचित भ्रमरान्योक्तियाँ दर्शनीय है। सम्पूर्ण उक्तियाँ के भ्रमर के उपदेशों से किसी न किसी मानवीय भाव को व्यञ्जित किया गया है। यद्यपि अन्य संस्कृत कवयित्रियों के सभी एक या दो पद्यों में अन्योक्ति की शोभा बिखरी हुयी है, इन्होंने प्राय: प्रत्येक पद्य में भ्रमर के पर्यायवाची भृङ्ग, मधुलिह, द्विरेफ, मधुप, षट्पद आदि शब्दों का प्रयोग करके पुनरुक्ति दोष से बचने का प्रयास किया है। यद्यपि इनके पद्यों में किसी नवीन विचार का समावेश नहीं किया गया है, फिर भी कवयित्री की कल्पना,[1] वर्ण विन्यास,[2] एवं मधुर निनाद[3] से सभी पद्य रुचिकर हो गये हैं।

सरस्वती-कुटुम्बदुहिता-

इनके नाम से ही ज्ञात होता है कि ये किसी शिक्षित परिवार की थीं।

सरस्वती-कुटुम्ब-दुहिता का एक मात्र पद्य समस्याख्यान है। इसमें प्रथम पंक्ति में सांसारिक आनन्द के हेतु सुरत को नमस्कार किया गया है, द्वितीय पंक्ति में समस्यापूर्ति की गयी है।[4]

---

१. भ्रमन् वनान्ते नवमञ्जरीषु, न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत्।
सा किन्न रम्या स च किन्नरन्ता, बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ।।
— शाङ्र्गधरपद्धति, ८१७

२. गत्वा कैरविनीमुपेत्य नलिनीमासाद्य मल्लीलता-
मालिङ्ग्याभिमतां लवङ्गलतिका भृङ्गोऽधुना जीवतु।
मालत्यातिथ्यानुरञ्जितमभूदेतस्य चेत: पुरा,
यावज्जीवमसौ न मुञ्चति पुन: कुत्रापि तस्या: स्मृतिम् ।।
— विद्याकरसहस्रकम्, ११६, पृ० २१

३. दण्डोच्छिष्टै: सह्जमलिनै नीरसैरुग्रगन्धै-
रुधद्गर्वा रम्य कुसुमैर्व्यर्थ वर्ण्यगाथा:।
मल्लीमालागलद-विरलस्वादुमाध्वीकधारा-
साराकर्षी त्वयि न कुरुते दृष्टिपातं द्विरेफ: ।। विद्याक०, ११६, पृ० २२

४. शाङ्र्गधरपद्धति, ५११

संस्कृत साहित्यमेंसमस्यापूर्ति विषयक अनेक पद्य प्राप्त होते हैं । उसी अनुकरण पर आधारित, उपर्युक्त पद्य भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

मदालसा—

मदालसा द्वारा रचित दो पद्यों में प्रथम शार्ङ्गधरपद्धति तथा द्वितीय सुभाषित सारसमुच्चय में उद्धृत किया गया है ।

प्रथम पद्य धार्मिकता से ओत-प्रोत है —इसमें इस संसार को छोड़ कर लोकान्तर की चिन्ता करने का उपदेश दिया गया है क्योंकि 'ऐहिक कर्मों के आधार पर ही जन्मान्तर की प्राप्ति होती है — इस सिद्धान्त के आधार पर लोक के हित का चिन्तन आवश्यक है ।[1]

द्वितीय पद्य में मेघों की गर्जना सुन कर, विरह पीड़ित प्रेमी प्रेमिकाओं की स्थिति का चित्रण किया गया है ।[2]

अन्य कवयित्रियों की रचनाओं को देखते हुए मदालसा का धार्मिक दृष्टिकोण सबसे पृथक है । प्राय: सभी ने सांसारिक सुखों एवं प्रलोभनों की ओर ही अपनी रुचि एवं आसक्ति व्यक्त की है , किन्तु इसके विपरीत, मदालसा ने अनासक्त भाव से श्रीमद्-भगवद्गीता के कर्मफल सिद्धान्त एवं उपनिषदों में प्रतिपादित लोकान्तर हित के चिन्तन की ओर दृष्टिपात किया है । उनका प्रथम पद्य सारगर्भित उपदेश से पूर्ण हैं । द्वितीय पद्य में प्राकृतिक दृश्यों की ओर दृष्टि रखते हुए सांसारिकता से प्रेरित हो उठी हैं । उन्होंने अनुप्रास एवं

---

१. शार्ङ्गधरपद्धति, ६७१

२. सुभाषित सारसमुच्चय पद्य १००, मूल प्रति संख्या ५४५४, एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १९३४

उत्प्रेक्षा अलङ्कार[१] का प्रयोग किया है। यद्यपि द्वितीय पद्य का विचार प्राचीन है, किन्तु व्यक्तीकरण की शैली द्वारा पाठक हठात् मुग्ध हो जाता है।

गन्धदीपिका—

इनका एक मात्र पद्य शाङ्र्गधर पद्धति में प्राप्त होता है। इसमें कवयित्री ने धूप के महत्त्व का दर्शन कराया है। गृहस्थाश्रम में निवास करने वाली नारियाँ धूप के द्वारा अपने वस्त्र एवं गृह आदि को सुगन्धित करें।[२]

आर्या छन्द में रचित प्रस्तुत पद्य भाषा, भाव तथा व्यक्तीकरण, किसी भी दृष्टि से विशेष नहीं है।

नागम्मा—

नागम्मा के नाम से एक मात्र पद्य शाङ्र्गधरपद्धति में मिलता है। प्रस्तुत पद्य में उदित होते हुए सूर्य की स्तुति की गयी है। "उदित होता हुआ रक्त वर्ण का सूर्य, शुक की चञ्चु एवं रक्त कमल (पुण्डरीक) के समान अपनी प्रचण्ड कान्ति चारों ओर व्याप्त कर रहा है। इस प्रकार पूर्व दिशा के कुण्डल के सदृश प्रतीत होने वाले, सूर्य की वन्दना की गयी है।"[३]

---

१. सान्द्र-चन्द्र-विरुतैः धिक्कृत-बाणैर्निर्जितं जगदिदं मदनेन।
अम्बुदो दिशि दिशि प्रथमानो, गर्जितैरिति हि वेदयतीव॥
— सुभाषितसारसमुच्चय, पद्य १००

२. शशिनख-गिर-मद-मांसी-जतु-भागो मलय-लोध्रयोर्भागो।
मिलितैर्गुड-परिमृदितैर्वस्त्र-गृहादीनि धूपयेच्चतुरः॥
—शाङ्र्गधरपद्धति, पद्य३२५६, पृ० ४९८

३. शाङ्र्गधरपद्धति, ८६, पृ० १२, सुभाषितसुधारत्नभाण्डागारम् ४४।३

केवल एक ही पद्य से हमें कवयित्री की प्रतिभा का परिचय मिल जाता है। वर्ण विन्यास,[१] आलङ्कारिक भाषा द्वारा मधुरसङ्गीतमय प्रभाव परिलक्षित होता है।

सुभद्रा—

सुभद्रा के नाम सेवल्लभदेव की सुभाषितावली में एक पद्य उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत पद्य में कवयित्री का आग्रह है कि —आसक्ति ही समस्त सांसारिक तथा मानसिक कष्टों का मूल कारण है, इसे वह स्नेह के रूप में व्याप्त दूध, दही, मक्खन एवं घृत आदि अनेक अवस्थाओं के उदाहरण द्वारा स्पष्ट करती है।[२]

सुभद्रा के पद्य से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सुभद्रा ने अवश्य अनेक कविताओं की रचना की होगी। यही कारण है कि प्रसिद्ध आलोचक राजशेखर ने उनके वाक् व्यापार के चातुर्य की प्रशंसा की है।[३]

सुभद्रा ने अपने पद्य में 'तृष्णा पद्धति' शीर्षक के अन्तर्गत जिस

---

१. शुकतुण्डच्छविसवितुश्चण्डरुच: पुण्डरीकवनबन्धो: ।
मण्डलमुदितं वन्दे कुण्डलमाखण्डलाशाया: ।। शाङ्गर्धरपद्धति, ८६

२. दुग्धं च यत्तदनु यत् क्वथितं ततो नु
माधुर्यमस्य हृतमुन्मथितं च वेगात् ।
जातं पुनर्घृत-कृते नवनीतवृत्ति-
स्नेहो निबन्धमनर्थ-परम्पराणाम् ।। सुभाषितावली ३२५६,पृ०५३७

३. पार्थस्य मनसि स्थानं लेभे खलु सुभद्रया ।
कवीनां च वचो वृत्तिचातुर्येण सुभद्रया ।।
— सूक्तिमुक्तावली, पृ० ४७

वर्णन का उल्लेख किया है, उस विषय में प्राय: अन्य कवियों ने कम ही ग्रहण किया है।

स्नेह की इस अनर्थकारिता के विषय में किसी कवि का प्राचीन पद्य[1] भी सुभद्रा के सुभग पद्य की सत्यता का ही प्रतिपादन कर रहा है।

<u>इन्दुलेखा-</u>

इन्दुलेखा के नाम से वल्लभदेव की सुभाषितावली में एक पद्य प्रा होता है।

दिन भर परिश्रम करने के पश्चात् सूर्य रात्रि में विश्राम हेतु कहाँ चला जाता है -इस विषय में अनेक मतभेद है। कुछ लोगों का कहना है कि सूर्य समुद्र में प्रविष्ट हो जाता है, अन्य जनों के मतानुसार दूसरे लोक में चला जाता है। कुछ अन्य अग्नि के साथ उसका सम्मिश्रण बताते हैं। किन्तु इन सभी मतों को न मानकर इन्दुलेखा का आग्रह है कि -" प्रिय सखि! रात्रि में सूर्य, प्रेम से भरे हुए नारी हृदय में निवास करता है और वह उसे रात्रि भर प्रज्ज्वलित रखता है।"[2]

इन्दुलेखा रचित एक मात्र पद्य द्वारा उनकी काव्यकला, सङ्गीत एवं स्वरपूर्ण, उच्च भावनाओं का ज्ञान हो जाता है। इनकी उक्ति में विभावना अलङ्कार[3] दर्शनीय है। विरह जनित उद्गारों को व्यक्त करने

---

१. स्नेहं परित्यज्य निपीय धूमं, कान्ताकचामोदपथं प्रपन्ना: ।
 नितम्बसङ्गात् पुनरेव बद्धा, अहो दुरन्ता विषयेषु शक्ति: ।।

२. सुभाषितावली -पद्य संख्या १६०२, पृ० ३२३

३. एके वारिनिधौ प्रवेशमपरे लोकान्तरालोकनं,
 केचित् पावक-योगितां निजगदु: क्षीणेऽह्नि चण्डार्चिष:
 मिथ्या चैतदसाक्षिकं प्रियसखि! प्रत्यक्ष-तीव्रातपं,
 मन्येऽहं पुनरध्वनीन-रमणी चेतोऽधिशेते रवि: ।।
 -सुभाषितावली, प० १६०२

की क्षमता भी इनके अन्दर विद्यमान थी ।

लक्ष्मीदेवी ठक्कुरानी –

विद्याकर मिश्र रचित 'विद्याकरसहस्रकम्' नामक सङ्ग्रह में लखिमा ठक्कुराज्ञी के नाम से अनेक पद्य प्राप्त होते हैं ।

लक्ष्मीदेवी ठक्कुरानी या लखिमा ठक्कुराज्ञी ने अपनी कविता के लिए चक्रवाकान्योक्ति, चन्द्रवर्णन, नानाप्रकारशृङ्गाररस, विविधरस तथा कीर्तिवर्णन आदि विषयों को चुना है ।

प्रथम पद्य चक्रवाकान्योक्ति से सम्बद्ध है । कान्ता के विश्लेष से भीरु चक्रवाक दिन को भी रात्रि समझने लगता है ।[1]

तत्पश्चात् दो पद्यों में चन्द्रवर्णन किया गया है । स्वर्ग से उत्पन्न, एक मात्र कनक से रचित, शनैः, शनैः आकाश से उदित होते हुए सूर्य की छटा दर्शनीय है ।[2]

पर्वत रूपी गुफा में शयन करके अचानक उठा हुआ, चन्द्रमा रूपी सिंह, अन्धकाररूपी हाथी को मारने के लिए रक्तपूर्ण होकर मानो लाल वर्ण का सुशोभित हो रहा है ।[3]

इनके अतिरिक्त शृङ्गार रस के अनेक पद्य हैं । एक पद्य में कोई नायिका, अपने नायक से धैर्य धारण करने को कहती है क्योंकि क्षुधा से पीड़ित

---

१. भङ्क्त्वा भीतो न भुङ्क्ते कुटिलबिसलताकोटिमिन्दोर्वितर्का-
तारकारास्तृषार्तः पिबति न विप्रुषः पत्रसंस्थाः ।
छायामम्भोजलक्ष्मीमलिकुलशबलां वीक्ष्य सन्ध्यामसन्ध्यां-
कान्ताविश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ।।

– विद्याकरसहस्रकम् १६७, पृ० ३०

२. विद्याकरसहस्रकम् ४५५, पृ० ७८

३. वही, ४५६, पृ० ७८

व्यक्ति क्या दोनों हाथों से तो नहीं खाने लगता ।[1]

'प्रणय और अप्रणय के लिए मुख्य कारण काल होता है उसमें मनुष्य का कोई भी दोष नहीं होता । क्योंकि जो छाया ग्रीष्म में प्रिय होती है, वही शिशिर में अप्रिय हो जाती है ।'[2]

अन्यत्र विश्रामकाल में नायक द्वारा नायिका के सौन्दर्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है तत्पश्चात् उसने स्व-अवस्था का निवेदन किया है ।[3]

एक अन्य शृङ्गारिक पद्य[4] भी उल्लेखनीय है । तत्पश्चात् एक पद्य में नायिका की सखी के प्रति उक्ति है ।[5] एक पद्य में किसी स्वाधीन-पतिका नायिका का चित्रण है ।[6] अपनी माता से अपनी स्थिति का निवेदन करती हुयी किसी नायिका का कथन है कि वह रात्रि में निद्रालाभ नहीं कर पाती है ।[7]

अन्यत्र किसी नवोढ़ा नायिका की सखी की नायक के प्रति उक्ति है[8]

---

१. विद्याकर सहस्रकम् ५२७, पृ० ८६

२. वही, ५२८, पृ० ८६

३. बाले विश्राम काले तव वदन-विधौ कान्तिपानीय-पूरे
मग्नम्मे नेत्रयुग्मं कुचकलशसमालम्बनं प्राप्य तस्थौ ।
तस्मान्नाभीह्रदान्तं सुललितत्रिवलीप्रान्तकान्त्या लसन्तम्,
दूरादालोक्य भीतं द्वयमपि कलशं नैव हातुं शशाक ।।
— विद्याकरसहस्रकम् ५२६, पृ० ६०

४. विद्याकरसहस्रकम् ६०२, पृ० १०२

५. पादालक्तक-गौरवादपि गतिः शैथिल्यमालम्बते,
नीवीबन्धनपरिश्रमादपि भुजा सञ्जायते विश्लथा ।
सम्पर्कात्कुसुमस्रजोऽपि च तनौ ताम्रत्वमापद्यते,
सख्यः किं करवाणि भूषणकलामात्रप्रिये प्रेयसि ।।
— विद्याकरसहस्रकम् ६०३, पृ० १०२

६. विद्याकरसहस्रकम् ६०४, पृ० १०२

७. वही ६०५, पृ० १०२

८ वही, ६०६, पृ० १०३

वियोग शृङ्गार का भी चित्रण कवयित्री ने किया है कामदेव के निर्दय बाणों से व्यथित अपनी सखी को देखकर दूसरी सखी उसकी सहायता हेतु प्रयास करती है। उसने अपनी सखी की स्थिति का दिग्दर्शन अत्यन्त सुन्दर पदावली में कराया है।[१]

इन विषयों के अतिरिक्त उन्होंने नाना रसों से सम्बन्धित पद्य[२] की भी रचना की है। इसमें किसी प्रश्न का उत्तर देकर प्रश्नकर्ता के भ्रम का निवारण किया गया है।[३]

कीर्तिवर्णन से सम्बन्धित दो पद्यों में सुन्दर भावों का समावेश किया गया है। " सम्पूर्ण प्रभुता से सम्पन्न गरुडासन वाले के लिए क्या आसन ? कौस्तुभ मणि से पूर्ण के लिए क्या आभूषण, स्वयं लक्ष्मी जिनकी पत्नी हैं ऐसे व्यक्ति के लिए क्या देय ? जो स्वयं वाणी के ईश्वर हैं उनके प्रति क्या वचनीय है ?"[४] अर्थात् उनके समीप किसी भी वस्तु का अभाव नहीं है।

" जो स्वयं सम्पूर्ण शक्ति, ऐश्वर्य एवं गुणों से सम्पन्न है, उसे और कौन सी वस्तु समर्पित की जाय अतः शेष मन ही रह गया , उसे भी समर्पित कर दिया गया।"[५]

---

१. विद्याकर सहस्रकम् ६०६, पृ० १०३

२. वही, ६२१, पृ० १०५

३. सत्यं ब्रवीमि मकरध्वजबाणपीड, नाहं तदर्थमनसा परिचिन्तयामि।
दासोऽद्य मे विघटितस्तव तुल्यरूपः, सो वा भवेन्निरूभवेदिति मे वितर्कः ।।
—विद्याकरसहस्रकम् ७६३, पृ० १२८

४. विद्याकर सहस्रकम् ८१४, पृ० १३५

५. रत्नाकरो हि भवनं गृहिणी च पद्मा, देयं किमस्ति भुवने जगदीश्वराय।
राधागृहीतमनसो मनसोऽस्ति दैन्यं, दत्तं मया निजमनस्तदिदं गृहाण ।।
— विद्याकरसहस्रकम्, ८१५, पृ० १३६

उपर्युक्त सम्पूर्ण पद्यों द्वारा कवयित्री की व्यापकी प्रतिभा का अनुमान किया जा सकता है। लक्ष्मिा ठक्कुराज्ञी ने उपमा,[१] रूपक,[२] अनुप्रास[३] आदि अलंकारों का प्रयोग किया है। एक पद्य में व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान का भी परिचय, दिया गया है।[४] साथ ही उन्होंने 'बुभुक्षित: किं द्विकरेण भुङ्क्ते'[५] आदि सूक्तियों का भी प्रयोग किया है।

रसवन्ती प्रियंवदा-

प्रियंवदा ने 'श्यामरहस्य' नामक काव्य की रचना की, किन्तु उनकी कृति आज उपलब्ध नहीं होती है। उनकी पुस्तक का प्रथम पद्य भगवान-कृष्ण की प्रशंसा में लिखा गया है।

प्रस्तुत पद्य में श्रीकृष्ण की बालक्रीड़ाओं, उनके अद्भुत कृत्यों (कंस-वधादि) तथा सौन्दर्य को सूक्ष्म दृष्टि से देखा गया है।[६]

प्रियंवदा के एक ही पद्य में उनकी प्रसाद गुण-युक्त वाणी[७] की

---

१. अयमन्ली रजनी-चरकेसरी गिरिदरीशयना त्समुत्थित: ।
   तिमिरवारणकुम्भविदारणोच्छलितरक्तभरैरिव लोहित: ।।
   -विद्याकरसहस्रकम् ४५६, पृ० ७८

२. नाकनायकनिकेलननायिकाकेलियानकनकैकभाजनम् ।
   मन्दमन्दमुदयन्तमम्बरादिन्दुबिन्दुमुखि किन्न पश्यसि ।।
   -विद्याकरसहस्रकम् ४५५, पृ० ७८

३. आक्रान्ता दशमध्वजस्य गतिना संमूर्च्छिता निर्भरै,
   तुर्यद्वादशवद्द्वितीयमतिमन्नेकादशाभस्तनी ।
   सा षष्ठी कटिपञ्चमी च नवमभ्रू: सप्तमी वर्जिता,
   प्राप्नोत्यष्टमवेदनां त्वमधुना तूर्णं तृतीयो भव ।। विद्याक० ६२१, पृ० १०५

४. विद्याकरसहस्रम्, ५२६, पृ० ८६

५. हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर- लेखक कृष्णमाचारियर, पृ० ३६४

६. कालिन्दीपुलिनेषु केलि-कलनं कंसादि दैत्यद्विषं,
   गोपालीभिरभिष्टुतं व्रजवधूनेत्रोत्पलैरर्चितम् ।
   बर्हालङ्कृतमस्तकं सुललितैरङ्गैस्त्रिभङ्गं भजे,
   गोविन्दंव्रजसुन्दरं भवहरं वंशीधरं श्यामलम् ।। हिस्ट्री आफ सं०,पृ० ३६१

७. वही, पृ० ३६४

झलक स्पष्ट दिखायी पड़ती है । भाषा अत्यन्त सरस तथा शैली सुगम है । वे शार्दूल-विक्रीडित जैसे दीर्घ छन्द में रचना करने में पूर्णत: समर्थ हैं ।

गौरी -

विधा या विज्जिका की भांति गौरी भी स्फुट रचना करने वाली नारियों में प्रमुख मानी जाती हैं । गौरी द्वारा रचित पद्यों का उल्लेख सूक्ति सुन्दर तथा वेणीदत्त की `पद्यवेणी` में प्राप्त होता है ।

गौरी ने अपनी कविता का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत रखा है । जहां एक ओर उन्होंने राज-भक्ति से प्रेरित होकर राजा, राजवैभव, राजा के शत्रुओं, अस्त्रों तथा शत्रुनारियों से सम्बन्धित विषय को लिया, वहीं पर नारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग का भी निरीक्षण किया । प्रभातवायु तथा दिवस वर्णन प्रकृति सौन्दर्य से सम्बन्धित कविता है ।

प्रथम पद्य में उन्होंने शिव का विनाशकारी देव के रूप में स्मरण नहीं किया है, अपितु पार्वती के प्रति आकृष्ट, शिव की प्रसन्न मुद्रा रुचिकर है ।[1]

द्वितीय पद्य में किसी नृप की प्रशंसा करते हुए कवयित्री ने अपनी व्याकरण शास्त्रीय प्रयोग की योग्यता का प्रदर्शन किया है । " हे नृप भूषण चूडामणी ! ब्रह्माण्ड में तुम्हारे शत्रु का अपयश यमुना बन रहा है , कज्जलवन रहा है, चन्द्रमा की कलङ्क माला बन रहा है, व्याल बनकर सूर्य कुण्डली बन रहा है, पुन: पुन: शिव का कण्ठ बन रहा है, सेवार, कोयल, महानील, मेघजाल के सदृश बन रहा है ।"[2]

---

१. उत्फुल्लगल्लपरिफुल्लमुखारविन्दसौगन्ध्यलुब्धमधुपाकुलया रतान्ते ।
अत्युग्रपीनकुचचूचुकया ऽतिगाढमालिङ्गतो गिरिजया गिरिश: पुनातु ।।
— पद्यवेणी १७

२. पद्यवेणी ६५

पुन: राजा को सम्बोधित करके वह कह रही हैं कि एक मात्रभूपति के द्वारा ही संसार में धर्म की व्यवस्था चल रही है। इस घोर कलियुग में वेद, स्मृति एवं ब्राह्मणादि सभी शक्तिहीन हो गये हैं। इस समय पृथ्वी पर देवतुल्य शासन की स्थापना करने में समर्थ एक मात्र भूपति ही शेष रहे हैं।[१]

तत्पश्चात् दो पद्यों में राजा की भुशुण्डी (बन्दूक) का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। 'प्रतापरूपी ज्वर से घूमती गोलीवाली और प्राण-हारिणी बन्दूक, आपके हाथ में महाचण्डी सी दिखायी पड़ती है।'[२]

'बारूद से अपने भीतर भरी गोली वाली, विश्व-मुख का विकास करने वाली, यह बन्दूक, बाहुरूपी भीषण सर्प द्वारा पकड़ी गयी, दुष्ट सर्पिणी के सदृश प्रतीत होती हैं।'[३]

नृपति के प्रताप का चित्र भी मनोहर है। 'तुम्हारा रण में न धनुष चढ़ाना न बाण पकड़ना, न प्रत्यंचा खींचना, न बाहु हिलाना, न बाण का जाना दिखायी पड़ता है। लेकिन यह भूमि, प्रौढ़ गजराज के कुम्भस्थल से गिरती मोतियों के समान चमचमाती शत्रुराजाओं की शिखामणियों से प्रकाशित हो रही है।'[४]

एक पद्य में पुन: राजा के अस्त्र लोहदंष्ट्रा की भयानकता का वर्णन

---

१. प्रभ्रश्यच्छ्रुति-मस्तक: प्रविगलत्-सद्वर्ण-विप्र-स्थिति,
नश्यत्-स्वाङ्ग-बल:प्रनष्ट-वचन-प्राग्भार-पूर्णस्मृति: ।
वृद्धोत्पन्नोऽयं स्वयं कलि-महा-म्लेच्छेन निर्मूलितो,
धर्म: सम्प्रति चाल्यते तव करालम्बेन भूमीपते ।।
—पद्यवेणी ६३, सूक्तिसुन्दर ४८

२. पद्यवेणी, १४५

३. वही, १४६

४. वही, १५६, सूक्तिसुन्दर १५७

किया गया है ।[१]

इसी प्रकार शत्रुनारियों के विषय में लिखा है कि 'चन्द्रमुखी, मोर जैसे सुन्दर गात्रवाली, तुम्हारे शत्रु की स्त्री की कामभावाविष्ट मक्खियां पर्वत में सेवा कर रही हैं ।'[२]

जैसा कि जलकेलि वर्णन हमें विभिन्न महाकाव्यों में मिलता है, उसी आधार पर गौरी ने भी प्रयास किया है । 'रति जीतने वाले श्रृंगारवाली, लालकमल के सदृश लोचन शोभा वाली, जल से निकली, वह जलकी देवी के सदृश दिखायी दी ।'[३]

इसके साथ ही कवयित्री ने नारी सौन्दर्य चित्रण की प्राचीन परम्परा को भी कार्यान्वित रखा । नायिका के भ्रूसौन्दर्य का परीक्षण करती हुयी गौरी की उक्ति है कि — 'विधाता ने चकोर, खंजन, मीन और मृगों को पराजित करने के पश्चात् तुष्ट होकर (उस) सुनयनी को भौंहों के बहाने से पन्ने के दो छत्र प्रदान किये ।'[४]

नख-शिख वर्णन में भी कवयित्री ने नायिका के नेत्र, कटाक्ष, अधर आदि के वैशिष्ट्य का प्रदर्शन कराया है । 'लावण्यरूपी अमृत से भरे, श्रृंगार के सरोवर मुख से कामलीला के लिए नयन-रूपी दो मछलियां शोभायमान हो रही हैं[५]।'

---

१. यमदंष्ट्रेव संभाति लोहदंष्ट्रा करे तव
नीलकोशलसत्-कान्तिकालखण्डमलान्विता ।।
—पद्यवेणी १४७

२. पद्यवेणी, १६७

३. वि॰ निःसरन्ती रतिजित्वराङ्गी, नीरात् सरागाम्बुजलोचनश्रीः ।
आलोकि लोकैः स्वरुचा स्फुरन्ती जलाधि-देवीव जलेशकन्या ।।
—पद्यवेणी ५४६

४. पद्यवेणी, २४५

५. वही, २३६

नेत्रों के साथ साथ कटाक्ष के लिए भी वे लिखती हैं कि नायिका की दृष्टि विचित्र सर्प के समान दर्शन मात्र से मूर्च्छित कर देती हैं।[१]

नारी अधर की अनुपम शोभा का चित्रण तो साहित्य में बहुत अधिक किया गया है। " अमृत और मूंगे के श्रेष्ठ सार से विधाता ने उसके अधर का सृजन किया, जो कि वह काम भुजङ्ग से डंसे हुए को क्षण भर में पुन: जीवित कर देती है।"[२]

अङ्ग-प्रत्यङ्ग के निरीक्षण में चरणों का आ जाना स्वाभाविक है। नायिका के चरण मूंगे और कमल से भी अधिक रक्त वर्ण वाले तथा कुम- कुम से युक्त हैं।[३]

अन्त में पैरों के नखों का भी वर्णन किया गया है, " चरण की अङ्गुलियों की नख- पङ्क्ति के रङ्ग से मिश्रित शोभावाली बाला, शृङ्गार के कल्पवृक्ष की कलियों की पङ्खुड़ियों के अन्दर स्वच्छ पङ्क्ति की भांति सुशोभित हो रही है।"[४]

---

१. अपाङ्गस्तव तन्वङ्गि विचित्रोऽयं भुजङ्गम: ।
   दृष्टमात्र: सुमनसामपि मूर्च्छाविधायक: ।।

— पद्यवेणी – २४०

२. पद्यवेणी – २२४

३. विद्रुमं विद्रुमं कमलं कमलं पुन: ।
   इति संचिन्त्य विधिना कुङ्कुमारुणितौ पदौ ।।

— पद्यवेणी – १६५

४. पद्यवेणी – १६२

इन सबके अतिरिक्त कवयित्री के चित्त में प्रकृति प्रेम की भावना भी विद्यमान थी । यही कारण है कि उन्होंने शृङ्गारिक एवं राजकीय विषयों के अतिरिक्त प्रभातवायु, दिवस, सूर्योदय आदि प्राकृतिक पक्ष पर भी दृष्टिपात किया ।

वायु के विशिष्ट गुणों का गुणगान करती हुयी गौरी का कथन है कि --" अत्यन्त सुगन्धित, सुन्दर पल्लव से युक्त अङ्गोंवाली, पुष्पों से युक्त सुवर्णलता का आलिंगन कर, सरोवर में स्नान करके, यह वायु रसिक की भाँति शनैः शनैः चल रही है ।"[१]

ग्रीष्म के दिवस के लिए कवयित्री की उक्ति सत्य ही चरितार्थ होती है । " कामदेव रूपी नायक की उत्पात की पताका के सदृश, वन्यलताओं की क्रीड़ा में वज्रप्रहार के समान, तथा विरहिणी नारियों के संहार काल की भाँति, समस्त आशाओं को दूर करने वाला, ग्रीष्म दिवस शोभायमान हो रहा है ।"[२]

सूर्योदय के वर्णन में भी उन्होंने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं[३]।

किन्तु इन सब विषयों से पृथक " कल्पवृक्ष " का भी वैशिष्ट्य गौरी ने अपनी लेखनी द्वारा स्पष्ट किया है । नन्दनवन के सैकड़ों श्रेष्ठ वृक्षों में सभी कामनाओं को तत्काल पूर्ण कर देने वाला कल्पवृक्ष सर्वश्रेष्ठ है ।[४]

---

१. पद्यवेणी, ५०३

२. वही , ६६३

३. व्याघ्री पार्श्वमुपैति रङ्कुतनयः सर्पोऽन्तरं बर्हिणो ,
मत्स्यो मीनरिपोश्च पक्षतिमलं चण्डातपे भूतले ।
सत्रासं नवनीतकल्पमतनुर्वक्षोजमेणीदृश-
श्छायां भूमिरुहो, हरिर्गिरिदरीं कामी च कान्तालताम् ।।
--पद्यवेणी ५९८

४. सन्त्येव नन्दनवने शतशः सुवृक्षाः, कालेन पुष्प-फल-तर्कित-नाकि-दक्षाः ।
तेष्वेक एव सुरराजमनोऽभिलाष, तत्काल-दान-पटुरस्ति स कल्पशाखी ।।
--पद्यवेणी ६६७

उपर्युक्त सभी पद्यों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि गौरी एक उच्चकोटि की कवयित्री थीं। उनकी भाषा तथा शैली में आकर्षण है। उनकी शैली रोचक तथा भाषा भावगम्या है। कवयित्री ने उपमा,[१] रूपक,[२] विभावना,[३] अपह्नुति[४] आदि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया है किन्तु उपमा अलङ्कार विशेष रूप से प्रयुक्त किया है। कहीं कहीं तो उनके एक ही पद्य में अनेक उपमायें प्रस्तुत की गयी हैं।[५] गौरी ने वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप्, उपजाति आदि छन्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार साहित्य - शास्त्र, छन्द, अलङ्कार, रस आदि सभी दृष्टियों से देखने पर भी गौरी की कविता उच्च कोटि की है -इतना निश्चित है।

कैरली--

वेणीदत्त की पद्यवेणी में इनका एक पद्य प्राप्त होता है।

कैरली ने अपनी कविता में वाणी की देवी सरस्वती की वन्दना की है।" जिस देवी के अखिल स्वरूप का ब्रह्मादि देवगण भी उचित ज्ञान नहीं कर पाये। श्रेष्ठ कवियों की अभिलाषाओं को पूर्ण करने में जो कामधेनु के सदृश है, उस सरस्वती देवी की जयकार हो।"[६]

---

१. वह्निपूर्णपरिपूर्णनिजान्तर्गोलिका गरलवक्त्रविकाशा।
बाहुभीषणभुजङ्गधृतेयं भाति दुष्टभुजगीव भुशुण्डी ॥
-पद्यवेणी, १४६,५४६,५०३,१६२

२. मुखे शृङ्गारसरसि लावण्यामृतपूरिते।
कामक्रीडा हितं भाति नयनं शफरीयुगम् ॥ पद्यवेणी, २३६

३. पद्य वेणी, १५६, सूक्तिसुन्दर १५७

४. पद्यवेणी, २४५

५. उत्पातकेतुरिव मन्मथनायकस्य, वज्रप्रहार इव केलिलतावनस्य।
संहारकाल इव पान्थमधूजनस्य, ग्रीष्मस्य भाति दिवसः सखि दुरिताशः ॥
-पद्यवेणी ६६२

६. वही, ७७८

आर्या छन्द में बद्ध, प्रस्तुत रचना में यद्यपि स्पष्ट पदावली का प्रयोग किया गया है किन्तु उपमा की कुछ छटा दिखायी ही पड़ जाती है।

मधुरवर्णी—

मधुरवर्णी कवयित्री के नाम से हरि कवि द्वारा सङ्गृहीत सुभाषितहारावली में एक पद्य मिलता है।

इस पद्य में किसी कुलटा (असती) नारी की उक्ति है। वह अपने पति के सभी श्रेष्ठ गुणों से परिचित है, किन्तु फिर भी वह उससे सन्तुष्ट नहीं हो पाती। उसके लिए विवाहित होना भी एक दोष है।[१]

प्रस्तुत पद्य में दुश्चरित्रा नारी के स्वभाव का मनोवैज्ञानिक विवेचन किया गया है। शैली तथा वर्ण सामंजस्य आकर्षक है।

कुटला—

सुभाषितहारावली में ही कुटला द्वारा रचित एक पद्य प्राप्त होता है।

कुटला ने अपने पद्य में किसी कुलटा या असती नारी की उक्ति को चित्रित किया है। वह अपने सुरत सुख का वर्णन स्पष्ट शब्दों में स्वयं करती है। स्वभाव से ही असती होने के कारण, उन शब्दों के प्रयोग से उसे किसी

---

१. आकारेण शशी गिरा परभृतः पारावतश्चुम्बने,
हंसश्चंक्रमणे समं दयितया रत्यां विमर्दे गजः।
इत्थं भर्तरि मे समस्त - युवति-श्लाघ्यैर्गुणैः किञ्चन,
न्यूनं नास्ति परं विवाहित इति स्यान्महादोषोयदि॥
—सुभाषित हारावली, प० ७७
(छन्दो भङ्ग - एक अक्षर भङ्ग- समस्त) मूल प्रति संख्या २२७७, बम्बई विश्वविद्यालय, १९४५।

प्रकार का सङ्कोच अनुभव नहीं होता ।[1] इस पद्य में क्रिया की भी विशेषता नहीं है, केवल नारी की मानसिक स्थिति का यथार्थ दर्शन मिलता है ।

मदिरेक्षणा—

मदिरेक्षणा के नाम से सुभाषितसारसमुच्चय[2] में एक पद्य उल्लिखित है ।

मदिरेक्षणा रचित पद्य प्रकृतिचित्रण सम्बन्धी कविता का सुन्दर उदाहरण है ।

शरद् ऋतु के पश्चात्, वसन्त-ऋतु के आगमन पर, भौंरे कमलिनियों के सरोवर में गुंजार कर रहे हैं, एवं जल में निमग्न कमलों की कलिकायें भी विकास के लिए उत्सुक हो रही हैं ।[3]

प्रस्तुत कविता में काल्पनिक सौन्दर्य, आकर्षक शैली, काव्यात्मक भाव आदि विशिष्ट गुण विद्यमान हैं । इन्होंने कालभारिणी अथवा मालभारिणी जैसे साधारणतया अप्रयुक्त छन्द का प्रयोग किया है ।

पद्मावती—

अन्य प्रमुख कवयित्रिओं विज्जिका, गौरी आदि की भाँति पद्मावती ने विविध विषयों को लेकर स्फुट पद्यों की रचना की और अपनी लेखनी को अग्रसर किया ।

किसी राजा की प्रशंसा में पद्मावती कहती है — राजाओं में जिसे अग्रगण्य शरण जानकर, चंचलनेत्रोंवाली हरिणियाँ बन में चली गयीं । वे

---

१. सुभाषितहारावली,७६ —हस्तलिखित प्रति , बम्बई विश्वविद्यालय, १६४४

२. सुभाषितसार समुच्चय— हस्तलिखित प्रति संख्या ५४५४ , एसियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, १६३४

३. अनुभूतपरेषु दीर्घिकाणामुपकण्ठेषु गतागतैकानना: ।
मधुपा: कथयन्ति पद्मिनीनां सलिलैरन्तरितानि कोरकाणि ।।
—सुभाषितसारसमुच्चय , पं० २३ (हस्तलिखित प्रति)

हाथ में, सुन्दर चाप, गले में नीला चोगा धारण किये हुए, मृग के पीछे जाते (उसे) कामदेव समझती हैं ।"[१]

किसी कृपण विषयक उक्ति भी उल्लेख्य है । मलिन आकार के कारण भयङ्कर , कृपण और आने (पैसे) में केवलआकार का ही भेद है ।[२]

नीति सम्बन्धी पद्य भी मिलते हैं । खल और खल की स्वभाव-सिद्ध वक्रता का वर्णन किया गया है ।[३]

जहाँ साहित्य में पुरुषों द्वारा नखशिख वर्णन किया गया है, वहाँ नारियों ने स्वयं नारी शरीर के अवयवों का निरीक्षण किया है — " क्या वह सुन्दर चन्दन लता में लिपटी नागिनें हैं ? क्या पद्म के मधु में लिपटी भ्रमरियाँ हैं ? अथवा मुख-चन्द्र को हटाने वाले राहु के समान विष पंक्तियाँ हैं — अथवा गुजरात की श्रेष्ठ महिलाओं की चोटियाँ हैं ।"[४]

पद्मावती ने नारी के अङ्गों का क्रमश: वर्णन प्रस्तुत किया है । नायिका का मुख शशिबिम्ब से भी अधिक रुचिकर है — तेरे रुचिकर मुख चन्द्र की शोभा की अमृतधारा को अति चतुर चकोरियाँ आस्वादन करके, बहुत मिठाई पाकर, चोंच की जड़ता को तुरन्त हटाने के लिए , वह चन्द्र मण्डल में का जी का भ्रम करती है ।"[५]

नासिका के सौन्दर्य का वर्णन करती हुयी गौरी की उक्ति है कि — " दन्तपंक्तियों रूपी अनार दानों के भक्षण के लिए उत्कण्ठित, मैं

---

१. पद्मामृततरङ्गिणी — हरि भास्कर २।६ पद्यवेणी — प० ५४

२. कोषे निषण्णस्य च बद्धमुष्टेर्मलिम्लुचाकार विभीषणस्य ।
आकारत: केवलमस्ति भेद: कृपाणकस्यापि धनाणकस्य ।। — पद्यवेणी ७५४

३. स्वभावसिद्धं वक्रत्वं खलस्य च खलस्य च ।
मुखादोषं तयो: सोढुमलमेव सा क्षमा ।। पद्यवेणी ७६४

४. पद्यवेणी , २६१

५. पद्यवेणी , २६८

समझती हूँ कि यह कामदेव रूपी तोते का यह नासा चंचु है ।[१]

"उसकी दोनों भौंहों के बीच में कस्तूरी का तिलक ऐसी शोभा उत्पन्न कर रहा है, जैसे चाप के बीच में लगा कामदेव के बाण का फल हो ।"[२]

कण्ठ की शोभा का भी अत्यन्त रुचिकर चित्र प्रस्तुत किया गया है ।[३] गुजरात की नारियों की दोनों बाहुओं के लिए पद्मावती ने लिखा है कि — क्या शृङ्गारसमुद्र की दो कल्पलतायें है ? अथवा मृणालियों की लतायें हैं ? क्या स्तनगिरि की चन्दन लता या कामपाश रूपीलता है ? क्या लावण्यामृत-सागर की मूँगे की लता-पत्र रूपी अङ्गुलियों से युक्त है ? मेरे मत से तो सुन्दर गुजरात प्रदेश की नारियों की ललित बाहु लतायें सुशोभित हो रही हैं ।[४]

जहां संस्कृत की अन्य कवयित्रियों के पदों में शृंगारिक चित्रण की प्रधानता दिखायी पड़ती है वहां पद्मावती ने एक दूसरे से असम्बद्ध विषयों जैसे नखशिख, सिंह, अश्व के अतिरिक्त प्रकृतिचित्रण सम्बन्धी प्रभात, तारा-गण, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं के वैशिष्ट्य का प्रदर्शन कराया है ।

प्रौढ़ दिग्गजों के मांस का प्रेमी सिंह वन्य हरिणों को नहीं मारता ।[५] अश्व का स्वाभाविक चित्रण दर्शनीय है । "भंवरियों से आकीर्ण

---

१. पद्यवेणी २२७, पद्यामृत तरंगिणी १४०

२. पद्यवेणी, २४६

३. न भाति कण्ठः किमु कामभूपतेः विभाति जैत्रं किल कम्बुरेव ।
अथापि संभाति यतस्तदीया रेखामिषादङ्गुलियन्त्रणीयम् ।।
— पद्यवेणी २१८

४. पद्यवेणी २१६

५. मान्योऽसि मानमञ्जुलसिंह मृगेन्द्र प्रचण्डभुजदण्ड ।
यः प्रौढ दिग्गजोद्भवपललरतो हंसि नो हरिणान् ।। पद्यवेणी ७०६

कमल जैसा अश्व, रोकने पर अयाल उठाये अत्यन्त चञ्चल हो उठता है।"[1] इसके साथ ही पद्मावती ने अन्योक्ति का भी आश्रय लिया है। "सैकड़ों कोयलों को पीछे लिए चलते हुए, हे कौवे! दर्प से तिरस्कार करके यहां से पक्षिराज के पास मत जा। यदि ये आपको कौवा जानेंगे, तो उज्ज्वल रत्नों में से कङ्कड़ी की तरह तुझे निकाल फेंकेंगे'।"[2]

प्रभात वेला में कामराज की पुत्री, सूर्यबिम्ब के पात्र द्वारा सागर पुत्री की आरती उतारने आ रही है।[3]

प्रभात की भाँति रात्रिवेला में तारागणों की छटा भी मनोहर लगती है। "तीनों लोकों की जय हेतु प्रस्थान करते हुए, कामदेव के लिए, सुशोभित कुङ्कुम का आरती पात्र लिए, झिलमिलाती कान्ति वाले, ताराख्पी अक्षतों की भावना करती, निशा रूपी महिला उसके मङ्गलाचार के लिए जा रही है"[4]।

इसी प्रकार ग्रीष्म-ऋतु-वर्णन भी कवयित्री ने किया है। ग्रीष्म के दिवस किसी को भी रुचिकर नहीं लगता है। सम्पूर्ण प्रकृति एवं मानव सूर्य की प्रचण्ड किरणों से तप्त होकर शीतलता में निवास करना चाहते हैं। "प्रियापत्नी पद्मिनी को चन्द्र द्वारा क्लेशित जानकर, उष्ण किरण वाला सूर्य, ग्रीष्मकाल को अपना मित्र बनाकर, उसकी जय की इच्छा से जलती ज्योति वाला होकर प्रकाशित हो रहा है।"[5]

---

१. पद्यवेणी, १२२

२. वही, ६६४

३. प्रभातवेलास्मरराजपुत्री, नीराजनाभाजनमर्कबिम्बम्।
 आयाति नीराजयितुमब्धिपुत्रीं पाणौ गृहीत्वाऽङ्कुरितांशुबिम्बम्॥
 —पद्यवेणी ५०६

४. पद्यवेणी, ५६७

५. पद्यवेणी, ६१८

ग्रीष्म वायु से सम्बन्धित एक अन्य पद्य भी है। प्रचण्ड सूर्य की किरणों से नदी का जल क्षुब्ध हो उठा है। वृक्ष के पत्तों को भी सुखा देने में समर्थ किरणें, नागराज के विष की भाँति भयङ्कर हो रही है।[1]

विभिन्न सङ्ग्रह ग्रन्थों में वर्षा वर्णन मुख्यत: उपलब्ध होता है। पद्मावती का प्रयत्न भी इस क्षेत्र में सराहनीय है। "यह गरज नहीं है तो क्या ? मदन के प्रौढ़ नगाड़ों के शब्द हैं। यह मेघ नहीं है तो क्या है ? मदन के धुरों वाले घोड़े हाथी हैं। यह बिजली नहीं है तो क्या ? उसके हाथ में कोई विजयिनी शक्ति है। यह चाप नहीं है तो क्या ? जगत् के लिए कामदेव का मोहनास्त्र है।"[2]

तत्पश्चात् वीभत्स रसान्तर्गत कुष्ठ रोग से पीड़ित किसी व्यक्ति का चित्रांकन किया गया है। अपने पूर्वजन्म के कारण उसने इस लोक में दयनीय दशा को प्राप्त किया। कुष्ठ के कारण उसके हाथ, पैर आदि अङ्ग शनैः शनैः कीड़ों से व्याप्त होकर, पतित होने लगे।[3]

अन्तिम पद्य में किसी दीप के वैशिष्ट्य को दिखाया गया है। इसमें प्रयुक्त सभी विशेषण अभिमन्यु एवं दीपक दोनों के पक्षों में एक साथ घटित होते हैं। दीपक, अभिमन्यु की भाँति धनंजय से उत्पन्न होने वाला, सुभद्रा के उत्साह को बढ़ाने वाला तथा कृष्ण के सम्मुख स्थित होने में समर्थ है।[4]

पद्मावती द्वारा रचित समस्त कविताओं के अध्ययन से यह परिचय मिलता है कि वे अपनी कोटि की एक अद्वितीय रचयित्री थीं। जहाँ अन्य

---

१. धूली-कर्करिण: प्रचण्ड-तपन-ज्वालालि-माला-धरा:,
स्पर्शादेव सरिज्जलं तरुदलं संशोषयन्त: क्षणात्।
पीतोन्मुक्त-फणीश्वर-फूत्कृति-विष-ज्वालालियुक्ता इव,
स्वच्छन्द परितो भ्रमन्ति बहुशो ग्रीष्मस्य वाता अमी ।। पद्यवेणी ६२१

२. पद्यवेणी ६३६

३. पद्यवेणी, ८०८

४. धनंजय-समुद्भूत: सुभद्रोत्साह-वर्धन: ।
अभिमन्युरिवाभाति दीप: कृष्ण-पुरस्सर: ।। पद्यवेणी ८८७

कवयित्रियों ने मानव जीवन के किसी एक अङ्ग को अपनी रचना का विषय बनाया, वहां पद्मावती ने परस्पर असम्बद्ध विषयों पर अपनी दृष्टि रखी। जहां एक ओर उच्च शासक वर्ग को लिया, वहीं दूसरी ओर कुष्ठ व्यक्ति को अपने अपने पद्य में अनस्यूत कर दिया। काव्यशास्त्र की दृष्टि से देखने पर भी रीति, गुण एवं अलंकार, सब ओर से उनकी कविता श्रेष्ठ है। उन्होंने अनुप्रास[१] आदि शब्दालङ्कार के साथ ही उपमा,[२] रूपक[३] उत्प्रेक्षा,[४] सन्देह,[५] अन्योक्ति,[६] अपन्हुति[७] आदि अर्थालङ्कारों का भी उचित प्रयोग किया है।

यह सत्य है कि उन्होंने किसी महाकाव्य या प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की, किन्तु उनके प्रकृति चित्रण (तारागण, प्रभात, वर्षा, ग्रीष्म) तथा पशु (सिंह, अश्व) चित्रण आदि से स्पष्ट है कि उनके अन्त:करण में काव्यमयी भावनायें विद्यमान थीं। ग्रीष्म की प्रचण्ड वायु तथा वर्षाकालीन

---

१. तुषाराकराक्लेशिशुम्रपुष्टरोचि:, समाज्ञाय जायां प्रियां पद्मिनीं च।
सरवायं निजं ग्रीष्मकाल विधाय, ज्वलज्ज्योतिरुद्युतते जज्जयैषी॥
— पद्यवेणी ६१८

२. पद्यवेणी १२२,२४६

३. त्रिलोकीजयप्रस्थितस्यान्ङ्गयोर्नैलसत्कुङ्कुमारात्रिपात्रं दधाना।
स्फुरत्कान्तितारादातान् भावयन्ती, पुरन्ध्री निशायाति तन्मङ्गलाय॥
— पद्यवेणी, ५६७

४. पद्यवेणी २२७, पद्यामृततरंगिणी, ४५०

५. पद्यवेणी, २१६

६. मा काक कोकिल-शतानुगतप्रसर्पद् दर्पाविमत्य खगराजमितो व्रजेथा:।
हास्यन्ति चेत् करकहं तु भवन्तमेते, हास्यन्ति कैरवदुज्ज्वलरत्नखङ्घात्॥
— पद्यवेणी ६१४

७. पद्यवेणी, २९८

कामदेव की व्यथा का स्वाभाविक चित्र उपस्थित किया है । उन्होंने शृङ्गार के विपरीत, वीभत्स रस को भी अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है, जो कि मुक्तक छन्दों में प्राय: नहीं मिलता । छन्द की दृष्टि से देखने पर हमें ज्ञात होता है कि अनुष्टुप् , उपजाति तथा आर्या आदि लघु छन्दों के अतिरिक्त मन्दाक्रान्ता एवं स्रग्धरा जैसे विशाल छन्दों में भावाभिव्यक्ति की है ।

विद्यावती –

विद्यावती ने सुमीनाक्षी देवी की स्तुति से सम्बन्धित बारह पद्यों के एक स्तोत्र की रचना की ।[1]

उनकी सम्पूर्ण स्तुति में एक मात्र अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है । सुमीनाक्षी देवी सांसारिक एवं पारलौकिक सम्पूर्ण सुखों को प्रदान करने वाली हैं । उनकी आराधना करके भक्त अपने अभीष्ट फल को प्राप्त करने के योग्य हो जाता है । वह समस्त पापों को नष्ट करने वाली तथा उपद्रवों को भी समाप्त करने वाली है । जिस देवी की शक्ति से रहित होकर शिव भी निरर्थक हो जाते हैं तथा जिसके ऊपर सम्पूर्ण चराचर जगत् आधारित है— ऐसी सर्वशक्तिमती देवी वन्दनीय हैं । उन्हीं सुमीनाक्षी देवी की कृपा दृष्टि का आलम्बन कवयित्री विद्यावती को भी है ।

प्रस्तुत स्तुति के द्वारा विद्यावती की अनन्यभक्ति का परिचय मिलता है जिसमें उन्होंने देवी की महत्ता और उनके प्रति अपनी निष्ठा को सरल शब्दों में व्यक्त किया है । भाषा तथा भाव की दृष्टि से यहां पर किसी गूढ़ तत्त्व का दिग्दर्शन नहीं कराया गया है ।

---

१. अड्यार लाइब्रेरी हस्तलिखित प्रति सूची — भाग १, पृ० ११४, वसन्त प्रेस, १९२६

पञ्चम-अध्याय

संस्कृत कवयित्रियों द्वारा रचित प्रबन्धकाव्यों का

आलोचनात्मक अध्ययन

कवयित्री गङ्गादेवी और उनका मधुराविजयम् (महाकाव्य) —

दक्षिण भारत की प्रसिद्ध कवयित्री गङ्गादेवी ने मधुराविजयम् नामक महाकाव्य की रचना नौ सर्गों के अन्तर्गत की है। `मधुराविजयम्`[1] में बुक्कराय के द्वितीय पुत्र कुमार कम्पन के चरित का वर्णन किया गया है।

मधुराविजयम् का कथानक :—

महाकाव्य के प्रारम्भ में गङ्गादेवी ने अपने पूर्ववर्ती कवियों, वाल्मीकि व्यास, कालिदास, बाणभट्ट, दण्डी, भवभूतिआदि के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है, जिनके काव्यों ने उन्हें अत्यन्त प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त क्रियाशक्ति गुरु, कर्णामृत कवि, गङ्गाधर, विश्वनाथ आदि अन्य समकालीन विद्वानों को नमस्कार करके, साहित्य की आलोचना विषयक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात् `मधुराविजयम्` के नायक कम्पन के पिता बुक्कराय की महानता का चित्रण है। इसी के साथ ही विजयानगरीकी समृद्धि एवं सम्पन्नता का परिचय हमें प्रस्तुत महाकाव्य के द्वारा मिलता है। राजा बुक्क अन्य रानियों के रहते हुए भी देवायी के प्रति अधिक आसक्त थे। रानी देवायी की दोहद अर्थात् गर्भावस्था की अभिलाषाओं का वर्णन किया गया है। पुंसवन संस्कार के उपरान्त, पुत्र जन्मोत्सव के अवसर पर राजा बुक्क की प्रसन्नता व्यक्त की गयी है, दान क्रिया सम्पन्न होने पर पुत्र का नाम `कम्पन` रखा गया। क्रमश: कुमार के जातकर्मादि संस्कार किये गये। इसी बीच में राजा बुक्क के सङ्गम (द्वितीय) नामक एक

अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ ।

शनैः शनैः कुमार के बड़े होने पर उसे प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की गयी । उनका शारीरिक सौन्दर्य अनुपम था । उनका प्रत्येक अङ्ग रुचिकर बना था । कम्पन का विवाह गङ्गादेवी तथा अन्य राजकुमारियों के साथ किया गया । कुमार के बड़े होने पर, पिता ने, तामिल प्रदेश में कम्पन को उसके कर्तव्यों से सम्बन्धित सारगर्भित उपदेश किया । बुक्क ने तामिल प्रदेश की राजनैतिक स्थिति को स्पष्ट करके, कम्पन को तामिल प्रदेश के सरदारों अर्थात् दल के नेताओं को नष्ट करके, काञ्ची में शासक बनकर रहने तथा तुण्डीर प्रदेश को जीतने के पश्चात् मधुरानगरी की विजय हेतु जाने का मार्ग निर्देश किया ।

पिता के आदेशानुसार, कुमार कम्पन ने अपनी सुसज्जित सेना के साथ, तामिल प्रदेश की ओर प्रस्थान किया । मार्ग में अपने शत्रुओं, चोल, केरल एवं पाण्ड्य आदि प्रदेशों के शासकों को पराजित करके अपने साथ मिला लिया । पांच दिनों में कर्णाट प्रदेश को पार करके, कम्प महीपाल ने कण्टकाननपट्टण में कई दिनों तक शिविर स्थापित किया । पुनः युद्ध हेतु, विरिञ्चिपुर की ओर बढ़कर , द्रमिड शासक को घेर लिया । वहां पर दोनों सेनाओं के मध्य घोर सङ्ग्राम हुआ । उस युद्ध में विजयी होकर, कम्पन ने अपने शत्रु राजगम्भीर के साथ भयङ्कर युद्ध में भाग लिया । जिसमें कम्पन ने चम्प शासक की जीवन लीला समाप्त कर दी । इस प्रकार तुण्डीर भूमण्डल पर कम्पन का एक छत्र राज्य स्थापित हो गया ।

कम्पन ने काञ्ची में न्यायप्रिय तथा समृद्धिशाली शासन की व्यवस्था करके, अपने को वहां का शासक घोषित कर दिया । कुछ दिनों तक युद्ध की विभीषिका से दूर रहकर, नायक कम्पन ने वासना तथा विलासपूर्ण जीवन व्यतीत किया, जिसमें अनेक रानियों के साथ वन-विहार एवं प्रकृति चित्रण भी समन्वित किया गया है । इसी के अन्तर्गत जलक्रीड़ा, एवं रात्रिवर्णन आदि भी समाविष्ट है ।

तदुपरान्त मुसलमानों द्वारा अधिकृत तामिल प्रदेश का वर्णन है ।

अन्तिम युद्ध में कम्पन की विजय तथा यवनाधिराज सुलतान की मृत्यु का उल्लेख किया गया है।

मधुराविजयम् का ऐतिहासिक महत्व—

यह एक भाग्य की विडम्बना ही है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता के निमित्त ऐतिहासिक सामग्री अति अल्प है। सत्य तो यह है कि इतिहास के नाम पर कल्हण की राजतरङ्गिणी, जो कि काश्मीर के राजाओं की वार्ता को स्पष्ट करती है, तथा बाणभट्ट का हर्षचरित, जो कि चरित काव्य के साथ साथ तत्कालीन स्थिति का भी स्पष्ट वर्णन करता है, ही प्राप्त रचनायें हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्व दक्षिणी भारत के इतिहास के लिए सम्भवत: मधुराविजयम ही अकेला ऐतिहासिक काव्य है।[1] तथा औचित्य सहित गङ्गादेवी को दक्षिण भारत के ऐतिहासिक ज्ञान की दृष्टि से प्रथम इतिहासवेत्ता मानना चाहिए। मधुराविजयम् के द्वारा तामिल प्रदेश में विजय, साम्राज्य के विस्तार तथा तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान होता है। प्रारम्भिक विजयनगर काल में कम्पन की विजय सम्बन्धी तत्त्व ऐतिहासिक है, जो कि विविध शिलालेखों द्वारा भी प्रमाणित हो चुके हैं। प्रस्तुत रचना द्वारा नायक कम्पन की धार्मिक सद्भावनाओं का परिचय चिदम्बरम्, श्रीरङ्गम् तथा मधुरापुरी आदि नगरों में स्थापितमन्दिरों के द्वारा मिलता है[2]।

'मधुराविजयम्' के नौ सर्गों में प्रमुख तत्त्व कुमार कम्पन की मधुरानगरी की विजय से सम्बन्धित है। प्रथम सर्ग में गङ्गादेवी ने अपने समकालिक प्रसिद्ध

---

१. मधुराविजयम्-परिचय —लेखक एस० तिरुवेङ्कटाचारी, अन्नमलई, विश्व विद्यालय से प्रकाशित, १९५७

२. इण्डियन रिव्यू, खण्ड ८८, अक्टूबर १९१७

विद्वानों का नामोल्लेख के साथ साथ कम्पन के पितृ वंश में बुक्क एवं हरिहर का वर्णन किया है। इसी में बुक्क की रानी 'देवायी' के नाम का भी उल्लेख है, जो केवल 'मधुराविजयम्' में ही उपलब्ध होता है।[१] प्रस्तुत सर्ग में ही विजयनगर साम्राज्य का विस्तृत चित्रण किया गया है। द्वितीय में कम्पन का जन्म तथा उनके अन्य दो भ्राताओं कम्पन द्वितीय तथा सङ्गम की उत्पत्ति, तृतीय में कम्पन की प्रारम्भिक शिक्षा, गङ्गादेवी के साथ उनका विवाह, बुक्क के द्वारा तामिल प्रदेश की राजनैतिक स्थिति का स्पष्टीकरण, वहां के सरदारों को नष्ट करके, काञ्ची में कम्पन के शासन की स्थापना करने का आदेश देना तथा तुण्डीर प्रदेश को जीतकर मधुराविजय के लिए प्रस्थान करना ही महत्वपूर्ण घटनायें हैं। चतुर्थ में द्रामिड प्रदेश की ओर जाने के लिए सेना के प्रयाण की तैयारी, विजयानगरी की सेना के आकार तथा उनके शत्रुओं चोल, केरल, पाण्ड्य नृपतियों का वर्णन, क्रमशः सेना का आगे बढ़ना, कण्टकानन में डेरा डालना एवं शत्रु के साथ भयङ्कर सङ्ग्राम होने पर कम्पन के हाथों चम्प नरेश की मृत्यु का चित्रण है। पञ्चम सर्ग में काञ्ची नगरी में कम्पन द्वारा न्यायप्रिय तथा वैभवशाली शासन की स्थापना का दिग्दर्शन कराया गया है। षष्ठ तथा सप्तम सर्ग में कोई विशेष ऐतिहासिक घटना का विवरण नहीं मिलता है। अष्टम में यवनों के आधिपत्य के पश्चात् तामिल प्रदेश की तत्सामयिक स्थिति का उल्लेख है। अन्तिम सर्ग में कम्पन के साथ मुसलमानों का युद्ध, मुगलों की पराजय के पश्चात् सुलतान की मृत्यु हो जाने पर, मधुरापुरी में कम्पन का आधिपत्य स्थापित हो गया।

मधुराविजयम् के समस्त सर्गों में कुछ अनैतिहासिक तत्त्व भी प्राप्त होते हैं, जैसे कि षष्ठ एवं सप्तम सर्गों, से लेश मात्र भी ऐतिहासिक ज्ञान उपलब्ध नहीं होता है। उन दोनों सर्गों में कुमार कम्पन तथा उनकी रानियों की जलक्रीडा, भोग विलासादि का ही चित्रण है। इसके लिए यह कहा जा सकता है कि गङ्गादेवी इतिहास रचना न करके, काव्य रचना कर रही थीं। चूंकि द्रामिड प्रदेश

---

१. देवायी नाम तस्यासीद् देवी वसुमतीपतेः। मधुराविजयम् १।७३

एवं मधुरानगरी की विजय के मध्य में काल क्रमानुसार व्यवधान अनिवार्य था अत: दो सर्गों में कवयित्री ने उसे व्यक्त किया है। इसके साथ ही महाकाव्य के लक्षण में भी यह कहा गया है कि एक रस प्रधान या अङ्गी हो तथा अन्य रस उनके अङ्ग हों। इस दृष्टि से भी वीर रस प्रधान इस काव्य के मध्य में शृङ्गार रस का भी चित्र प्रस्तुत कराया गया है। साथ ही गङ्गादेवी का अभिप्राय यह भी प्रतीत होता है कि काञ्ची में राज्य स्थापित करके, कम्पन ने वहां की जनता को अपने न्यायप्रिय एवं सर्वजन हितकारी शासन के द्वारा प्रभावित कर दिया था, जिसके कारण वह प्रसिद्ध हो गया और जब उसने पुन: शत्रु पर मधुरानगरी की ओर आक्रमण किया तो तुण्डीर प्रदेश के निवासियों ने उसकी प्रयत्न धर सहायता की।

मधुराविजयम् या वीरकम्पराय चरितम् नामक चरितकाव्य में किया गया दैवी शक्ति के अवतरण का परिचय, मुख्यकथा के औचित्य पर कोई प्रभाव नहीं डालता। दैवी की उपस्थिति एक काव्य परम्परा रूप में मानी जाती थी, जैसा कि हर्ष के नागानन्द में भी देवी द्वारा जीमूतवाहन को अस्त्र प्रदान करने की घटना का उल्लेख हुआ है। गङ्गादेवी की रचना में वर्णित इस उपाख्यान को भी लाक्षणिक मानना चाहिए, साथ ही प्रकट हुयी देवी को धर्म का प्रतीक मानना चाहिए क्योंकि तत्कालीन समाज में निरन्तर मुगलों द्वारा सताये जाने के कारण धार्मिक भ्रष्टाचार व्याप्त था और देवी की उपस्थिति से ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि नवीन उदित हुए विजयनगर साम्राज्य के द्वारा पुन: हिन्दू धर्म के उत्थान की ओर सङ्केत किया गया है।

संक्षेप में यदि हम आधुनिक ऐतिहासिक सिद्धान्तों की कसौटी पर देखें, तो भले ही हमें मधुराविजयम् में किञ्चित् त्रुटियां प्राप्त हों किन्तु काव्य के रूप में तथा विजय नगर शासन एवं तात्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों को देखकर निस्सन्देह इस काव्य के द्वारा अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का ज्ञान होता है।

मधुराविजयम् महाकाव्य —

मधुराविजयम् में विभिन्न काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में बताये गये महाकाव्य सम्बन्धी सम्पूर्ण लक्षण[1] विद्यमान है । प्रस्तुत महाकाव्य में नौ सर्ग हैं जबकि कम से कम आठ सर्ग तक के काव्य को महाकाव्य की संज्ञा दी गयी है । महाकाव्य के लिए शान्त, वीर, अथवा शृङ्गार में से कोई एक रस अपेक्षित है —इस दृष्टि से भी गङ्गादेवी की कृति में वीर रस की प्रधानता है । धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से कोई एक फल आवश्यक है । इसमें धर्म एवं अर्थ फल है । नाटक की सभी सन्धियाँ इसमें उपस्थित हैं । ग्रन्थादि में आशीर्वादात्मक (प्रार्थनात्मक) मङ्गलाचरण है । सम्पूर्ण सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग किया गया है । सर्ग के अन्तिम पद्य का सर्ग परिवर्तित कर दिया गया है । सर्ग की समाप्ति पर अग्रिम सर्ग की सूचना मिल जाती है जो कि महाकाव्य के लिए अपेक्षित है । पुत्रोत्पत्ति, ऋतुवर्णन आदि आवश्यक स्थलों को भी मधुराविजयम् में लिया गया है । सम्पूर्ण काव्य में प्रसाद गुण ओतप्रोत है जो कि सर्व रसों में ग्राह्य है ।

गङ्गादेवी ... साहित्य मर्मज्ञा थीं । यही कारण है कि उन्होंने

---

१. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायक: सुर: । साहित्य दर्पण ६।३१५
मोतीलाल बनारसीदास संस्क०, १९५६

१. सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वित: ।
एकवंशभवा भूपा: कुलजा बहवोऽपि वा ।। ६।३१६

शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते । ६।३१७
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा । ६।३१९
एक वृत्तमयै: पद्यैरवसानेऽन्य वृत्तकै: ।
नाति स्वल्पा नातिदीर्घा: सर्गा: अष्टाधिका इह ।। ६।३२०

नानावृत्तमय: क्वापि सर्ग:कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया: सूचनं भवेत् ।। ६।३२१

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध महान् कवियों वाल्मीकि,[१] व्यास,[२] कालिदास,[३] बाण-भट्ट,[४] भारवि,[५] आचार्य दण्डी[६] तथा भवभूति[७] आदि को चुनकर क्रमशः उनकी काव्यगत विशेषताओं का स्पष्टीकरण किया है। यह निःसन्दिग्ध है कि कुछ समकालीन कवियों ने कवयित्री को अत्यधिक प्रभावित एवं प्रेरित किया उनमें से क्रियाशक्ति पण्डित प्रमुख थे, जिनकी वन्दना उन्होंने वाग्देवी सरस्वती के तुरन्त बाद की है।[८] इसके साथ ही यह महत्त्वपूर्ण भी है क्योंकि श्री गोपी-नाथ राव के मतानुसार विजयनगर साम्राज्य के प्रारम्भिक शासक शैव मतानुयायी थे।[९] इसके अतिरिक्त प्राचीन परम्परा से भिन्न ७४ कृतियों के रचयिता अगस्त्य का भी उल्लेख मधुराविजयम् में मिलता है।[१०]

---

१. चेतसोऽस्तु प्रसादाय सतां प्राचेतसो मुनिः।
पृथिव्यां पद्मनिर्माणविधायाः प्रथमं पदम्॥ मधुराविजयम् १।१५

२. वैयासिके गिरां गुम्फे पुण्ड्रेक्षाविव लभ्यते।
सद्यः सहृदयाल्हादी सारः पर्वणि पर्वणि॥१।६

३. दासतां कालिदासस्य कवयः के न बिभ्रति।
इदानीमपि तस्यार्थानुपजीवन्त्यमी यतः॥ १।७

४. मधुराविजयम् १।८

५. विमर्दव्यक्तसौरभ्या भारती भारवेः कवेः।
धत्ते वकुलमालेव विदग्धानां चमत्क्रियाम्॥ १।९

६. आचार्य-दण्डिनो वाचामाचान्तामृतसंपदाम्।
विकासो वेधसः पत्न्या विलासमणिदर्पणः॥१।१०

७. सा कापि सुरभिः शङ्के भवभूतेः सरस्वती।
कर्णेषु लब्धवर्णानां सुते सुखमयीं सुधाम्॥१।११

८. असाधारणसार्वज्ञ्यं विलसत्सर्वमङ्गलम्।
क्रियाशक्तिगुरुं वन्दे त्रिलोचनमिवापरम्॥ १।४

९. श्री टी०ए० गोपीनाथ राव ने त्रिवेन्द्रम द्वारा प्रकाशित मधुराविजयम् के परिचय में लिखा है।

१०. यतस्सप्ततिकाव्योक्तित्यक्तवेदुष्यसंपदे।
अगस्त्याय जगत्यस्मिन् स्पृहयेत् को न कोविदः॥१।१४

गङ्गादेवी और मधुराविजयम् — 'मधुराविजयम्' एक चरित काव्य है, जिसके द्वारा हमें वीरकम्प के चरित के साथ साथ ऐतिहासिक सामग्री भी हस्तगत होती है। गङ्गादेवी 'मधुराविजयम्' के नायक कम्पन द्वितीय की महारानी थी। उनके पितृकुल के इस सम्बन्ध में कुछ भी परिचय नहीं मिलता, किन्तु उनके नाम के आगे प्रयुक्त 'देवी' शब्द से ऐसा लगता है कि वे उच्च कुल के प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्धित रही होंगी। गङ्गादेवी उच्चकोटि की विदुषी एवं काव्यात्मक प्रतिभा से सम्पन्न थीं। कम्पन की अन्य रानियों के रहते हुए भी कवयित्री के प्रति उनका प्रेम एवम् आकर्षण अधिक था।[१]

गङ्गादेवी सच्ची कविता की गुणग्राहिका थीं। एक कवयित्री के रूप में उन्होंने संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध तथा तत्कालीन कवियों का भी स्वच्छन्द अनुकरण किया। उनकी दृष्टि में कालिदास का अनुकरण करना उचित है।[२] उनके मधुराविजयम् पर भी महाकवि कालिदास का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। कालिदास रचित 'रघुवंश' नामक महाकाव्य के अनुकरण पर ही उन्होंने अपनी कृति 'मधुराविजयम्' नामक चरितकाव्य का सृजन किया। कालिदास द्वारा प्रयुक्त विविध छन्दों अनुष्टुप्, वसन्ततिलका, उपेन्द्रवज्रा, हरिणी आदि का प्रयोग गङ्गादेवी ने भी किया है। साथ ही अनेक स्थलों पर वर्णन-साम्य भी मिलता है। जैसे 'मधुराविजयम्' के अष्टम सर्ग में यवनों के आधिपत्य के पश्चात् तामिल प्रदेश की स्थिति के चित्रण एवं 'रघुवंश' में कुश द्वारा पुनः अधिकृत अयोध्या के वर्णन में अत्यधिक समानता है।[३] कालिदास की भाँति ही उपमा अलङ्कार का प्रयोग भी कवयित्री ने पद पद पर किया है।

---

१. मधुराविजयम् ३।१८,१६, षष्ठ तथा सप्तम सर्ग भी।

२. मधुराविजयम् १।७

३. इण्डियन रिव्यू खण्ड १८, अक्टूबर १६१७

चूंकि गङ्गादेवी एक चरित काव्य की लेखिका पहले हैं और कवयित्री बाद में हैं — अत: जिन साहित्यिक विशेषताओं को उन्होंने अन्य कवियों से ग्रहण किया वे उनकी रचना पर कोई दुष्प्रभाव नहीं डालती हैं। उनके अनुसार कोई भी कृति ऐसी नहीं हो सकती जो कि सर्वगुणसम्पन्न हो,[१] किन्तु फिर भी गम्भीर काव्य गत दोषों को क्षमा नहीं किया जा सकता। उनके मतानुसार संसार में तार्किकों की संख्या अधिक है, शाब्दिक भी हजारों हैं, किन्तु सरल वाणी में भाव-व्यंजना करने वाले कवि अल्प ही मिलते हैं।[२] कोई भी ज्ञानी व्यक्ति साधारण काव्य सौन्दर्य से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। वक्तृत्व कला, अर्थ गाम्भीर्य, भावसम्पन्नता, ज्ञान एवं प्रभावशालीनता आदि गुण सभी श्रेष्ठ रचनाओं में उपलब्ध होते हैं। किन्तु इससे कवयित्री का तात्पर्य दम्भपूर्ण उक्ति कदापि नहीं है।

मधुराविजयम् में वैदर्भी शैली का प्रयोग किया गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य में सर्वत्र प्रसाद गुण परिलक्षित होता है। पदावली इतनी स्पष्ट है कि पढ़ते पढ़ते ही पाठक को अर्थ स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि कहीं कहीं

---

१. क्वचिदर्थ: क्वचिच्छन्द: क्वचित् भाव: क्वचित् रस: ।
यत्रैते सन्ति सर्वेऽपि स निबन्धो न लभ्यते ।। —मधुराविजयम् १।१७

२. मधुराविजयम् १।२२

३. प्रबन्धमीषन्मात्रोऽपि दोषो नयति दूष्यताम् ।
कालागरुद्रवभरं शुक्तिकारकणो यथा ।। मधुराविजयम् १।१८
निर्दोषाप्यगुणा वाणी न विद्वज्जनरञ्जिनी ।
पतिव्रताप्यरूपा स्त्री परिणेत्रे न रोचते ।।१।१६
गुणा विहाय काव्येषु दुष्टो दोषं गवेषते ।
वनेषु त्यक्तमाकन्द: काको निम्बमपेक्षते ।। १।२०
चौर्यार्जितेन काव्येन कियत् दीव्यति दुर्जन: ।
आहार्यरागो न चिरं रुचिरः कृत्रिमोपल: ।। १।२१
तार्किका: बहव: सन्ति शाब्दिकाश्च सहस्रश: ।
विरला कवयो लोके सरलालापपेशला: ।। १।२२
करोति कीर्तिमर्थांश्च कल्पते हन्ति दुष्कृतम् ।
उन्मीलयति चाल्हादं किं न सूते कवे: कृति: ।।१।२३
न प्रार्थनीय: सत्काव्यश्रुत्यै सहृदयो जनै: ।
स्वादुपुष्प-रसास्वादे: क: प्रेरयति षट्पदम् ।।१।२४

पर समस्त पदावली[१] को देखकर एक क्षण के लिए बाणभट्ट की स्मृति सम्मुख आ जाती है किन्तु इसके साथ ही असमस्त पद[२] भी उपलब्ध होते हैं।

संस्कृत साहित्य में गङ्गादेवी और उनकी कृति का विशिष्ट स्थान है। वे वीर एवं शृङ्गार दोनों ही रसों में काव्य रचना करने में समर्थ हैं। यदि स्त्री पुरुषों के काव्यों की तुलना की दृष्टि से न देखाजाय तो किसी प्रसित महाकवि के काव्य से 'मधुराविजयम्' की तुलना की जा सकती है। गङ्गादेवी की प्रमुख विशेषता विविध विषयों के चित्रण सम्बन्धी है। गर्भवती रानी का वर्णन किस ढङ्ग से करती है —

सौभाग्यगन्धद्विपदानरेखा रराज तस्या नवरोमराजि: ।
तेजो-निधिं गर्भतले निगूढं कालोरगी रक्षितुमागतेव ।।

यद्यपि प्रस्तुत वर्णन और कविकुल गुरु कालिदास के वर्णन में साम्य प्रतीत हो रहा है फिर भी गङ्गादेवी की मौलिकता सुरक्षित है। शब्द विन्यास अत्यन्त स्वाभाविक है जिसे देखने से हृदय हर्षोत्फुल्लित हो जाता है। शिशु के रूप में नामकरण के पहले कम्पन के बाल सुलभ-मुष्टिबन्ध का वर्णन आकर्षक है —

मुहुर्मुहु: पल्लवपाटलेन मुष्टीकृतेन द्वितयेन पाण्यो: ।
आरातिलक्ष्मीकचसंचयानामाकर्ष शिक्षामिव शीलयन्तम् ।।

नीति के क्रम से अनभिज्ञ नृप के विषय में कही गयी उक्ति कितनी सुन्दर है —

---

१. वाणी पाणिपरामृष्टवीणानिक्वाणहारिणी । मधुराविजयम् १।८
१. मन्दारमञ्जरीस्यन्दिमकरन्दरसाध्वया ।। मधुराविजयम् १।११
२. देवायी नाम तस्यासीद् देवी वसुमतीपते: ।
पद्मा पयोक्षणस्येव शङ्करस्येव पार्वती ।। १।७३

युवानमज्ञातनयागमक्रमं स्वतन्त्रमैश्वर्यमदोद्धतं नृपम् ।
विपद्-दाणेन व्यसनानुबन्धना छिणोति चन्द्रं दाणादेव तापसी ।।

यद्यपि इस विषय की ओर अन्य कवियों ने भी अपनी लेखनी अग्रसर की है किन्तु ध्वन्यालोक के कथनानुसार, प्रतिवर्ष नूतन वसन्त के समान नूतन ढङ्ग से वस्तु प्रकाशन उत्तम ही है।

गङ्गादेवी की कृति में उपमा,[1] रूपक,[2] उत्प्रेक्षा,[3] अनुप्रास[4], श्लेष[5] प्रतिवस्तूपमा,[6] दृष्टान्त,[7] निदर्शना,[8] अपन्हुति[9], सहोक्ति[10], विशे-

---

१. विचित्रपङ्के-रुहदामदीर्घैर्दृशो रुपान्ते जनितोऽस्य शोणिमा ।
अनर्गलस्वप्रसरप्ररोधकश्रुतिद्वयीदर्शितरोषयोगि ।। ३।१३

२. यस्य कीर्त्त्या प्रसर्पन्त्या गुणाकर्पूरशालिनः ।
जगदण्डकरण्डस्य रामिकञ्चुलिकायितम् ।। १।३३

३. मरालैर्मञ्जुमञ्जीरशिञ्जिताकृष्टमानसैः ।
लीलागतिमिव प्राप्तुं सेव्यन्ते यत्र योषितः ।। १।६३

४. तरलिताङ्गुलिताडितवल्लकीनिरततानिरन्तरितैः स्वरैः ।
जगुरमुष्य जगत्प्रथितं यशो गमकभङ्गितरङ्गितमङ्गना ।। ५।१२

५. विलसदुत्पललोचनशालिनीः स्फुरितचन्द्रमुखी कुमुदस्मिताः ।
नरपतिः स्फुटतारकधारिणीर्निरविशद् दयिता इव यामिनी ।। ५।४७

६. निर्दोषाप्यगुणा वाणी न विद्वज्जनरञ्जिनी ।
पतिव्रताप्यरूपा स्त्री पत्युर्नेत्रेन रोचते ।। १।१६

७. चौर्यार्जितेन काव्येन कियत् दीव्यति दुर्जनः ।
आचार्य-रागो न चिरं रुचिरः कृत्रिमोपलः ।। १।२१

८. मुखेन तन्वी शरपाण्डरेण विमुक्तरत्नाभरणा विरेजे ।
विलुनराजीववना दिनान्ते छायाशशाङ्केन शरन्नदीव ।। २।२

९. अनुल्बणामायततुङ्गबन्धुरामभंसलोक स्फुटमस्य नासिकाम् ।
विशृङ्खल-व्याप्रुवदीक्षण-द्वयीपरस्पराक्रान्तिनिवारणार्गलाम् ।।३।१४

१०. सह प्रतापेन समुन्नतिं वपुर्बलेन-भावयशसा विलोचने ।
गुणैः परिणाहममुष्य कन्धरा स्वरेण गाम्भीर्यमगच्छदाशयः ।। ३।१६

मोक्ति, अतद्गुण आदि अलङ्कारों का समावेश है। गर्भित वाक्यों के अध्ययन से चित्त सहसा हर्ष विभोर हो जाता है।

इसके साथ ही प्रस्तुत महाकाव्य में अनुष्टुप[3] वसन्ततिलका[4] उपेन्द्रवज्रा[5] मालिनी[6] वंशस्थ,[7] हरिणी[8] शार्दूलविक्रीडित,[9] द्रुतविलम्बित[10] आदि छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। फिर भी अनेक गुणों के रहने पर प्रस्तुत रचना में अनुचितार्थ[11] तथा श्रुतिकटु[12] जैसे काव्य विषयक दोष भी विद्यमान हैं।

इस प्रकार विविध अलङ्कार, विविध छन्द, विविध रस के अभि- व्यञ्जक गङ्गादेवी द्वारा रचित मधुराविजयम् महाकाव्य को हम एक उच्च - कोटिकी ऐतिहासिक रचना कह सकते हैं तथा गङ्गादेवी संस्कृत साहित्य की एक महान् कवयित्री हैं।

---

१. यद्दीर्घिकासु माणिक्यमयसोपानचारिभिः
   क्षणादास्वपि चक्राह्वैर्विरहो नानुभूयते ।। १।६०

२. नृपमौलिमणिच्छायामञ्जरीपुञ्जरञ्जिताः ।
   अव्याहतारोरसी रक्तिं न जातु रविरश्मयः ।। ४।१४

३. मधुराविजयम् १।१

४. वही, १।७५

५. वही, २।१

६. वही, २।४२

७. वही, ३।१

८. वही, ३।४७

९. वही, ४।८३

१०. वही, ५।११

११. तमञ्जलिभरानम्रकिरीटितलकीलितैः ।
    प्रणेमुर्धरणीपालास्तुरङ्गस्कन्धवर्तिनः ।।
    — मधुराविजयम् ४।३१

१२. पथिक (सार्थ) पराक्रमणोत्सुक- प्रसवकार्मुककाहननिस्वनः ।
    मधुरपञ्चमरागसमाञ्चितो जगदरञ्जयदन्यभृतध्वनिः ।। ५
    — वही ५।६९

तिरुमलाम्बा और उनका 'वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू'

तिरुमलाम्बा, विजयनगर के राजा अच्युतराय की राजमहिषी थी। हाम्पीनगर के विट्ठल मन्दिर में अच्युतराय के प्राप्त अनेक ताम्रपत्रों में से एक पर अच्युतराय के द्वारा दिये गये सुवर्ण मेरुदण्ड के दान का उल्लेख है। यह ताम्र प्रशस्ति वोहुआ तिरुमलाम्बा के द्वारा रचित श्लोकों में उपनिबद्ध है। इस चम्पू के उपसंहार वाक्य[1] से स्पष्ट है कि वही तिरुमलाम्बा 'वरदाम्बिका-परिणय चम्पू' की निर्माणकर्त्री है।

यह चम्पू-काव्य कथावस्तु की दृष्टि से भी राजकीय है। सम्पूर्ण वर्णन राज परिवार से सम्बन्धित है। कथा का प्रारम्भ एक विस्तृत वंशावली से हुआ है।[2]

वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू का कथासार-

औषधिपति बुध-पुरूरवा-आयु-नहुष-ययाति-तर्वुसु क्रमशः राजा हुए। तुर्वसु के वंश में तिम्म नामक राजा हुए, तिम्म ने देवकी से विवाह करके ईश्वर

---

१. इत्यैकवारकर्णनमात्र—वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू, पृ० १७६—१८०

२. अस्ति समस्तजगदानन्दमूलकन्दलम् इन्दीवरकुलतपः फलम् —औषधिपतिर्नामः,
—वरदाम्बिकापरिणायचम्पू, पृ० १-२

नाम का पुत्र प्राप्त किया । ईश्वर तथा बुक्कमाम्बा से नृसिंह नामक राजकुमार की उत्पत्ति हुयी । नृसिंह द्वारा विजय हेतु जाने पर पहले प्राची दिशा को जीत कर , बाद में दक्षिण दिशा में चोल देश की ओर प्रस्थान किया । कावेरी नदी को पार करके उसके दक्षिणी किनारे पर सेना को ठहराया । शत्रुदेश पर विजय प्राप्त करके नृसिंह ने वहां के निवासियों को अत्यन्त संत्रस्त किया । अपनी चतुरङ्गणी सेना से सन्नद्ध होकर, चोल देश का भूपाल युद्ध करने को कटिबद्ध हो गया । दोनों पक्षों के बीच भयङ्कर युद्ध छिड़ जाने के कारण, भयभीत अपनी सेना को देखकर नृसिंह ने एक विशाल हाथी पर चढ़ कर शत्रु की ओर प्रस्थान किया । युद्धस्थल में चोल देश के शासक पर भाले से प्रहार करके घोड़े से गिरा दिया और उसे जीवित ही पकड़ लिया । राजा के पकड़ लिए जाने से शत्रु सेना ध्वस्त हो गयी । राजा ने विजय के हर्ष से उन्मत्त होकर अपनी सेना सहित शत्रु राजधानी में प्रवेश किया । रामेश्वरम् की ओर जाते हुए समुद्र को पार करके, राम, सगर आदि वीर पुरुषों, देव तथा दानवों के अद्भुत कृत्यों को सुनते हुए उन्होंने रामेश्वर की वन्दना की । उन्होंने वहां के अनेक राजाओं को परास्त किया । समुद्र के स्थिर जल में सेतु-निर्माण करके नृसिंह महाराज श्रीरङ्गपट्टण नामक पुरी में प्रविष्ट हुए । वहां के राजा महावीर ने अन्य कोई आश्रय न पाकर, अपनी सन्तानों, पत्नियों सहित अपने राज्य को नृसिंह के चरणों में समर्पित कर दिया । कृपा से प्लुत मन वाले नृसिंह ने महावीर को पुन: उसकी पुरी के शासन में नियुक्त कर दिया, किन्तु उन्हें दुर्मन्नरादि नामक दुर्गों का जाल तथा मतरङ्गी नाम का दुर्ग हस्तगत हो गया श्री रङ्गपट्टण में अपनी प्रभुता स्थापित करने के उपरान्त देव गोकर्णनाथ को प्रणाम करके, नृसिंह ने तुलापुरुषदान के साथ विविध दान क्रियाओं को सम्पन्न किया । अनेक राजाओं से युक्त होकर, नृसिंह ने उत्तर दिशा की ओर गमन किया । वहां पर काम्बोज, वाह्लीक, तुरुष्कार आदि को पराजित करके, सुलतान को अपनी कृपालु बुद्धि के कारण मुक्त कर दिया । सम्पूर्ण विजयों के उपरान्त ऐश्वर्यशाली शासक ने अपनी राजधानी विद्यापुरी में पुन: लौटकर, समुद्र से लेकर हिमालय पर्यन्त पृथ्वी का स्वच्छन्दता पूर्वक पालन किया ।

पुन: सूर्यवंशोद्भवा रामाम्बा की पुत्री ओम्बमाम्बा से परिणय करके, उसके द्वारा अच्युतदेव की अनुकम्पा से अच्युत नाम के पुत्र का लाभ किया। अच्युतराय के युवा होने पर नृसिंह देव स्वर्ग प्रयाण कर गये । पिता की मृत्यु के उपरान्त अच्युतराय सिंहासनारूढ़ हुए ।

एक बार उपवन में गये हुए, अच्युतराय ने भवानी के आयतन में किसी कन्या का दर्शन किया । बहुत देर तक उसे ध्यानपूर्वक देखते ही राजा, विस्मय से पूर्ण होकर किंकर्तव्यविमूढ़ तथा चित्र लिखित से होकर अपलक दृष्टि से उसे देखते रहे ।

सूर्यवंश का आभूषण वह कन्या वरदाम्बिका नाम से प्रसिद्ध थी । गौरी-पूजन हेतु आयी हुयी उस बालिका ने ध्यान की समाप्ति पर जब नेत्रों को खोला, तो अपने सम्मुख साक्षात् कामदेव को पाकर, कम्पनशील शरीर वाली उसने मणि-स्तम्भ का आश्रय ले लिया । हर्ष रस से सिक्त हुयी, निरन्तर उसी का दर्शन एवं ध्यान करती हुयी वरदाम्बिका मदनबाणों से आहत हो गयी । परस्पर दर्शन से व्यत्यस्त चित्त वाले दोनों चेतनाशून्य से प्रतीत होने लगे ।

कुछ क्षण पश्चात् प्रधान मन्त्री ने राजकार्य के लिए विदूषक के मुख से राजा को सूचना प्रेषित करायी । विदूषक की सूचना को सुनकर, अनिच्छा भाव से राजा ने गमन किया ।

राजकन्या भी अपने भवन में जाकर अपनी सखियों से बिना वार्तालाप किये हुए, तथा गुरुजनों की सेवा आदि कार्यों को छोड़कर , वीणावादन, हरिणी, सारङ्ग पालन, मयूर-नर्तन, राजकीय-शुक-अध्यापन तथा स्नानादि क्रियाओं को छोड़कर, निरन्तर उसी का ध्यान करती हुयी हृदय में महती चिन्ता से ग्रस्त हो गयी ।

जिस समय वरदाम्बिका अपनी सखियों से गौरीवन में देखे गये, विश्वम्भरापति के दर्शन की चर्चा कर रही थी, उसी समय उसने किसी वृद्ध कंचुकी को आते हुए देखा । कंचुकी ने राजकुमारी को सूचना दी कि वरदाम्बिका का

विवाह अच्युतराय के साथ निश्चित हो गया है। पुर की नारियाँ भी कन्या को ले जाने के निमित्त भेजी गयीं हैं अत: वे अपनी सज्जा कराने को तत्पर हो जावें।

पुन: राजा ने मङ्गलाचरण तथा अच्छे श्रेष्ठ अलङ्कारों से सज्जित कराके, उसके सम्बन्धी के घर जाकर विधिपूर्वक उसके साथ विवाह सम्पन्न करके उसे पट्टाभिषेकमहिषी पद प्रदान किया। कुछ समय पश्चात् दोनों से चिनवेङ्कटाद्रि नामक कुमार की उत्पत्ति हुयी। कुमार की असाधारण प्रतिभा को देखकर, अच्युतराय ने उसे बाल्यकाल में ही युवराज पद दे दिया।[१]

ऐतिहासिकों की दृष्टि में अच्युतराय विजयनगर के वीर राजा कृष्णदेवराय (१५०९-१५३० ई०) के उपरान्त सिंहासनारूढ़ हुआ और उसका भाई था,। इतिहासकार अच्युतराय को एक अत्यन्त अयोग्य शासक मानते हैं।[२] इस चम्पू काव्य में भी अच्युतराय को एक अत्यन्त अयोग्य शासक होने के कारण उनकी किसी दिग्विजय का वर्णन नहीं है। दिग्विजय का वर्णन नृसिंह का है और वह बहुत कुछ कालिदास के रघु दिग्विजय की अनुकृति मात्र है। अच्युतराय के वर्णन में --नवयौवन, अङ्ग- हृदय वर्णन, अश्वक्रीड़ा, राज स्तुति, उद्यान, वहाँ पर राज कन्या दर्शन, पत्र-व्यवहार, राजकन्याचिन्तन, विदूषक वचन, राजकन्या की विरह दशा, मधुमास, उपवन विहार, पुष्प चयन, जलक्रीड़ा, वरदाम्बिका का गर्भधारण करना, पुत्र जन्म शैशव और राज्याभिषेक ही वर्णित है।

---

१. अत्यादरादच्युतदेवरायं वरेण्यशीलां वरदाम्बिकां च।
श्रेयोनिधानं चिनवेङ्कटाद्रिं श्रीवेङ्कटेशश्चिरकालमव्यात्॥
—वरदाम्बिका परिणय, पृ० १७०

२. मध्ययुग का इतिहास, पृ० ४३०

इतिहास और कल्पना के समन्वय से इस चम्पू काव्य की कथावस्तु तैयार की गयी है। राजनाथ के अच्युताभ्युदय में वरदाम्बिका सलगराज की कन्या कही गयी है।[१]

तिरुमलाम्बा रचित वरदाम्बिकापरिणय एक चम्पू काव्य है। अग्निपुराण,[२] काव्यादर्श,[३] साहित्यदर्पण,[४] में गद्य पद्य से मिश्रित रचना को चम्पू बताया गया है। हेमचन्द्र और वाग्भट ने चम्पू काव्य की विशेषताओं में मिश्र शैली के अतिरिक्त साङ्क और सोच्छ्वास भी जोड़ दिया है।[५] लक्षण ग्रन्थों में चम्पू काव्य की जो परिभाषायें दी गयी हैं, उनके आधार पर उसकी निम्नलिखित विशेषतायें सामने आती हैं :—

(१) चम्पू काव्य गद्य पद्य मय होता है।

(२) वह साङ्क होता है।

(३) वह उच्छ्वासों में विभाजित होता है।

(४) उसमें उक्ति प्रत्युक्ति नहीं होती।

(५) वह विष्कम्भकशून्य होता है।

वस्तुत: गद्य पद्य दोनों का होना ही चम्पू काव्य की मुख्य विशेषता है। जैसे पंचतन्त्रादि ग्रन्थों में पद्य भाग का विशेष महत्त्व दिखाई पड़ता है। विशिष्ट अर्थ को पद्यों में समाविष्ट कर दिया जाता है, गद्य में उसी को विस्तृत कर दिया जाता है, वैसी स्थिति चम्पू काव्य में नहीं रहती।

---

१. महत्तरे मानवलोकशासितुर्मनोऽनुकूला महिषीपदे तदा।
कृताभिषेका सलगक्षितीशितुर्वरात्मजासीद् वरदाम्बिका वधू: ।।
— अच्युताभ्युदय।

२. मिश्रं चम्पूरिति ख्यातं प्रकीर्णमिति च द्विधा।
श्रव्यं चैवाभिनेयं च प्रकीर्णं सकलोक्तिभि: ।। — अग्निपुराण

३. गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यभिधीयते ।। —काव्यादर्श १।३१

४. गद्यपद्य मयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते —साहित्यदर्पण ६।३३६

५. गद्यपद्यमयी साङ्का सोच्छ्वासा चम्पू: —काव्यानुशासन ८।६
— काव्यालङ्कार वाग्भट्ट, प्रथम अध्याय

चम्पू में गद्य एवं पद्य दोनों की समान कोटि रहती है। चम्पू ग्रन्थों में समास बहुला गौडी रीति रहती है, जो 'वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू में भी प्राप्त होती है।

'वरदाम्बिका परिणाय' के आद्योपान्त अध्ययन से कवयित्री के वैदुष्य का परिचय मिलता है कि उन्हें काव्य, नाटक, अलङ्कार, पुराण, आगम आदि प्रत्येक शास्त्र का सम्यक् ज्ञान था[१]। अनेक भाषाओं पर उनका अधिकार था। कवि कुल का पालन, धार्मिकता, अनेक यज्ञों का करना, मन्दिर तथा अनेक धर्म संस्थाओं को दान देना एवं विद्वानों का आदर करना, उनका स्वभाव था। वे कला चतुर्य एवं पति प्रिय थीं।[२]

सम्पूर्ण कलाओं में निपुण तिरुमलाम्बा की कृति केवल विद्वानों के लिए है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवयित्री को अनेक कोषों का ज्ञान था।[३]

'वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू' के द्वारा रचयित्री की प्रसरण-शीला उत्प्रेक्षाशक्ति,[४] वर्णन में प्रवीणता,[५] वर्णविन्यास की चातुरी[६]

---

१. इत्यैकवाराकर्णनमात्रदृढावधारितनव्यकाव्यनाटकालङ्कारपुराणागमरहस्य-सारस्यानुबन्धसमिन्धानस्वाभाविकप्रतिभानुभावया' -वरदाम्बिकापरिणाय, पृ० १७६

२. 'विद्याविशेषनिरवद्यविद्वदरसकलकविकुलश्रवणानन्दचिन्तितानन्ताभीष्टफलाश्रवण-विश्राणनकामगवीभवद्विशेषभाषाविषयसविशेषोन्मेषचतुरिमगर्भितसरसप्रबन्ध-सन्दर्भया, विविधविद्याप्रगल्भराजाधिराजाच्युतरायसार्वभौमप्रेमसर्वस्वविश्वासभुवा -वरदाम्बिका परिणाय, १७६

३. 'निर्वर्ण्य सुचिरं च राजन्यो विस्मयविधेयतया, नियन्त्रित इव? नियमित इव, निरभि इवै निरर्गलरामाभियोगनिध्न इव, निश्चलध्यानशील इव, निरवधिकानन्दानु-सन्धान इव, निरुद्धमनोवृत्ति: निष्पन्दीभवदिन्द्रियवैचक्षो निर्निमेषवीक्षण: क्षणमतिष्ठत् -वरदाम्बिकापरिणाय, पृ० १२६

४. मधुव्रतापादितमन्युरेखास्पन्दा मधुश्रीरधुना विभाति। त्वदागमानन्दविशेषशंसि भुजापरिस्पन्दमिवोद्वहन्ती ।। वरदा०, पद्य १३५

५. [illegible], वही, पृ० ७७

६. वही, पृ० १५२

उत्तमरीति से प्रगट होती है। वर्णन के समय बहुसमास[1] द्वारा रस के समान आनन्द प्रदान करता है। केवल यही एक साहित्य विषयक इनकी रचना है। इसमें अपूर्व और नवीन वस्तु दृष्टिगोचर होती है। तिरुमलाम्बा की सूक्ष्म निरीक्षिका शक्ति दर्शनीय है। नारी सौन्दर्य चित्रण से सम्बन्धित एक स्थल का उदाहरण रूप में प्रस्तुत है।[2]

इस प्रणय काव्य में कवयित्री ने भाषा पर अपना प्रगाढ़ आधिपत्य व्यक्त किया है। वर्णन में कुछ शब्दों के तो सभी पर्याय उपलब्ध होते हैं। कर, करवाल आदि शब्दों के तो सभी पर्यायवाची शब्द मिल जाते हैं। ओज और गाम्भीर्य की प्रचुरता है, किन्तु उसी मात्रा में माधुर्य व्यञ्जक शब्दावली नहीं है। चम्पूकाव्यों में समास बहुला गौड़ी रीति रहती है जो प्रस्तुत ग्रन्थ में विद्यमान है। वाक्य प्राय: समास बहुल हैं और संस्कृत साहित्य में प्रसिद्ध समासों से भी लम्बी समस्त पदावली[3] इसमें प्राप्त होती है यद्यपि इसमें समास बहुल है किन्तु गद्य-पद्य-मय होने से गद्य भाग से प्रमित के लिए, पद्य

---

१. निरन्तरान्धकारितदिगन्तरकन्दलदमन्दसुधारसविन्दुसान्द्रतरघनाघनवृन्दसन्देहकस्यन्दमानमकरन्दविन्दुबन्धुतरमाकन्दतरुकुलतल्पमृदुलसिकताजालजटिलमूलतलमरुवकमिलदलघुलघुलयकलितरमणीयपानीयशालिकाबालिकाकरारविन्दगलन्तिकागलदेलालवङ्गपाटलघनसारकस्तूरिकातिसौरभमेदुरलघुतरमधुतरशीतलतरसलिलधारानिराकरिष्णुतदीयविमलविलोचनमयूखरेखापसारितपिपासायासपथिकलोकान् -

—वरदाम्बिकापरिणय, पृ० ३१-३२

२. विषमशरविजयकेतु-वैजयन्तीमिव विस्फुरन्तीं चेन्द्रियसंवननमन्त्रदेवतामिव सीमन्तमयूखरेखा .... एकत्रपुञ्जीभूयसञ्चरन्तीमिव मदनसञ्जीवनकलाम-वर्णनीयलावण्यामन्यादृशीं कामपि राजकन्याम्, — वही, पृ० १२६

३. समुद्धतसुभटव्रातपरस्पराभिपातसमयसमुदितखेदितरहितबहुतमुरवसमाकुलपुरुहूतपुरस्त्रातोदरी जातलीलायितजातविविधविलोकितविधौतासिताम्बुजातदामपरिवीतोद्धूतकृपाणलतादीधितिधोरणीस्तम्भशकसुचितप्रतिनवादितेयभावोचितनाकान्तरनिर्माणोद्यमम्, — वही, पृ० ५८

विराम का कार्य करता है और साथ साथ आनन्द भी देता है।

कवयित्री की भाषा शैली पर बाणभट्ट का प्रभाव[१] स्पष्ट दिखायी पड़ता है। कादम्बरी और हर्षचरित के समासों का प्रयोग काव्य के गद्य भाग को सघनवन का रूप दे देता है। हिंस्र पशु भय के सदृश बीच बीच में, दुरूहार्थ - पद क्लिष्टता का भय भी उत्पन्न कर देता है। अनुप्रासों के अपूर्वता न होते हुए भी, प्रवाहशीलता के कारण यह दुरूहता खटकती नहीं है। रसों की विविधता, पर्वत मार्ग के झरनों सा आनन्द देती है। अनेक देशों[२] पर्वतों तथा नदियों का चित्रण मनोविनोद करने में पूर्ण समर्थ है।

'वरदाम्बिकापरिणाय चम्पू' के ऊपर नलचम्पू तथा यशस्तिलक-चम्पू का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। भाषा सादृश्य की दृष्टि से एक उदाहरण दृष्टव्य है।[३]

नलचम्पू, यशस्तिलकचम्पू के उपरान्त शाब्दी क्रीड़ा, अलङ्कारों का प्रदर्शन, गद्यकाव्य के सौष्ठव को समाहित करने का, बृहत्समस्त पदावली के सम्पादन का, वर्णन सौन्दर्य के साथ कथावस्तु के विकास का, परम्पराबद्धता का रस एवं वर्ण्य विषय की अनुकूलता के साथ रीतियों तथा वृत्तियों के परिवर्तन

---

१. प्रोसीडिङ्ग्स फिफ्थ ओरियन्टल कान्फ्रेन्स, वोल्यूम १- १६३०
-यूनिवर्सिटी आफ पंजाब, लाहौर

२. द्राक्षालतावितानसवितानबालरसालमूलच्छायानिषण्णनिस्पन्दगोवृन्दवदन, निस्यन्दमानरोमन्थविन्दुसन्दोहतारकिताडम्बरविडम्बनचतुरशाद्वल-प्रदेशान् (चोलदेशान्)वरदाम्बिका परिणाय, पृ० ८

३. 'कुष्ठयोगो गान्धिकापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, सन्निपातस्तालेषु, गृहसङ्क्रान्तिज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवाद : सांख्येषु, दायस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वनभूमिषु, गलग्रहो मत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूल-सम्बन्धः चण्डिकायतनेषु' ।
-नलचम्पू प्रथम उच्छ्वास, पृ० ६, चौखम्बा सं०,१६३२

"पक्षपातः पतङ्गेषु, प्रमत्तता मातङ्गेषु, समुच्चरलता हारेषु, संदैन्यालापः प्रणयकुपितदारेषु, मित्रद्वेषः कुमुदिनीषु, मूर्च्छना परिवादिनीषु" — वरदाम्बिकापरिणयचम्पू पृ० २०

का, यदि कोई चम्पू काव्य भव्यतम रूप प्रस्तुत करता है, तो वह वरदाम्बिका-परिणय-चम्पू है। भाव तरङ्गों के साथ भाषा के रूप में भी परिवर्तन देखना हो तो नृसिंह एवं चोलराज का युद्धवर्णन ~~स्व~~ उल्लेखनीय[1] है।

गद्य और पद्य का इससे सर्वथा भिन्न, कोमलकान्त पदावली सम्पन्न रूप भी उपलब्ध होता है।[2] इसके अतिरिक्त कवयित्री द्वारा प्रयुक्त अलङ्कारों की शोभा भी मनोहर है। अर्थान्तरन्यास[3] के प्रयोग में कालिदास की अनुकृति देखी जा सकती है। गद्यभाग की अपेक्षा पद्यभाग में लावण्य भी अधिक है।

---

१. अन्धी कृतहरिदन्तरालरजोन्धकारनिकर... निकर.......... मार्तण्ड-कान्तारमिव शृङ्गिकुलपरिवृतम् अमरोद्यानमिव............ अतिभयङ्करं सङ्गरमभूत ।।

व्यूढावुभौ तौ विततोरुघोषौ वितेनतुर्विग्रहमाग्रहेण ।
संवर्तनिस्त्री-मसमीरवेगसंघट्टयमानाविव सानुमन्तौ ।

—वरदाम्बिका०पद्य संख्या ३४, पृ० ६२

२. अपवारितपरस्परकलम्लम्पटकुचयुगलान्तरकान्तकेसरकुसममालिकाम् ।

—कासारवर्णन, पृ० १६५

सततसलिलवसतिजनितजडिमहरणकरणतरणिकिरणपरिचरणपरजलमानव-माणवकारोहावरोहस्पन्दितपुरन्दर.... उर्मिसन्ततिम्-कावेरीवर्णनम्, पृ० ६५

अम्भोजभाजनभृतान्यलिनीलरत्नान्यादाय साञ्जलिरनोकहमञ्जरीभिः ।
निस्सीमविभ्रमरसं नृपसार्वभौममासेवितुं समुदारदर्धिभृतूनाम् ।।

-- वही पृ० १४६

३. गृहीतमात्रे युधि चोलभूपे कृपानिधिः श्रीनृसिंहदेवः ।
स तां न्यषेधत्समरात्स्वसेनां सतां प्रसादः सहजो न रोषः ।।

--वही, पृ० ६६

रूपक[1] और उत्प्रेक्षा[2] के आवरण में नई कल्पना का सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। इनके साथ काव्य में प्रयुक्त होने वाले प्रसिद्ध अलङ्कारों उपमा,[3] यमक,[4] परिसंख्या,[5] विरोध,[6] श्लेष,[7] तथा सहोक्ति[8] का भी आश्रय 'वरदाम्बिकापरिणय चम्पू' में लिया गया है। विविध छन्दों का चमत्कार भी उल्लेखनीय है। आर्या, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, रथोद्धता, शालिनी, स्वागता, द्रुतविलम्बिका औपच्छन्दसिक, पुष्पिताग्रा, वंशस्थ, प्रहर्षिणी तथा वसन्त तिलका के साथ मन्दाक्रान्ता तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे दीर्घ छन्दों का भी प्रयोग किया गया है।

---

१. अरविन्दबन्धुरविन्द-विधाने, चपलेन बालशशिना व्यपनीते।
धुसृणं वियन्मधवनीलकरण्डादुगलितं यथा घनमदृश्यत सन्ध्या ।।
— वरदाम्बिका परिणाय चम्पू, पृ० १७३

२. मधुव्रतापादितरेखास्पन्दा मधुश्रीरधुना विभाति।
त्वदागमानन्दविशेषशंसि भुजापरिस्पन्दनमिवोद्वहन्ती ।। वही, पृ० १५६

३. कोपाटोपाच्चोलभूपालको दुष्प्रापानेकपानीकपार्श्वः।
आगाद्द्वेषदप्यमित्रं जिगीषुश्छागैः सार्कं केसरीन्द्रं करीव ।।वही,पृ०६३,पद्य३६

४. तेनेतुलापूरुषदानपूर्वं तेनेह नानाविधबालजातम्।
संख्ये भवन् यद्यपि सूक्ष्मलक्षः स स्थूललक्षोऽपि विशापितेषु ।।वही?पृ०८२,प०५२

५. प्रधनमुक्तपरिवारिता कृपाणेषु, मार्गणपराङ्मुखता तूणेषु, परदूषणाच्छलमायावादनिग्रहस्थानानि शास्त्रमार्गेषु —पृ० २२

६. विलसद्वरवारिधरोऽपि विजृम्भितप्रतापः वितरणोज्ज्वलवृत्तिरप्यवितरणोज्ज्वलवृत्तिः, अवार्नदनोऽप्यनन्तभोगाश्रयः, सर्वज्ञोऽपि सत्यरुचिरराजीत्, पृ०१६

७. संम्प्रत्यहं पुष्पवतीति वातव्याधूतपल्लवकराञ्चितचेष्टितेन।
मा मां स्पृशेति सख्येव निवारयन्ती वासन्तिकामलिका ।। वही

८. उल्लासैः सममधुरुत्सवाः प्रसिद्धिं प्रासीदन् सह महतां मनोभिराशाः।
आशीर्भिस्सममुदगुर्मृदङ्गनादाः काराभिस्सममगलन् कलिप्रकाराः ।।
वही--प० ८८ , श्लोक ६३

६—द्रष्टि

मधुरवाणी और (रघुनाथ कृत आन्ध्ररामायण) उनका रामायण काव्य

(संस्कृत अनुवाद)

नक —

मधुरवाणी कृत रामायण के संस्कृत अनुवाद[1] में १४ सर्ग हैं। प्रथम का प्रारम्भ मधुरवाणी के आश्रयदाता रघुनाथ नायक को विभिन्न देवताओं ा दिये गए आशीर्वादात्मक वचनों से होता है। तत्पश्चात् कवयित्री ने मयूर स इत्यादि प्रसिद्ध कवियों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। इसी सर्ग में रघुनाथ ाजदरबार की वैभव सम्पन्नता और रचना की उत्पत्ति विषयक कथा का भी टीकरण किया गया है। रघुनाथ अपनी 'आन्ध्र रामायण' का संस्कृत अनुवाद ने का अभिलाषी था, अत: वह यह जानना चाहता था कि उसकी राजसभा विदुषीनारियों में कौन संस्कृत और तेलगु रचनाओं को करने में सबसे अधिक ,ण है । एक रात्रि में उसने स्वप्न देखा कि भगवान् राम ने प्रकट होकर कहा इस कार्य में मधुरवाणी ही सबसे अधिक उचित है। दूसरे दिन रघुनाथ ने सभा वप्न सम्बन्धी वृत्तान्त को सुनाया, जिसे मधुरवाणी ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार लिया।

रामायण की कथा की मुख्य सामग्री द्वितीय अङ्क में प्राप्त होती । द्वितीय से चतुर्थ सर्ग में सन्तानोत्पत्ति के लिए इच्छुक, दशरथ याज्ञिक क्रियायें सम्पन्न करते हैं पञ्चम तथा षष्ठ सर्ग में राम तथा अन्य

इण्डियन रिव्यू— फरवरी १९०८

पुत्रों के जन्म तथा बाल्यकाल की लीलाओं का वर्णन मिलता है। राम की सहायता के लिए विश्वामित्र दशरथ से याचना करते हैं -उसी में ताड़काबध एवं अहिल्योद्धार आदि प्रासङ्गिक कथायें भी वर्णित हैं। सप्तम तथा अष्टम सर्ग में राम के द्वारा शिवधनुष का भङ्ग करना, उनका सीता के साथ विवाह तथा परशुराम पराजय आदि मुख्य विषयों का विस्तार किया गया है। नवम तथा दशम सर्ग राम के राज्याभिषेक सम्बन्धी उत्सवों, कैकेयी द्वारा विघ्न उत्पादन, राम वनवास, भरत की राम के वापस लौटाने में असफलता आदि का चित्रण करते हैं। एकादश में शूर्पणखा की सौन्दर्य हानि के बाद सीताहरण की कथा आती है। द्वादश सर्ग में सीता के अन्वेषण में तत्पर राम की सुग्रीव के साथ मित्रता तथा बालि वध का उल्लेख उपलब्ध होता है। त्रयोदश तथा चतुर्दश सर्ग सुग्रीव तथा उनके अन्य मित्रों द्वारा सीता को ढूंढना तथा हनुमान के द्वारा सीता का पता लगाना -आदि वर्णित है।

प्रस्तुत रचना की हस्तलिखित प्रति अपूर्ण है और उसमें १४ सर्गों में १५०० श्लोक प्राप्त होते हैं। अत: इसमें रामायण की प्रसिद्ध कथा का कुछ अंश हस्तगत नहीं होता है।

मधुरवाणी द्वारा अनुदित संस्कृत रामायण आज उपलब्ध नहीं होती है -केवल एक पत्रिका[१] के आधार पर ही उनके विषय में कुछ शब्द कहे जा सकते हैं।

सम्भवत: कवयित्री मैसूर प्रान्त की निवासिनी थी। उनकी रचनामेंकहीं भी उनके पितृवंश का उल्लेख नहीं मिलता है। केवल इतना ज्ञात होता है कि वे विज्ञ परिवार से सम्बन्धित थीं। मधुरवाणी सङ्गीत तथा इसी प्रकार की अन्य कलाओं में दक्ष थीं -यही कारण था कि वे सङ्गीत एवं साहित्य के ज्ञाता रघुनाथ द्वारा आश्रय-प्राप्त कर सकीं। ऐसा कहा जाता

---

१. इण्डियन रिव्यू, फरवरी १९०८ ई०

है कि वे विभिन्न चम्पू काव्यों की रचयित्री थीं, जो कि ध्वनि (उत्तम काव्य) तथा अन्य गुणों में नैषध काव्य तथा कुमारसम्भव से तुलना करने योग्य थे ।

यहाँ यह दृष्टव्य है कि मध्यकालीन (१७ वीं शती) दक्षिण भारत के समाज में उच्च स्त्री शिक्षा का प्रचार था । रामभद्राम्बा, मधुरवाणी तथा अन्य[१] कवयित्रियों ने रघुनाथ भूप की राजसभा को सुशोभित किया, दूसरी और गङ्गादेवी और तिरुमलाम्बा ने इसी काल में अपनी श्रेष्ठ कृतियों द्वारा संस्कृत साहित्य में योगदान किया ।

---

१. रघुनाथाभ्युदय -(रामभद्राम्बा) के एकादश तथा द्वादश सर्गों द्वारा रघुनाथ की सभा की नारियों के विशिष्ट गुणों सङ्गीत,नृत्यादि का परिचय मिलता है ।

मधुरवाणी ने अपने रामायण काव्य में भी उनका सङ्केत किया है

विपञ्चिकायां चतुराः प्रगल्भाः, शास्त्रेऽतिदक्षाः सरसप्रबन्धे ।
समीपमेतस्य समेत्य कोऽपि, सुभ्रूजनाः स्वस्वकलाः व्यवृण्वन् ।(१।७८
सर्वोत्तर-स्वादिम-संस्कृतान्ध्र-प्रबन्धनिर्माण-पचेलिमानि ।
यशांसि भूयांस्यवतारयन्त्यः सहस्रशः सन्ति सरोजनेत्राः (१।८२)

रामभद्राम्बा द्वारा रचित रघुनाथाभ्युदयम्

कथानक तथा आलोचनात्मक अध्ययन

रामभद्राम्बा और उनका रघुनाथाभ्युदयम् (महाकाव्य)

रामभद्राम्बा नायक भूप रघुनाथ के दरबार की प्रसिद्ध कवयित्री थीं । उन्होंने रघुनाथाभ्युदयम्[१] नामक ऐतिहासिक कृति की रचना की ।

रघुनाथाभ्युदय बारह सर्गों का एक महाकाव्य है । इसमें रामभद्राम्बा ने अपने आश्रयदाता के जीवन चरित का विप्लवकारी विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है ।

कथानक--

रघुनाथाभ्युदयम् के प्रथम सर्ग में ताम्रपर्णी तथा कावेरी नदियों से सुसज्जित चोल देश का चित्र अङ्कित किया गया है । पशु, पक्षियों के अतिरिक्त पुष्प एवं फलों से मण्डित वृक्षों की ओर भी कवयित्री ने अपना ध्यान आकृष्ट किया है । पवित्रात्मा चोल जाति के मनुष्यों तथा याज्ञिक विधि विधान में प्रवीण ब्राह्मणों का भी दिग्दर्शन कराया गया है । इसी सर्ग में

---

१. रघुनाथाभ्युदयम् --रामभद्राम्बा (एक ऐतिहासिक काव्य) श्री टी०आर० चिन्तामणि द्वारा मद्रास विश्ववि० से प्रकाशित १९३४ ई०

रघुनाथ द्वारा लिखित अनेक कृतियों का भी उल्लेख किया गया है।

द्वितीय सर्ग में चोल की राजधानी तञ्जौर (तञ्जा नगरी) के वैभव को चित्रित किया गया है। विविध पर्वतों एवं विशाल हस्तियों के वैभव से पूर्ण, समुद्र से घिरी हुयी, सुन्दर कमलों के कारण आकर्षक , सुसज्जित प्रासादों से युक्त तञ्जा नगरी की शोभा अनुपम है। रघुनाथ एक शासक के रूप में प्रशंसा के पात्र हैं। रामभद्राम्बा ने प्रजा की सम्पन्नता और शासक की प्रभुसत्ता का उल्लेख विशेषत: किया है।

तृतीय सर्ग में महाकाव्य के नायक रघुनाथ की व्यक्तिगत विशेषताओं को उद्धृत किया गया है।

चतुर्थ सर्ग में नायक की दिनचर्या के अन्तर्गत प्रात:कालीन कर्तव्यों, स्नान, मन्त्रोच्चारण तथा सूर्यदेव को दी गयी श्रद्धांजलि आदि के पश्चात् सुसज्जित भवन `काम विलास` में जाकर भगवान् रामचन्द्र को प्रणाम करके , रघुनाथ द्वारा किये गये रामायण पाठ का वर्णन किया गया है।

पञ्चम सर्ग के प्रारम्भ में भी चतुर्थ सर्ग की भाँति ही विषय ग्रहण किया गया है, तत्पश्चात् रघुनाथ की राजसभा में भारत के विभिन्न प्रदेशों --केरल, अङ्ग, मगध, मालव, कलिङ्ग , गौड़ आरट्ट आदि से आने वाले महान् --दार्शनिकों, व्याकरणशास्त्र के ज्ञाताओं, कवियों गायकों तथा स्वयं शासक द्वारा सिखायी गयी नृत्य कला में प्रवीण नारियों का उद्धरण दिया गया है।

षष्ठ अध्याय में रघुनाथ के पितृ वंश का क्रमश: उल्लेख किया गया है। राजा के पूर्वजों में से किन्हीं एक का नाम तिम्मथा, उनकी रानी बय्यमाम्बा थीं। उन दोनों का पुत्र चेव्व नाम से संसार में विख्यात हुआ। उन्होंने वृद्धचलम् में तिरुवन्नमलई के देवता के लिए गोपुर का निर्माण कराया। साथ ही उनके आदेशानुसार श्रीशैल के मन्दिर में एक गोपुर(कावेरी नदी के किनारे पर) , एक ध्वज स्तम्भ, सीढ़ियाँ तथा बाहरी दीवार भी बनी थी।

उन्होंने अनेक मन्दिरों को बनवाकर, अनेक अग्रहारों के लिए स्थायी प्रबन्ध करवाया। चैव्व की रानी मूर्त्यम्बा, अच्युतराय की बहन थीं। मूर्त्यम्बा और चैव्व के द्वारा कुमार अच्युत का जन्म हुआ। अपने पिता की भाँति अच्युत ने भी विविध मन्दिरों का निर्माण कराया। श्रीरङ्गम् में स्थित मन्दिर, श्रीरङ्गनाथ के पवित्र स्थान में स्वर्ण विमान की स्थापना कराने वाले, अच्युत ही थे। रामेश्वर के लिए उन्होंने अनेक दान प्रदान किये थे। अनेक प्रकार के दानों के अन्तर्गत तुलापुरुष दान की क्रिया के अतिरिक्त विविध अग्रहार भी उनके द्वारा सम्पन्न किये गये थे। पुन: अच्युत की रानी भी मूर्त्यम्बिका के नाम से प्रसिद्ध हुयीं। दीर्घकाल तक वे दोनों नि:सन्तान थे किन्तु तपस्या के पश्चात् उन्होंने एक अनुपम महत्ता से पूर्ण रघुनाथ नाम के पुत्र का लाभ किया, जो कि प्रस्तुत महाकाव्य का नायक है। रघुनाथ का जन्म शुभ सूचक लक्षणों से समन्वित था।

सप्तम सर्ग के आरम्भ में रघुनाथ नायक के वैयक्तिक सौन्दर्य का विस्त पूर्वक वर्णन किया गया है। अच्युत ने रघुनाथ का विवाह पाण्ड्य शासक की पुत्री के साथ निष्पन्न कर दिया और उसे युवराज बनाने की अभिलाषा व्यक्त की। यह प्रस्ताव सभी मन्त्रियों तथा अन्य पदाधिकारियों द्वारा स्वीकृत कर दिया गया और रघुनाथ का यौवराज्याभिषेक किया गया।

किन्तु इस समय तक वेङ्कटदेवराय पारसी-कों के साथ युद्ध करने में संलग्न थे, वहाँ वे कर्णाट प्रदेश को यवनों से सुरक्षित रख पाने में असमर्थ हो गये थे अत: उन्होंने अच्युत से रघुनाथ नायक को वहाँ भेजने की प्रार्थना की। अच्युत स्वयं विशाल सेना तथा धनराशि से युक्त होकर युद्धस्थान में जाने को इच्छुक था, किन्तु वेङ्कटदेवराय ने यवनों की शक्ति को ध्वस्त करने के लिए युवराज को बुलाना ही उचित समझा। अन्त में अच्युत ने महती सेना के साथ रघुनाथ को प्रेषित किया। रघुनाथ ने पहले चन्द्रगिरि की ओर प्रस्थान किया, और उसके बाद कर्णाट प्रदेश की राज-धानी पेनुगोण्ड की ओर बढ़ा। कर्णाट देश के शत्रुओं ने जब यह सुना कि शासक की रक्षा के हेतु रघुनाथ का आगमन हो

गया है, तो वे भयभीत हो उठे, उनमें से कुछ तो भाग खड़े हुए, किन्तु कुछ अपने स्थान पर दृढ़ रहे । बल्लालपुर में मुरस जाति के लोगों तथा अन्य विरोधियों को ... पराजित करके रघुनाथ ने कर्णाट की रक्षा की ।

वेङ्कट की राजसभा में रघुनाथ को यह ज्ञात हुआ कि तुण्डीर प्रदेश का शासक कृष्णाप नायक, वेङ्कट के आदेशानुसार कारागृह में पड़ा हुआ अनेक यातनाओंको सहन कर रहा था । रघुनाथ ने उसे मुक्त कर दिया, जिसके आभार के रूप में कृष्णाप ने अपनी बहन का विवाह रघुनाथ के साथ कर दिया । प्रसन्न-चित्त से नव-विवाहिता पत्नी सहित रघुनाथ अपनी राजधानी की ओर लौटे । अच्युत भी अपने पुत्र के आगमन की सूचना पाकर, उसे लेने के लिए कुछ दूर तक चल कर गये ।

सप्तमसर्ग का कथानक युद्ध सम्बन्धी ऐतिहासिक तत्त्वों से पूर्ण है । एक दिन जब रघुनाथ नायक अपनी सभा में आसीन थे, उसी समय एक चोलग के दुर्व्यवहार से पीड़ित हुए कुछ ब्राह्मणों ने रघुनाथ से रक्षा की प्रार्थना की । वह दुष्ट चोलग साधारण मनुष्यों द्वारा वश में नहीं किया जा सकता था क्योंकि उनके ऊपर भैरव की दया थी । वह चोलग रावण की भांति अपने समीपवर्ती भी पुरुषों को त्रस्त करता रहता था, वह युवती नारियों के अपहरणादि दुष्कृत्यों द्वारा सभी को भयभीत करता था । उसी समय, नैपाल के राजा भी अपने सम्ब-न्धियों के सहित रघुनाथ की प्रतीक्षा कर रहे थे । जब उन्होंने राजसभा में प्रवेश करके यह वार्ता सुनायी कि उनके पूर्वज भी रघुनाथ के पूर्वजों के आभारी थे । पारङ्गीजनों ने नैपाल के द्वीप में प्रवेश कर दिया है — नैपाल के शासक और पारङ्गी लोगों के बीच वही शत्रुता का मुख्य कारण है । उन्होंने अनुचित उपायों से नैपाल के राजा के देश को घेर लिया है । तत्पश्चात् उन्होंने पारङ्गीजनों को भगाने में रघुनाथ की सहायता के लिए प्रार्थना की । रघुनाथ ने पुनः राज्य प्राप्ति हेतु नैपाल के राजा को सहायता के लिए आश्वासन दिया । जिस समय उन दोनों में वार्तालाप चल रहा था, उसी समय कर्णाट के शासक द्वारा भेजे गये कुछ ब्राह्मण आवश्यक सूचना लेकर आ पहुँचे उन्होंने रघुनाथ को बताया कि वेङ्कटराय की मृत्यु

के पश्चात् उसका पुत्र श्रीरङ्गनाथ राजा बना दिया गया । चूँकि जग्गाराय सम्राट के विरुद्ध था, अत: एक रात्रि में उसने अपने अनुज के साथ राजभवन में प्रवेश करके स्त्री बच्चों सहित उसके सम्पूर्ण परिवार की हत्या कर दी । एक धोबी ने प्रयास करके उसके एक छोटे बच्चेको किसी प्रकार से बचा लिया । मृत राजा के कुछ अनुयायी जग्गाराय के विरुद्ध विद्रोह करना चाहते थे । अत: वे रघुनाथ की सहायता के लिए राजदरबार में उपस्थित हुए थे । राजा ने उन्हें भी सहायता का वचन दिया और अत्यधिक तैयारी के साथ एक साथ चौलग, पारङ्गीजन तथा जग्गाराय के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रस्थान किया । रघुनाथ से भयभीत हुए चौलग ने कृष्णाप से सहायता के लिए याचना की । यद्यपि कृष्णाप के मन्त्रियों ने उसे परामर्श किया कि वह चौलग का साथ न दे क्योंकि वेङ्कटदेवराय के कारावास से मुक्ति दिलाने के लिए रघुनाथ ही उत्तरदायी था । किन्तु फिर भी कृष्णाप ने चौलग की सहायता की । चौलग ने समुद्र में एक द्वीप के अन्दर अपने को सुरक्षित समझा, किन्तु रघुनाथ ने एक पुल बनाकर, समुद्रपार करके, चौलग को हराया और बन्दी बना लिया । चौलग के रनिवास में रहने वाली स्त्रियों की चौलग द्वारा जीवन रक्षा की प्रार्थना करने पर उसने उसे मृत्यु दण्ड नहीं दिया किन्तु अपने कारागृह में रक्खा । चौलग की दुर्गति को देखकर कृष्णाप ने युद्धस्थल से पलायन कर दिया ।

नवम सर्ग में चौलग के पूर्णत: दब जाने पर, नेपाल के राजा ने रघुनाथ को अपनी कठिनाइयों की याद दिलाई । रघुनाथ ने तत्क्षण उस राज्य की ओर प्रस्थान करके, नौका द्वारा बने हुए पुल के माध्यम से समुद्र को पार करने के पश्चात् पारङ्गीजनों को समाप्त कर दिया और नेपाल के राजा का खोया हुआ शासन उसे पुन: प्रदान कर दिया ।

उसी समय भूपति के गुप्तचरों ने आकर यह सूचना दी कि पश्चिम में पाण्ड्य और तुण्डीर शासकों ने एक साथ मिलकर रघुनाथ के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया है । यह सुनकर रघुनाथ उन दोनों का सामना करने के लिए युद्धार्थ वीर पहुँचा ।

दशम सर्ग युद्ध तथा उसके भयङ्कर परिणाम की कथा से समन्वित है। पाण्ड्य तथा अन्य जनों की सम्मिलित सेना युद्ध में बुरी तरह पराजित हो गयी। सैनिक अपनी जीवन की रक्षा के हेतु भाग खड़े हुए। जग्गाराय भी दृश्य में उपस्थित हुआ। पराजित हो जाने पर वह अपने अनुयायियों सहित मार डाला गया। जग्गाराय की मृत्यु हो जाने पर पाण्ड्य और तुण्डीर के शासक भी रणस्थल से भाग खड़े हुए। राविल वेङ्कट और माकराज ने क्रमशः उनका अनुगमन किया। रायदल्वायि- कच्च भी राजाओं के शवों को देखकर युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ। पाण्ड्य शासक भी उसी समय पकड़ा गया था, किन्तु बाद में रघुनाथ के हीनता पूर्ण स्वभाव के द्वारा मुक्त कर दिया गया। तुण्डीर के शासक ने भी एक बार रघुनाथ से पराजित होकर, पुनः सेना सज्जित की और रघुनाथ के विरुद्ध युद्ध प्रारम्भ किया। रघुनाथ ने राजप्रतिनिधियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर, तुण्डीर शासक कृष्णाप के विरुद्ध एक सेना भेजी। जिस समय रघुनाथ ने कावेरी नदी के तट पर स्थित तिरुवैयार की ओर गमन किया, उसी समय उनकी सेना ने भुवनगिरि आदि अन्य स्थानों को हस्तगत करके अन्त में विजय प्राप्त करने पर कृष्णा को बन्दी बना लिया।

एकादश सर्ग में किसी विशेष कथा को नहीं लिया गया है। विजयी शासक रघुनाथ के आने पर तञ्जापुरी को भली भाँति सज्जित किया गया था। इस कार्य में स्त्रियों का विशेष महत्त्व था क्योंकि रघुनाथ की सभा अनेक विदुषी नारियाँ थी। वे विविध भाषाओं में रचना करने में समर्थ थीं, वे अधूरे पद्यों को पूर्ण कर सकती थीं, इतना ही नहीं वे एक घटिका में सैकड़ों पद्यों का निर्माण करने योग्य थीं। उनमें से कुछ तो अष्ट-भाषाओं की ज्ञात्री थीं। कुछ नारियाँ तो वैशेषिक तथा व्याकरण शास्त्र जैसे गूढ़ विषयों की मर्मज्ञा थीं, साथ ही कुछ विदुषियाँ सामयिक कवियों की कृतियों पर टीका टिप्पणी करने के योग्य थी। अधिकांशतः एकादश सर्ग में तञ्जोर की नारियों की विद्वता का वर्णन किया गया है।

द्वादश अथवा अन्तिम सर्ग में भी नाट्य अभिनय तथा नृत्य एवं गायन कला में निपुण अनेक नारियों का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें सङ्गीत से

सम्बन्धित विविध रागों तथा नृत्य के अन्तर्गत आने वाली तालों आदि की गणना करायी गयी है ।

रघुनाथाभ्युदय की ऐतिहासिक सामग्री —

चूंकि रघुनाथाभ्युदय का कथानक एवं नायक (नेता) इतिहास से सम्बन्ध रखता है अत: प्रस्तुत महाकाव्य में अनेक ऐतिहासिक तत्त्व विद्यमान हैं ।

रघुनाथाभ्युदय के छठें सर्ग में रघुनाथ के पूर्वजों का वर्णन किया गया है । तिम्म-बय्यमाम्बा, चैव्व-मूर्त्त्यम्बा प्रथम, अच्युत-मूर्त्त्यम्बा द्वितीय-तत्पश्चात् उसी वंश में अच्युत और मूर्त्याम्बा द्वारा रघुनाथ का जन्म हुआ ।

ऐतिहासिक घटनाओं की दृष्टि से सप्तम सर्ग महत्त्वपूर्ण है । पाण्ड्यनरेश की पुत्रियों के साथ रघुनाथ ने विवाह किया किन्तु इनका नामोल्लेख नहीं किया गया है । जब म्लेच्छ शासकों ने कर्णाट (विजयनगर) पर आक्रमण किया, तो वेङ्कटदेवराय ने रघुनाथ से सहायतार्थ प्रार्थना की । रघुनाथ के पिता (अच्युत) की इच्छा उसे भेजने की न थी, किन्तु वेङ्कटदेवराय के आग्रह पर उन्होंने अनुमति दे दी । उन्होंने बल्लालपुर में विश्राम ग्रहण किया । रघुनाथ ने वेङ्कटदेवराय द्वारा बन्दी गृह में डाले गये, तुण्डीर के कृष्णापनायक को मुक्त किया अत: कृतज्ञ होकर कृष्णाप ने अपनी भगिनी का विवाह रघुनाथ के साथ कर दिया ।

अष्टम सर्ग में भी कुछ ऐतिहासिक तत्त्व उपलब्ध होते हैं । चोलग द्वारा पीडित ब्राह्मणों को रघुनाथ ने कुछ सामग्री प्रदान की, इसके अतिरिक्त पारङ्गी जनों के विरुद्ध नेपाल के राजा तथा जग्गाराय के विरुद्ध कर्णाट के राजा वेङ्कटेश्वर के पुत्र, श्रीरङ्गराय की भी सहायता की । रघुनाथ से भयभीत हुए, चोलग ने रघुनाथ के बहनोई कृष्णाप की शरण ली —यद्यपि उसके

मन्त्रियों ने उसे इस कार्य के लिए रोका, किन्तु कृष्णप ने उनकी एक न सुनी । एक द्वीप में चोलग के पकड़े जाने तथा बन्दी बनाये जाने की सूचना पाकर, कृष्णप कायर की भांति युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ ।

रघुनाथ ने पारङ्गीजनों को भगाकर नेपाल के राजा को उनका राज्य दे दिया —जैसा कि नवें सर्ग से ज्ञात होता है । पुन: पश्चिमी प्रदेशों के विद्रोही शासकों पाण्ड्य, तुण्डीर आदि को नष्ट करने के लिए रघुनाथ तोपुर (ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित) में उनसे मिला ।

दशम सर्ग के द्वारा रघुनाथ की विद्रोही पाण्ड्य नरेश, तुण्डीर के शासक आदि पर विजय की सूचना मिलती है । जग्गाराय की युद्धस्थल में ही मृत्यु हो गयी । राविल्लवेङ्क, माकराजराय, दल्वायिकञ्च, शाकभूरू ये सभी रणक्षेत्र से पलायन कर गये । पाण्ड्यराजा, जिसे रघुनाथ ने पकड़ लिया था, दयालुता के कारण छोड़ दिया गया । कृष्णप; इस बीच पुन: उत्पात करने लगा था, अत: एक विशाल सेना सहित रघुनाथ ने भुवनगिरि को घेरकर कृष्णप को पराजित करके बन्दी बना लिया ।

अगले सर्ग में केवल तञ्जापुरी (तञ्जोर) ही मुख्य नगरी रूप में वर्णित है ।

रघुनाथ के समय में तञ्जोर के ऐतिहासिक विवरण, तथा रघुनाथ के व्यक्तिगत उन्नति विषयक कार्य कलापों एवं उनके पूर्वजों के विशिष्ट कार्यों के उल्लेख की दृष्टि से रघुनाथाभ्युदय का महत्त्व है ।[१] जिन ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना, प्रस्तुत कृति में दी गयी है —वे सभी रघुनाथ के समय में रचे गये

---

१. संस्कृत पोयटेसेज़, भाग २, पृ० ५०, प्राच्यवाणी, कलकत्ता, १९४०

ग्रन्थों - गोविन्ददीक्षित के पुत्र यज्ञनारायण द्वारा लिखित साहित्यरत्नाकर[१], रघुनाथभूप विजय तथा रघुनाथ विलास नाटक[२] आदि में भी प्राप्त होती है -

रत्नखेट दीक्षित के पुत्र, राजचूडामणि दीक्षित की कृतियों, रुक्मिणी कल्याण,[३] कमलिनी कलहंस,[४] रत्नखेट विजय,[५] शंकराभ्युदय,आनन्दराघव[५] और काव्यदर्पण[६] में भी रघुनाथ के शासन सम्बन्धी घटनाओं की ओर सङ्केत किया गया है। रघुनाथ भूप तथा उनके पिता अच्युत, दोनों के ही मन्त्री गोविन्ददीक्षित ने भी अपनी रचनाओं हरिवंशसारचरित, और साहित्य सुधा में अपने स्वामियों के विशिष्ट गुणों का उल्लेख कराया है। स्वयं रघुनाथ ने अपने ग्रन्थों सङ्गीतसुधा,[७] महाभारत सङ्ग्रह,[८] रामायण सार सङ्ग्रह,[९] तथा

---

१. हस्तलिखित प्रति ४२२१ (पूर्ण) और ४२२२ (केवल दशम सर्ग तक) तन्जौर महाराजा सरफोजी सरस्वती महल पुस्तकालय, यज्ञनारायण दीक्षित ने रघुनाथ के लिए लिखा है - जलनिधि-गर्भवास-वश-निर्भर-दर्परिपु-
प्रतिहति-हेतु-सेतु-कृति-नूतनदाशरथे।

२. कवि बुद्ध गायकाभिमत-कल्पन-कल्पतरो-
जय करुणा-सनाथ-रघुनाथजनाधिपते ।।

२. सरस्वती महल पुस्तकालय, मूल प्रति संख्या ४४८६.

३. रुक्मिणी कल्याण- राजचूडामणि दीक्षित- अडियार लाइब्रेरी, १९२९

४. श्रीरङ्गम् से प्रकाशित वाणीविलास प्रेस-
धीर श्रीचिनचव्वाच्युतधराधौरेभाग्योत्रतो।
राज्यं श्रीरघुनाथ-नायक-विभो रज्येत् सदस्संसमाः ।।

५. हस्तलिखित प्रति संख्या १२४८५- मद्रास ओरियण्टल पुस्तकालय

६. मूलप्रति मद्रास पुस्तकालय में उपलब्ध है।

७. मूलप्रति राजकीय ओरियण्टल हस्तलिखित प्रति सङ्ग्रहालय सूची लेखक - क्रम, पृ ६४

८. जो कि महाभारत सार सङ्ग्रह तथा भारत सङ्ग्रह नाम से भी प्रसिद्ध है।

९. सरस्वती महल पुस्तकालय तञ्जौर हस्तलिखित प्रतिसंख्या ८६७६ तथा ८६७७

. सरस्वती महल पुस्तकालय - मूल प्रति संख्या ६४६७ तथा ६४६८

कुमार ताताचार्य ने पारिजातहरण नाटक[1] और भास्कर दीक्षित ने आत्म-परीक्षा[2] में तञ्जौर के नायक शासक (रघुनाथ) से सम्बन्धित विशिष्ट घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया गया है ।

रघुनाथाभ्युदय एक महाकाव्य--

रामभद्राम्बा कृत रघुनाथाभ्युदय महाकाव्योचित गुणों से मण्डित है । महाकाव्य के कुछ प्रधान गुण इस प्रकार है --महाकाव्य सर्ग बन्ध होता है उसमें एक ही नायक का चरित चित्रित किया जाता है । यह नायक चाहे कोई देव विशेष हो,[3] या प्रख्यात राजवंश का राजा हो, ऐसा हुआ करता है जिसमें 'धीरोदात्त' नायक के गुण विद्यमान रहा करते हैं । किसी किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न, अनेकों कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखायी जाती है ।[4] शृङ्गार , वीर और शान्त में से एक प्रधान रस हो तथा अन्य रस 'अप्रधान' रूप में अभिव्यक्त किये जा सकते हैं । नाटक की सभी सन्धियां महाकाव्य में आवश्यक मानी गयी हैं ।[5] कोई भी ऐतिहासिक

---

१. सरस्वती महल पुस्तकालय, हस्तलिखित प्रति संख्या--४३८१ तथा ४३८२

२. सरस्वती महल पुस्तकालय, तञ्जौर मूल प्रति संख्या --७५२५

३. सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।

—साहित्यदर्पण ६।३१५ शशिकला टीका,१९५७

४. सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोधात्त गुणान्वितः ।
एक वंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।। ६।३१६

वही --६।३१६

५. शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रसइष्यते ।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः ।। ~~६-३१~~

— ६।३१७

अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोक प्रसिद्ध इतिवृत्त महाकाव्य में वर्णित किया जा सकता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप पुरुषार्थ-चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण करके उनमें से परम फल के रूप में किसी एक की प्राप्ति का उपनिबन्धन होना चाहिए।[१]

महाकाव्य का आरम्भ मङ्गलाचरण से होता है जो कि नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक रूप में रहता है। किसी किसी महाकाव्य में खलनिन्दा तथा सत्प्रशंसा भी निबद्ध रहा करती है।[२] प्रत्येक सर्ग में किसी एक वृत्त में बद्ध पद्य रचे जाया करते हैं और प्रत्येक सर्गान्त में, उस छन्द को छोड़कर अन्य छन्द में पद्य रचना की जाया करती है। आठ सर्ग से कम सर्ग महाकाव्य में नहीं हुआ करते और यह सर्ग भी ऐसा हुआ करते हैं जो कि न बहुत छोटे हों और न बहुत बड़े।[३]

महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, पर्वत, ऋतु, सम्भोग, विप्रयोग, नगर, सङ्ग्राम, यात्रा, विवाह, पुत्रजन्म आदि का भी वर्णन किया जाता है।[४] महाकाव्य का नामकरण कवि के नाम पर, वर्ण्य चरित के आधार पर नायक के नाम के अनुसार अथवा किसी अन्य आधार पर किया करता है।[५]

---

१. इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥ -साहित्यदर्पण, ६।३१८

२. आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥ वही, ६।३१९

३. एक-वृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥ वही ६।३२०

४. साहित्यदर्पण ६।३२२,३२३

५. वर्णनीया यथायोग्यं साङ्गोपाङ्गा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥ ६।३२४

इसी प्रकार महाकाव्य सम्बन्धी गुणों का रघुनाथाभ्युदय में क्रमश: दर्शन होता है। रघुनाथाभ्युदय एक सर्ग बद्ध रचना है। इसका नायक प्रख्यात राजवंश (तञ्जौर के नायक) का राजा है। जिसमें धीरोदात्त नायक के आत्मश्लाघा की भावनाओं से रहित, क्षमाशील अतिगम्भीर, दु:ख सुख में प्रकृतिस्थ, स्वभावत: स्थिर और स्वाभाविक रूप से स्वाभिमानी किन्तु विनयशील सभी गुण विद्यमान हैं।[१]

शृङ्गार, वीर, शान्त में से प्रस्तुत महाकाव्य में वीर रस अङ्गी है तथा शृङ्गार उसके अङ्गरूप में चित्रित किया गया है। नाटक की सभी सन्धियाँ भी इसमें उपलब्ध होती हैं। रघुनाथाभ्युदय का इतिवृत्त ऐतिहासिक है। इसमें पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म, अर्थ, काम तीनों की प्राप्ति का यथा सम्भव प्रयास किया गया है। एक चरित काव्य की दृष्टि से इसमें सभी का समावेश कराना उचित ही प्रतीत होता है। रघुनाथाभ्युदय में वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण[२] का प्रयोग किया है। आरम्भिक पद्य में ही महाकाव्य के नायक का नाम निर्देश किया गया है। कवयित्री ने छन्दोबद्धता के समय भी महाकाव्योचित नियमों का पालन किया है। महाकाव्य में बारह सर्ग हैं जो कि कथानक के अनुरूप ही है।

रघुनाथाभ्युदय में पशु-पक्षियों, फल-फूल, वृक्षादि, ताम्रपर्णी तथा कावेरी नदियों, तञ्जानगरी तथा राजसभा एवं यात्रा का, तञ्जौर की नारियों से समन्वित रघुनाथ की काम-क्रीडा का वर्णन भी औचित्य पूर्ण है। रामभद्राम्बा ने अपने काव्य का नामकरण नायक की विजय के आधार पर किया है। सम्पूर्ण कृति में रघुनाथ के द्वारा की गयी विभिन्न प्रदेशों के

---

१ अविकत्थन: क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्व: ।
 स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रत: कथित: ।। साहित्यदर्पण ३।३२

२. आनन्दितो भूमितले हरीशविभीषणौ येन विशिष्यतात्याम् ।
 नाम्ना च भक्त्या रघुनाथनेतुर्भद्राणि कुर्वीत स रामभद्र: ।।
 —रघुनाथाभ्युदय १।१

अभ्युदय का कथानक मुख्य होने के कारण `रघुनाथाभ्युदयम्` नामकरण भी उचित है ।

रामभद्राम्बा की भाषा शैली (रीति)

संस्कृत काव्यों में रीति अथवा विशिष्ट पदरचना को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया गया है । `रीति` का अभिप्राय माधुर्यादि गुण के अभिव्यञ्जक पदविन्यास का अभिप्राय है । रीति तत्त्व के सम्बन्ध में महाकवि राजशेखर ने कहा है —

` रीति ही वह काव्य तत्त्व है जिसमें रस प्रवाह का सामर्थ्य रहा करता है । शब्द और अर्थ रसात्मक काव्य रूप काव्य के `अङ्ग` रूप हैं और शब्दार्थ सङ्घटना अथवा रीति काव्य का शरीर संस्थान है जिसमें `रस` रूप आत्मतत्त्व का स्फुरण सम्भव है ।`[१]

काव्य प्रकाशकार ने वैदर्भी का नामोल्लेख तो नहीं किया, किन्तु माधुर्य के अभिव्यञ्जक के साधन रूप से असमासा तथा अल्पसमासा मधुर `घटना`[२] को अवश्य माना है ।

किन्तु कविराज विश्वनाथ ने इसी `घटना` को `वैदर्भी रीति`[३] के नाम से स्पष्ट निर्दिष्ट किया है ।

---

१. सति वक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने ।
अस्ति तन्न विना येन परिस्रवति वाङ्मधु ।।

२. मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।। काव्यप्रकाश अष्टम उल्लास

३. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरचना ललितात्मिका ।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।।

—साहित्यदर्पण ६।२

रामभद्राम्बा ने अपनी कृति में सर्वत्र इसी वैदर्भी रीति[1] को स्वीकार किया है। यही कारण है कि उन्होंने ललित पदों[2] द्वारा माधुर्य की अभिव्यञ्जना[3] करायी है ।

कवयित्री ने कहीं कहीं पर तो समासों का प्रयोग[4] ही नहीं किया है और जहां किया भी है वे स्थल दीर्घ समस्त पदावली[5] से समन्वित होने पर भी बोधगम्य[6] हैं।

रघुनाथाभ्युदय में प्रसाद गुण की व्यंजना विशेष रूप से करायी गयी है। काव्य प्रकाशकार के अनुसार प्रसाद गुण का अभिव्य जन करने वाली घटना `कोई पृथक् घटना नहीं है क्योंकि प्रसाद गुण समस्त प्रकार की संघटना का गुण है। उन्हीं के मतानुयायी साहित्यदर्पणकार भी यही

---

१. रङ्गस्थले यत्र रसोत्तरङ्गं सङ्गीतमभ्यां सततं नटन्त्याम् ।
रसालवेला रसिका विलोक्य मुक्ताभिषेकं मुहुराचरन्ति ।।
—रघु० १।३२

२. मणिविभूषा महिला मनोज्ञा धनाधिवासा बल्वस्तदीया ।
वशी भवन्भूवलशासनस्य संप्रापिता भृत्यगणेन सद्य: ।। रघु० ८।६५

३. अपूर्वशृङ्गाररसानुभूतिमाधदाते ते रुचिराङ्गकानि ।
आलोच्यमाणो रमणात्र हैमसमागम: सम्प्रतिचन्द्रिकाया: ।।
—रघु०१२ । ४७

४. सतीगुणानां वसति: सतीव वाणीव जगत्प्रतीता ।
मूर्त्याम्बिका शोभनभूतिरस्य भार्या भवद्भव्यतरस्वकर्या ।।
—रघु ० ६।२०

५. तदनन्तरं धरणिपाकशासनो विजयानुकूलशुभवेषभासुर: ।
सपया नैकविधदानसंततिप्रतिपादितावनि सुरप्रमोदन: ।।रघु० ८।५१
अष्टादशद्वीपतलावनीपसदोपहारीकृतवस्तुजातम् ।
अशेषदेवायतनाग्रहारनित्यप्रतिष्ठापनविघ्नवर्यम् ।। रघु०।६।३६
पारंपर्यद्विजपालिनित्यमृष्टान्नदानार्जितपुण्य-राशिम् ।
अशेषभाषासमनुप्रक्लृप्तकवित्वदीव्यद्धरिकाप्रबन्धम् ।।६।३७ वही
....
अपारकल्याणगुणापदेशमणिगणावासमहाम्बुराशिम् ।। [illegible] ,वही,६।३६

६. ...... विश्वत्रयी विश्रुतबाहुधामा रामावतारो रघुनाथ भूप:।।वही ३।१

मानते हैं कि प्रसाद गुण सभी रसों और सभी रचनाओं में विद्यमान है ।[१]

रामभद्राम्बा की कृति में पदलालित्य दर्शनीय है । प्रथम सर्ग के कुछ पद्यों में (सह्यात्मजापुर) इसका आधिक्य[२] है । काव्य के अध्ययन करते समय सहृदय का ध्यान रमणीय पदावली[३] की ओर स्वयं ही आकृष्ट हो जाता है

---

१. स प्रसाद: समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।
शब्दास्तद्व्यञ्जका: अर्थबोधका श्रुतिमात्रत: ।।
—साहित्यदर्पण ८।८

२. अस्ति प्रभावैरतिमाननीया वीलावनी शालवनी निवोला ।
सह्यात्मजापुरसरत्समीर संपर्कपुण्या जनता-शरण्या ।। रघु० १।११

तटानिलानीततरुप्रसूनान्याशङ्क्य बाणानसमायुधीयान्
सरित्पति: सह्यसुतां तरङ्गैरालिङ्गय यस्यां रमतेऽनुवेलम् ।।१।१४

रसालमाध्वीरससारणीभि: केदारके यत्र कृताम्बुसेकै: ।
सह्यात्मजाया: सततं वहन्त्या फलं क्वाथै: परिम्म एव ।। रघु० १।२३

परागजालानि विकीर्य यस्यां गन्धद्विपे गच्छति गन्धवाहे ।
सह्यात्मजा तच्चरमाङ्गिप्रकृष्ट विलोललोहान्दुकवेषमेति ।।१।३०

रङ्गस्थले यत्र रसोत्तरङ्गं सह्यात्मजायां सततं नटन्त्याम् ।
रसाल-वैला रसिका विलोक्य मुक्ताभिषेकं मुहुराचरन्ति ।। रघु० २।३२

३. चमूरजो यस्य समीपवर्तिधारालदन्तावलदानतोयै: ।
आयान्तमाशान्तविसृत्वरं तु शान्तं रिपुस्त्रीजनवाष्पसेकै: ।।
— रघु० ३।३७

मौक्तिकाङ्कमवहन्मनोहरं कञ्चुकं विरलकौमुदीसखम् ।
किंकरत्सकलतारकाश्रितां कीर्त्तिसंततिमिवावनीधव: ।। ५।६
—रघु० ५। ६

इसके साथ ही साथ रघुनाथाभ्युदय में केवल शब्दवैचित्र्य[१] ही नहीं मिलता अपितु अर्थ की प्रौढ़ता[२] भी समुचित रूप से विकसित हुयी है।

महाकाव्यकर्त्री ने अलङ्कृत[३] और अनलङ्कृत[४] दोनों ही भाषाओं को प्राय: ग्रहण किया है।

अलङ्कार निरूपण—

रामभद्राम्बा ने अपने महाकाव्य में अनुप्रास आदि शब्दालङ्कारों तथा उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, अपह्नुति, परिणाम, भ्रान्तिमान् विभावना, विरोध, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, विषम तथा अर्थान्तरन्यास-

---

१. अदभ्रवीचीप्रपदप्रकल्प-गन्धर्वरेखान्वितगन्धनाग: ।
 मदावस्तस्य महीसुधांशोस्समुज्जृम्भताग्रे ।। रघु० ६।२८

१. हस्त्यारूढ: सार्यवहन्यमानोऽप्यश्वारोहैराह्वाये भ्रुभूमौ ।
 आस्काल्यायादमरीणां वधूनां वक्त्राजाग्रे वर्धयन्रोमहर्षम् ।। रघु० १०।१२

२. रते: सहायो रघुनाथनेत्रा जितो यतस्तेन तदीयचाप: ।
 आज्ञाधर्येत्र जनैरमुष्य निष्पीड्यते नीरसवेयन्त्रे ।।
 — रघुनाथा० १।३४

 आघन्तयोनिरसस्वक्तोऽस्याप्यसिप्रसूतिर्गगनं प्रसूनम् ।
 इतीव यत्रेदवर्णां धुनीते प्रायेण रम्भा चलपत्रदम्भात् ।। रघु० १।३५

३. धीरोदात्तो दैवतान्यस्तभार: शौर्यपित: सत्यसंधो दयालु: ।
 त्यागी विद्वान्दीनरक्षाधुरीणो भूमीपाल: पूज्यते भूतलेऽस्मिन् ।।
 — रघु० ८।३८

४. आवि:शौर्यादन्यदीयानिभेन्द्रा: स्कन्धावारे वारणास्कन्धभाज: ।
 अध्यारोहन्नद्रिशृङ्गान्तरस्था: शैलानन्यान्सिंहशावा इवारात् ।।
 — १०।५६

अर्थालङ्कारों का औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है।

काव्य को आकर्षक बनाने के लिए शब्दालङ्कारों का भी महत्व है। पदलालित्य की दृष्टि से अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। अनुप्रास के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

(१) करिणो निजगौरवेण यस्यामधरीकृत्य निदगुन्धगन्धनागान्।
अवनौ मदमष्टधा दधानाः प्रकरं तज्जायितां प्रदर्शयन्ते ।।[१]

(२) धार्येषु यत्सैन्यतुरङ्गमाणां धाणोत्थितान्येव धुरारजांसि।
अरीन्हिमारानपि धारयन्तो धावन्त्यहोवैरिधुराधिनाथाः ।।[२]

(३) जलजात बान्धव समस्तयोगिहृज्जलजातजान्तरेषु विरवाससौहृदात्।
जगतीतले जलजसंततिं भवान्नयति प्रमोदमधुना नवं नवम् ।।[३]

(४) भूयो भक्त्या भूमिकान्यागमयन्तुः पादाम्भोजं भाग्यहेतु प्रणम्य।
आसाद्यान्तः सान्द्रमानन्दमैच्छद्भूयाभिः स्वैर्भूषितं भूमहेन्द्रः ।।[४]

(५) गन्धान्धधूमीधवगन्धनाग कण्ठीरवं शौर्यकथानिधानम् ।।[५]

(६) आहूयन्तमाप्तराजन्यवर्गाः संनाह्यन्तां सैनिकाः शौर्यधुर्याः।
सर्वे वाहाः साधु सज्जीक्रियन्तां शृङ्गार्यन्नामुत्कराःसिन्धुरेन्द्राः।।[६]

उपर्युक्त पदों में क्रमशः र, न (ण) ग, ध, ज, भ तथा स वर्णों की

---

१. रघु० २।१३

२. वही ३।४६

३. वही, ४।२७

४. वही ४।७१

५. वही, ७।४४

६. वही, ८।४६

आवृत्ति के कारण अनुप्रास अलङ्कार है।

महाकवि कालिदास की भांति उपमा का भी प्रयोग कवयित्री ने अधिक किया है। प्राय: सभी सर्गों में यह उपलब्ध होता है।

उपमा में उपमान और उपमेय के मध्य किसी वैशिष्ट्य को दृष्टि में रखकर, वाचक शब्द द्वारा, सादृश्य स्थापित करता है। उपमा के कुछ स्थल दृष्टव्य हैं --

" जिनके (रघुनाथ) देव मन्दिर के उत्सवों में, चारों ओर से, देवताओं से घिरे हुए, तथा उनके रथों में विराजमान चांदी और स्वर्ण के पात्रों के कारण आकाश मण्डल, अनन्त चन्द्रार्क (रक्तवर्ण) की भांति सुशोभित हुआ।"[1]

यहां आकाश मण्डल की उपमा, चन्द्रार्क से दी गयी है। इसी प्रकार अन्यत्र भी --

" समस्त स्पृहणीय तथा श्रेष्ठ गुणों से सुसज्जित राजा को सर्व साधारण ने उसी प्रकार प्राप्त किया, जैसे प्रसन्नचित्त भ्रमरगण, नवीन सुगन्धित कारण सुन्दर फैले हुए आम्र के वृक्ष की शरण लेते हैं।"[2]

यहां सांसारिक लोगों तथा भ्रमर के मध्य सादृश्य प्रदर्शित किया गया है अत: उपमा है।

रूपक अलङ्कार वहां होता है जहां उपमान और उपमेय में अभेद की प्रतीति करायी जाय।

---

१. यदीयदेवायतनोत्सवेषु रथोल्लसद्राजतहैमकुम्भैः।
 अप्यावृतं देवगणैः समन्तादनन्तचन्द्रार्कमिवान्तरिक्षम्।। रघु०१।६२

२. सकलस्पृहणीय-सद्गुणाढ्यं जननाथं जगतीजना भजन्ते।
 भ्रमरा इव सततं प्रहृष्टाः सहकारं नवसौरभाभिरामम्।।
 --रघुना० ८।४१

" मुख रूपी कमल के सौन्दर्य से मोहित, सुधा रूपी समुद्र में, जिसके मस्तक रूपी चन्द्रमा उत्पन्न हो जाने पर[1]" (पद्य के उत्तरार्द्ध में अन्य अलङ्कार प्रयुक्त होने के कारण उसका उदाहरण देना अनुचित है) ।

यहां पर मुख में कमल, सुधा में समुद्र तथा ललाट में शशी का आरोपण होने के कारण रूपक अलङ्कार है ।

प्रकृति (उपमेय) में अप्रकृत (उपमान) की सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार होता है । रघुनाथाभ्युदय में उत्प्रेक्षा पद पद पर प्रयुक्त है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत है — " श्री रघुनाथ नायक के नयी नयी धैर्य सम्बन्धी कथाओं के फैल जाने पर, विविध पर्वत मानो मन्द नेत्रों के भार के कारण चरण रखने में समर्थ नहीं हो पाते हैं ।"[2]

यहां पर्वतों के गमनशील होने की सम्भावना की गयी है । अन्यत्र[3] भी उत्प्रेक्षा अलङ्कार प्राप्त होता है ।

---

१. मुखाब्जलावण्यसुधाब्धौ समुद्गते यस्य शशीललाटम् ।।

— रघु० ७।३

२. नवं नवं श्रीरघुनाथनेतुः प्रपञ्चिते धैर्यकथाप्रसङ्गे ।
महीधरा यत्र पदं विधातुं मन्दाक्षभारादिव न क्षमन्ते ।।

— रघु० १।६६

३. बहुधा रघुनाथ-दानतोयैः परिवृद्धिं गमितः पयोनिधीनाम् ।
परिरवानिमतः परीत्य नित्यं भजते तद्भुजपालितां कृतज्ञः ।। वही २।६
प्राच्यभूमिपतयो महीभुजे प्रापयन्त्र चिरवत्रपालिकाम् ।
शक्रतातिशयिभाग्यशालितां स्थापयन्त इव कौतुकान्तदा ।। वही ५।४५
समं प्रवृत्तानि नृपालसैन्ये भेरीनिनादैः करिबृंहितानि ।
तदा व्यजृम्भन्त धराधरेन्द्रपतिस्वनाः प्रौढतमा इवोच्चैः ।। वही ६।५५
अथागमन्भोज्यगुणातिशायितामनर्घरत्नाभरणौधशिञ्जितैः ।
अमुष्य शंसन्त्य इवाब्जलोचनाः सहेमपात्राः सख्यो महानसात् ।। ११।८२

अतिशयोक्ति अलङ्कार में विषय (उपमेय) के निगरणपूर्वक, उसके साथ विषयी (उपमान) की अभेद प्रतिपत्ति होती है। रघुनाथाभ्युदय में अतिशयोक्ति का प्रयोग बहुत अधिक किया गया है। रघुनाथ की वीरता के सम्बन्ध में कही गयी उक्ति में अतिशयोक्ति विद्यमान है —

" जिसके (रघुनाथ के) वीर सैनिकों ने सम्पूर्ण शत्रु शासकों के समूह को नष्ट किये जाने पर, जो धूलिकण विद्यमान थे, वस्तुत: यह धूल नहीं है अपितु आश्रय न होने के कारण, स्पष्ट दिखायी पड़ने वाले ये रजोगुण (पराक्रमादि) ही है।"[१]

यहाँ प्रस्तुत 'रजांसि' का अध्यवसाय करके रजोगुण का प्राधान्य प्रदर्शित किये जाने के कारण अतिशयोक्ति है।

'परिणाम' अलङ्कार में आरोप्यमाण (उपमान), आरोप विषय उपमेय के रूप में परिणत प्रतीत हुआ करता है। प्रस्तुत काव्य के प्रथम सर्ग में ही यह प्रयुक्त है —

" जल विहार के कारण गिरती हुयी जलधार से पूर्ण होने के कारण, चोटियों को धारण करने वाली नारियों में, बादल की आशङ्का से, मयूर-गण नित्य ही मुख झुकाये हुए जाने वाली स्त्रियों का नदी के तट से लेकर गृह तक अनुगमन करते हैं।" [२]

---

१. चमूभटैर्यस्य भटै: समीके निपातिते वैरिनृपालवर्गे।
अनाश्रयत्वादभिलक्ष्यमाणा रजोगुणा एव न किं रजांसि ।।
— रघु० ३।३६

२. अम्भोविहारादुगलम्बुधारं वेणीधरं वारिधरं विशङ्क्य।
यत्रानताङ्गीरनुयाति नित्यं सरित्तटादासदनं मयूरा: ।।
— रघु० १।४१

यहाँ वेणीधर (उपमान), वारिधर (उपमेय) के रूप में परिणत प्रतीत हो रहा है — अतः परिणाम है।

विरोध अलङ्कार भी तृतीय सर्ग के एक पद्य में मिलता है —

"जिसने (रघुनाथ) अपने ओजस्वी गुण द्वारा, तथा पृथ्वी के अन्य शासकों के मुकुट तथा रत्न द्वारा अभिमान धारण करने वाले तराजू को प्राप्त करके भी तुलना को न पा सकने वाली बहुमूल्य मणि गण भी, अधोगति को प्राप्त कर चुके थे।"[1]

यहाँ तुलां भजन्तोऽपि तुलाविहीना:' में विरोध है।

'व्यतिरेक' वह अलङ्कार है जिसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय के आधिक्य वर्णन अथवा न्यूनत्व वर्णन में देखा जाया करता है। आधिक्य - वर्णन का एक पद्य नारी सौन्दर्य निरूपण के सम्बन्ध में प्राप्त होता है —

"जिन नारियों के मुखों ने कमल समुदाय को ही निष्प्रभ कान्ति वाला बना दिया है, आज उन्हीं ने चन्द्र को भी परास्त कर दिया है — इसी कारण संसार में चन्द्र लज्जित होता जा रहा है।"[2]

यहाँ पर प्रसिद्ध उपमान कमल, चन्द्रादि की अपेक्षा उपमेय नारी मुखों का आधिक्य दिखाया गया है।

---

१. महौजसा येन महीमहेन्द्रकिरीटरत्नैन कृताभिमाना: ।
तुलां भजन्तोऽपि तुलाविहीना भवन्त्यधस्तान्मणय: परार्घ्या: ।। रघु० ३।१०

२. अरविन्द-कुलं यदङ्गनानां वदनैरेव निवारितप्रभम् ।
अधरीकुरुते तदद्य चन्द्र: परिभूत: परिभूयते जगत्याम् ।।
— रघु० २।५६

अन्यत्र भी व्यतिरेक अलङ्कार का प्रयोग किया गया है।

प्रतिवस्तूपमा का एक उदाहरण राजा की शरणागत रक्षा तत्परता के सम्बन्ध में उपलब्ध होता है —

" राजा के अतिरिक्त कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो कि रक्षा करने में समर्थ हो, रक्षित होने पर भी अन्धकार के समय (दु:ख के समय) छोड़ दिया जाता है। कोयल के द्वारा पाले जाने पर, समय आने पर, उसी को कौवा तुरन्त छोड़ देता है।"[2]

यहाँ पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध के वाक्य में रक्षा रूप सामान्य धर्म विद्यमान होने के कारण प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है। उपर्युक्त पद्य के बाद वाले पद्य[3] में भी प्रतिवस्तूपमा है।

अर्थान्तरन्यास में साधर्म्य के द्वारा सामान्य का विशेष से, विशेष का सामान्य, कार्य का कारण तथा कारण का कार्य से समर्थन होता है।

रामभद्राम्बा ने अपनी कृति के अष्टम सर्ग के अनेक पद्यों[4] में अर्था-

---

१. अत्र चोलगदशास्यारौ: समै वार्धिवासवसुधातिपीडने।
पङ्क्तिरास्यजलजानि बाहवो विंशति: सुररिपोर्विशेषणम्।। रघु० ८।१०

२. नान्यो जनो नरपते: परिरक्षणीय: संरक्षितोऽपि तमसे समये विमुक्तेत्।
संवर्धित-परभृता समये प्रपन्ने सद्यस्तमेव कलकण्ठयुवा जहाति।।
— रघु० ८। ४१

३. रघुनाथाभ्युदय —८।४२

४. अथनिश्चलादिजलजावलोकनैररविन्दबान्धवमतीव भावयन्।
जपमातनोज्जनक-जापतीरितं जयकारणं स जगतीपुरन्दर:।। रघु० ८।५३
भयावहे पटहप्रतिस्वने महीभुजो महिधरकन्दरान्तरे।
समागत: सविधमसाविति द्रुतं पलायिता: परमभवान्विरोधिन:।।
—रघु० ८।५६

न्तरन्यास अलङ्कार का उपनिबन्धन किया है ।

रघुनाथाभ्युदय में अधोलिखित छन्दों का प्रयोग किया गया है । वे उपजाति[1] पुष्पिताग्रा[2] वसन्ततिलक[3] मालभारिणी[4] मालिनी[5] शार्दूलविक्रीडित[6] इन्द्रवज्रा[7] उपेन्द्रवज्रा[8] प्रबोधिता[9] रथोद्धता[10] शालिनी[11] रुचिरा[12] मञ्जुभाषिणी[13] द्रुतविलम्बित[14] स्वागता[15] औपच्छन्दसिक[16] प्रहर्षिणी[17] वंशस्थविल,[18] सुन्दरी[19] पञ्चचामर[20] स्रग्धरा[21] है ।

---

१. रघुनाथाभ्युदय १।१-७३, ३।१-४६, ६।१-५८, ७।७८, ८।४

२. रघु० १।७४, १२।२८

३. रघु० १।७५, २।५८, २।६०, ६।५६, ८।७, ८।१०२

४. रघु० २।१-५७, ८।६, ८।११

५. रघु० २।५६, ३।५१, ५।५८, ८।२२

६. रघु० ३।५०, ११।१०६

७. रघु० ८।३५

८. रघु० ८।२८

९. रघु० ५।१-५७, ८।१०

१०. रघु० ४।१- ६६

११. रघु० ७।७६, ८।५

१२. रघु० ८।१-२

१३. रघु० ८।३, १७,५१,५३,६७

१४. रघु० ८।८-६

१५. रघु० ८। १५, ८।३०

१६. रघु० ८।१६।२३

१७. रघु० ८।१६

१८. रघु० ८।३६

१९. रघु० १२।२०

२०. रघु० १०।८६

२१. रघु० १२।८७

"रामभद्राम्बा और रघुनाथाभ्युदय"

रामभद्राम्बा द्वारा रचित 'रघुनाथाभ्युदय'[१] एक चरित काव्य है। यह काव्य 'रघुनाथ-नायक' को लेकर लिखा गया था – क्योंकि रामभद्राम्बा इन्हीं की राजसभा की कवयित्री थीं। रघुनाथ की कवयित्री की और विशिष्ट कृपादृष्टि थी।[२] और उनके द्वारा ही वे श्रेष्ठ कवयित्री के पद का लाभ कर सकीं (साहित्य साम्राज्यभद्रपीठारूढ) सम्पूर्ण कृति में कहीं भी रामभद्राम्बा का रघुनाथ की रानी के रूप में उल्लेख नहीं मिलता है। उनके अनुसार रघुनाथ साक्षात् कृष्ण के अवतार थे,[२] उनके पास अपार धनराशि एवं सांसारिक सुखों से सम्पन्न थे[३]। एकादश एवं द्वादश सर्ग[४] के चित्रण से भी ज्ञात होता है कि कामवासना में लिप्त रघुनाथ के समीप अनेक नारियाँ स्वयं उपस्थित थीं – अतः इससे स्पष्ट पता चलता है कि रामभद्राम्बा, रघुनाथ की रानी न होकर परिचारिका थीं।[५]

संस्कृत प्रबन्ध काव्य रचयित्रियों में रामभद्राम्बा का विशिष्ट स्थान है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में दिये गये विवरण[६] से ज्ञात होता है

---

१. शब्दार्थयोर्मम समप्रधानं वशंवदं यस्य वदन्ति सर्वे ।
कृती स एवात्र कृतौ सहायो नाथो मम श्री रघुनाथ-नामा ।। रघु० १।१०

२. वरं रघूणां गुण-वैभवे यं वदन्तु सर्व-रसिका वयं तु ।
सहस्रकान्ता-जन-सामरस्ये कृष्णावतारं हृदि तर्कयामः ।। रघु० ३।५

३. पादाङ्गणे यस्य विभोः प्रतीपजनाधिपाः स्वं प्रतिबिम्बमेत्य ।
अनर्घरत्नावसथेषु वासं चिरोज्झितं चेतसि चिन्तयन्ते ।। रघु० ३।२३

४. इति सात्त्वनैर्हृदयमोदनैः शनैरनुनीय गाढपरिरम्भणादिभिः ।
रमणीमणिं स रतिशास्त्रचोदितैः रसिकाग्रणी रमयति स्म सादरम् ।। रघु० १२।

५. आलिङ्गनैः प्रेमवशातिगाढैराभाषणैरप्यमृतानमानैः ।
अथोगसन्तापमपास्य नेता प्राकल्पयत्प्राप्तमनोरथां ताम् ।।१२।६८ (रघु०)

५. संस्कृत पोयटैसेज, भाग २, पृ० ४२

६. इति श्री रामभद्रकरुणाकटाक्षलब्धसारसारस्वतशतलेखनीसमसमयलेखनीयाष्ट भाषाकल्पितचतुर्विधकवितानुप्राणितसाहित्यसाम्राज्य-भद्रपीठारूढरामभद्राम्बा विरचिते रघुनाथाभ्युदये प्रथमः सर्ग० ।

कि 'साहित्यसाम्राज्यभद्रपीठारूढ' उपाधि उनके लिए उचित ही थी । वे आठ भाषाओं में कविता करने तथा शतलेखिनी और समय-लेखिनी में भी निपुण थीं । वे सङ्गीत, नृत्य और पाक कलाओं में निपुण थीं जैसा कि एकादश एवं द्वादश सर्गों के विस्तृत वर्णन द्वारा स्पष्ट होता है ।

रामभद्राम्बा विविध रसों के निरूपण में भी सफल हुयी है । जहां एक ओर उन्होंने युद्ध की विभीषिका में वीर रस का कुशलतापूर्वक निर्वाह कराया है -वहीं अन्तिम दो सर्गों में उन्होंने संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत नारी सुलभ व्रीडा आदि भावों की व्यञ्जना करायी है ।

कवयित्री ने प्रकृति के स्वाभाविक प्रेम का प्रदर्शन किया है । अपनी इसी भावना को व्यक्त करने के लिए उन्होंने ताम्रपर्णी तथा कावेरी नदियों (प्रथम सर्ग) ,पशु-पक्षियों तथा फलफूल-वृक्षों आदि, तञ्जा नगरी एवं रघुनाथ की राज सभा का (पञ्चम सर्ग) सजीव चित्रण किया है ।

'रघुनाथाभ्युदय' की रचयित्री ने अपने काव्य में सर्वत्र नायक (रघुनाथ) की तुलना रामायण के राम[1] से की है । रघुनाथ (राम) और रघुनाथ भूप दोनों की उत्पत्ति, उनके माता पिता द्वारा किये गये दीर्घकालीन तपों के पश्चात् उन्हीं के आशीर्वाद से हुयी थी।[2] कवयित्री के मतानुसार वे मनुष्य धन्य हैं जो अपने हृदयों में श्री राम का ध्यान करते हैं ।[3] पराक्रम एवं क्षमादि गुणों

---

१. विश्वत्रयी विश्रुतबाहुधामा रामावतारो रघुनाथभूप: ।। रघु० ३।१

२. एवं विधं नन्दनमिन्दुवक्त्रे भेजेमहि श्रीरमणं प्रसाद्य ।
विना तपोभिर्विविधैर्जगत्यां भजन्ति के वा सुतरूप-भाग्यम् ।। ६।३८
—रघुनाथाभ्युदय-६।३८

३. अधिकाश्रियमच्युतेन्द्रसूनुं रघुनाथं रघुनाथमेवं साक्षात् ।
हृदये कलयन्ति ये महान्त: परमानन्दभराश्च एव धन्या: ।।
— रघु० १२।८६

में भी रघुनाथ राम के ही सदृश थे,[१] किन्तु पारिवारिक आदर्शों तथा एक पत्नीव्रत आदि मर्यादाओं का पालन करने में रघुनाथभूप असमर्थ रहे।

रामभद्राम्बा का 'रघुनाथाभ्युदय' कथावस्तु, नेता (नायक) तथा रसनिरूपण की दृष्टि से उत्तम रचना है। वे वर्णन में भी पटु हैं उन्होंने सूर्य-स्तोत्र[२] तथा रामायण की कथा[३] का संक्षिप्तांक प्रस्तुत करके काव्य को धार्मिक भावना से युक्त कर दिया है।

कवयित्री पर महाकवि कालिदास का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। पद पद पर उपमा का प्रयोग तथा अच्युत और मूर्त्यम्बा द्वारा पुत्रप्राप्ति हेतु धारण किया गया व्रत, रघुवंश में चित्रित दिलीप और

---

१. सिन्धौ कृत्वा दुष्करं सेतुबन्धं जित्वा शत्रुं सत्वरं श्रीसमेतम्।
राम साकेतादीश्वरं क्ष्माधुरीणं जानीमस्तत्वां साम्प्रतं भूमिजाने ।। ८।६६
रघुनाथाभ्युदय, ८।६६

२. भवदीय पाद भजनेन मे यतः प्रकटी करोषि ननु पाद्मवैभवम्।
अतएव कारणमभूपदस्तव प्रवदन्ति पद्ममहित पाथवैभवे ।।
रघु० ४।१८

प्रथितं मदीयकुलपावनं रघुप्रवरं सदा मनसि भावयत्यसौ।
इति वासरेश हृदये विचार्य किं तनुषेऽन्वहं जगति धन्यमेव माम् ।। रघु० ४।२६

३. अथ रामवृत्तमखिलं यथाक्रमं कलुषापहं सकलकाङ्क्षितप्रदम्।
निखिलागमार्थनिधिरग्रतः सुधीर्हितमुज्ज्वलार्थयुतमित्यवीवचत् ।। रघु० ४।४३

धरणीं प्रशासति धरासुतापतौ धनधान्यगोधनयुताः शुभान्विताः।
नियतस्वकर्मनिरताश्चिरायुषो भयदैन्यलेशरहिताः प्रजाबभुः ।। ४।६८
— रघु० ४।६८

सुदक्षिणा की पुत्रार्थ की गयी गो सेवा का स्मरण करा देता है। नैषध-कार श्री हर्ष के पदलालित्य से भी महाकाव्यकर्त्री पूर्णतः प्रभावित होती है। नैषध की भांति विस्तृत वर्णन भी रघुनाथाभ्युदय में मिलते हैं - राजसभा तथा नारी सौन्दर्य चित्रण, रति विलास आदि तो नैषध का अनुकरण सा प्रतीत होता है ।

किन्तु फिर भी महाकाव्य के रूप शैली, रीति, गुण, अलङ्कार तथा छन्दोबद्धता आदि की दृष्टि से रामभद्राम्बा का रघुनाथाभ्युदय एक श्रेष्ठ रचना है ।

सुभद्रा और उनके द्वारा रचित 'पूर्णत्रयीशस्तोत्र'

संस्कृत साहित्य में महाकाव्य, नाटक तथा चम्पू काव्यों के अतिरिक्त स्तोत्र रचना करने की प्रथा भी विद्यमान मिलती है उसी प्रथा के आधार पर कोचीन के राजपरिवार से सम्बन्धित सुभद्रा ने पूर्णत्रयीश की प्रशंसा में 'पूर्णत्रयीशस्तोत्र'[1] की रचना की है। इनका समय १६१२-१६८६ ई० है। सुभद्रा के पिता कुञ्ञिप्पिळ्ळ प्रसिद्ध दानी शासक थे तथा अपने गुरु महादेव की प्रेरणा से स्तोत्र रचयित्री ने पूर्णत्रयीश के विविध अवतारों के वर्णन का प्रयास किया[2]।

महान् व्यक्ति सदैव अपनी लघुता एवं हीनता का ही प्रदर्शन करता है—सुभद्रा के पक्ष में भी यह सराहनीय है। ४६ पद्यों में निबद्ध 'पूर्णत्रयीशस्तोत्र' के आरम्भ में, प्रथम वंदनीय गणेश, वाक्देवी सरस्वती तथा सम्पूर्ण सृष्टि के माता-पिता पार्वती और परमेश्वर आदि उत्तम गुरुओं को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गयी है।

'पूर्णत्रयीशस्तोत्र' के अन्तर्गत पुराणों में वर्णित नृसिंह, वाराह, मत्स्य, कूर्म, कच्छप, वामन, हयग्रीव आदि के अतिरिक्त रामावतार और कृष्णावतार की प्रसिद्ध कथा भी अन्तर्निहित है। साथ ही विख्यात ऋषियों — व्यास, दत्तात्रेय, पृथु, कपिल आदि के जीवन-चरित का भी उल्लेख किया गया है।

---

१. केरल विश्वविद्यालय के ओरियण्टल हस्तलिखित सङ्ग्रहालय की पुस्तिका- प्रति संख्या १४, त्रिवेन्द्रम्, १६६५ ई०

२. पूर्णत्रयीशस्तोत्र पद्य संख्या २.

मानव जीवन के लिए श्रेष्ठ पुरुषों का चरित्र आदर्श रूप होता है उनके द्वारा सर्व साधारण को शिक्षा भी प्राप्त होती है अत: ये महत्त्वपूर्ण हैं।

'अवतार' शब्द का एक विशिष्ट अर्थ है – किसी महनीय शक्ति सम्पन्न भगवान् या देवता का नीचे के लोक में ऊपर से उतरना तथा मानव या अमानव रूप का धारण करना। यह अवतार तत्त्व पुराण के प्रधान विषयों में अन्यतम है। अवतार का तत्त्व भगवान् के धर्म नियामकत्व रूप पर प्रतिष्ठित है। इस विश्व को एक सूत्र में धारण करने वाला, नियमित रखने वाला तत्त्व धर्म है। इस धर्म का नियमन करने वाला सर्वशक्तिमान् परमात्मा है। यह परमात्मा विविध प्रयोजनों वश अवतार ग्रहण करता है। धर्म की ग्लानि और अधर्म का अभ्युत्थान हो जाने पर ईश्वर किसी न किसी रूप में संसार में अवतरण करते हैं। साथ ही मनुष्यों के परमकल्याणभूत मोक्ष साधन के लिए भी अव्यय, अप्रमेय, गुणहीन तथा गुणात्मक भगवान् की अभिव्यक्ति अवतार--जगतीतल पर होता है। ज्ञान का वितरण भी भगवान् के अवतार का एक प्रयोजन है।[१]

वैदिक काल से लेकर, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा श्रीमद्भागवत और पुराणों में विविध अवतारों का चित्रण मिलता है। रामायण तथा महाभारत में भी अवतारों की कथा प्राप्त होती है। इन सभी अवतारों का सम्बन्ध मुख्यत: भगवान् विष्णु से है अत: पूर्णत्रयीश स्तोत्र में अधिकांशत: विष्णु-भक्ति-विषयक पद्यों को ही रखा गया है।[२]

वराह-अवतार में प्रजापति द्वारा वराह रूप धारण करके जल के भीतर निमग्न पृथ्वी को ऊपर लाने की कथा का उल्लेख किया गया है।[३]

---

१. पुराण-विमर्श – बलदेव उपाध्याय, पृ० १६३–१७०, चौखम्बा संस्करण, १९६५

२. पूर्णत्रयीशस्तोत्र, ३, ६, ६, १०, १३, १५

३. पूर्णत्रयीशस्तोत्र, ४

वराह अवतार का प्रसङ्ग तैत्तरीय संहिता,[१] तैत्तरीय ब्राह्मण,[२] तथा शतपथ ब्राह्मण[३] में भी मिलता है। पुराणों[४] में भी वराह द्वारा पृथ्वी के उद्धार तथा हिरण्याक्षवध की कथा वर्णित मिलती है। श्री मद्भागवत के तृतीय स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में इसका बड़ा ही यथार्थ तथा आकर्षक वर्णन किया गया है। इस स्थल पर वराह `यज्ञवराह` के रूप में चित्रित कियागया है अर्थात् यज्ञ में जितने साधन तथा अङ्ग स्रुव, चमस् आदि प्रयुक्त किये जाते हैं उन सबका प्रतीक रूप वराह के देह में विद्यमान था। वराह का यज्ञवराह के रूप में चित्रण स्पष्टत: वैदिकत्व की छाप को स्पष्ट कर रहा है। फलत: वराह अवतार के द्वारा पाताल लोक से भूतधात्री पृथ्वी का उद्धारकार्य प्रजापति के कार्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है और यह वेद में स्पष्टत: निर्दिष्ट होकर पुराणों में उपबृंहित किया गया है।[५]

कपिलमुनि का अवतार भी सभी के लिए हितकारी तथा उपदेश-प्रद सिद्ध हुआ।[६] ज्ञान का वितरण ईश्वर के अवतार का मुख्य आयोजन प्रतीत होता है। कर्दम तथा देवहूति के घर में कपिल रूप में अवतरण करके, सांख्य तत्त्वों का निरूपण तथा आत्मा की उपलब्धि के मार्ग का दिग्दर्शन कराना ही इस अवतार की मुख्य कथा है। देवहूति के गर्भ से कपिल का जन्म, कपिल मुनि और पृथु राजा का संक्षेप-चरित कथन वराह पुराण,[७]

१: तैत्तरीय संहिता ७।१।५।१

२: वही १।१६

३: शतपथ ब्राह्मण १४।२।११

४: पद्मपुराण २६४, ब्रह्मपुराण २१३, पद्मपुराण सृष्टि खण्ड ७३, देवीभागवत,६

५: पुराण विमर्श, पृ० ६८२

६: पूर्णश्रीयीशस्तोत्र, ५

७: वराहपुराण १६३

श्रीमद्भागवत[१] तथा ब्रह्मपुराण[२] में हस्तगत होता है।

सुभद्रा ने अपने स्तोत्र में नरनारायण[३], गजेन्द्रमोक्ष[४] तथा विमाता के कटु वचनों से दु:खी भक्त ध्रुव की कथा[५] का भी सूक्ष्म परिचय दिया है। राजा पृथु का उपाख्यान अग्नि पुराण[६] तथा पद्मपुराण[७] में उपलब्ध होता है। महाराज पृथु से सम्बन्धित एक पद्य[८] भी प्रशंसनीय है। साथ ही श्रीमद्-भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी महाराज पृथु द्वारा पृथ्वी को मारने के लिए तत्पर होने, पृथ्वी के दुहे जाने, पृथु के यज्ञ और इन्द्र के पाखण्ड के पश्चात् विष्णु द्वारा पृथु के ऊपर प्रसन्न हो जाने की कथा का उल्लेख मिलता है।

पृथु की भाँति दत्तात्रेय का चरित्राङ्कन भी कवयित्री ने किया है। अत्रिमुनि के यहाँ दत्तात्रेय के रूप में जन्म लेने की कथा का वर्णन श्रीमद्भागवत तथा अन्य स्थलों में भी मिलता है।

नृसिंहावतार की अत्यन्त विख्यात कथा को भी सुभद्रा ने दो[९] पद्यों में अनुस्यूत कर दिया है। दुष्ट हिरण्यकशिपु को मारकर प्रह्लाद को आशीर्वाद

---

१. श्रीमद्भागवत- तृतीय स्कन्ध २४ अध्याय, ज्ञान लोक प्रकाशन दारागंज, प्रयाग १९३९

२. ब्रह्मपुराण

३. भागवत १।३।९, २।७।६-८, महाभारत शान्ति पर्व ३४२, हरिवंश १।१४।२४, विष्णु पुराण ४।४

४. भागवत् २।७।१५-१६

५. श्रीमद्भागवत्-चतुर्थ स्कन्ध अध्याय ८

६. पूर्णत्रयीशस्तोत्र ८

७. श्रीमद्भागवत- १।३।४, २।७।४

८. महाभारत सभापर्व ४८, हरि १-३३,४१, मत्स्य ४७, विष्णु ४।११, ब्रह्म ७१, १०४

९. पूर्णत्रयीशस्तोत्र ११,१२

प्रदान करने वाले नृसिंह भगवान् का चरित्र चित्रण तैत्तिरीय आरण्यक[१] अग्निपुराण,[२] ब्रह्मपुराण,[३] तथा भागवत के सप्तम स्कन्ध के अष्टम अध्याय में किया गया है ।

श्रीमद्भागवत के अष्टम स्कन्ध के सप्तम अध्याय में वर्णित कच्छपावतार का भी पूर्णत्रयीस्तोत्र[४] में सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत किया गया है । समुद्र-मन्थन के अवसर पर निराधार होने के हेतु जब मन्दराचल समुद्र में डूबने लगा और समुद्रमन्थन में महान्-विघ्न उत्पन्न हुआ तो भगवान् ने कच्छप का अद्भुत रूप धारण कर मन्दराचल को अपने ऊपर धारण किया । उसी दृढ़ आधार के ऊपर रख कर मन्दराचल ने नाना वस्तुओं की सहायता से जब समुद्र का मन्थन किया गया तो एक के बाद एक चौदह रत्न क्रमश: उत्पन्न हुए । इस अवतार का वर्णन पद्मपुराण[५] में भी किया गया है ।

अन्य अवतारों के साथ साथ वामनावतार का भी वैशिष्ट्य भी प्रस्तुत स्तोत्र में दिखाया गया है । जब स्वर्ग को जीतकर राजा बलि स्वयं इन्द्र बन गया और उसने देवताओं को पराजित करके स्वर्ग से निकाल दिया तो भगवान् ने अदिति के गर्भ से उत्पन्न होकर, वामन रूप धारण करके बलि से तीन पग पृथ्वी की याचना की । वामन ने दो पगों में पृथ्वी तथा स्वर्ग को नाप डाला और तीसरे चरण को बलि को भी अपने में मिला कर तीनों लोकों का राज्य इन्द्र को प्रदान कर दिया । वामनावतार का उल्लेख

---

१. तैत्तिरीय आरण्यक, दशम प्रपाठक का प्रथम अनुवाक ।

२. अग्निपुराण २४-२७

३. ब्रह्मपुराण २१३

४. पूर्णत्रयीशस्तोत्र १८

५. पद्मपुराण ४६-५३

वामनपुराण,[१] पद्मपुराण[२] ब्रह्मपुराण,[३] कूर्म्मपुराण[४] के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत[५] में विस्तारपूर्वक किया गया है।

सुभद्रा ने एक पद्य[६] में भगवान् द्वारा हयग्रीवावतार के समय सांस से सब वेदों को प्रकट करने के अद्भुत वर्णन को रखा है। ईश्वर के अलौकिक कार्यों तथा अद्भुत शक्ति के प्रदर्शन का वर्णन महाभारत[७] तथा श्रीमद्भागवत[८] में भी मिलता है।

'पूर्णत्रयीशस्तोत्र' में एक पद्य[९] परशुराम विषयक भी है। जामदग्न्य राम ने कार्तवीर्य हैहय का नाश तथा उद्धत क्षत्रिय शासकों का २१ बार संहार किया। परशुराम का चरित्र महाभारत[१०] तथा पुराणों में[११] बहुशः वर्णित है।

---

१. वामन पुराण ४६-५३

२. पद्मपुराण -- २५

३. ब्रह्मपुराण -- २१३

४. कूर्म्मपुराण १७

५. श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध १५,२३ अध्याय

६. जातो वेदस्य हेतोः पुरुतरमकरस्वच्छरूपेण भूय-
स्तोये नौकां गृहीत्वा द्रमिडनरपतिं तारयन् सङ्कटाद् यः।
अश्वग्रीवं च विश्वद्रुहमथ विगतग्रीवमाधाय वेदा-
नादाय ब्रह्मणोऽदाः प्रमुदितहृदयः पाहि पूर्णत्रयीश ॥

—पूर्णत्रयीशस्तोत्र १८

७. महाभारत शान्तिपर्व, ३४७

८. श्रीमद्भागवत २।७।११, १०।४०।१७

९. पूर्णत्रयीशस्तोत्र -- २७

१०. महाभारत २।४९, ३।११८,११६,११७

११. मत्स्यपुराण ४८, विष्णुपुराण ४।७,४।११, भागवत १,३,२०--२।७।२२, पद्मपुराण, २६८,ब्रह्मपुराण, २१३, स्कन्दपुराण अम्बिका खण्ड १,वारा०२५

इसके अतिरिक्त सुभद्रा में भविष्य में होने वाले कल्कि अवतार[१] का भी सूक्ष्म परिचय दे दिया है। कलियुग के अन्त में, जब शासकों के दुष्कर्मों से प्रजाओं का नितान्त उत्पीड़न होगा, जब अधर्म अपनी चरमसीमा पर पहुंच जावेगा तथा ब्राह्मण धर्म की सर्वत्र निन्दा और अनादर होगा। भागवत का स्पष्ट कथन है कि वैदिक धर्म की स्थापना के निमित्त तथा अवैदिक धर्म के विध्वंसन के लिए ही इस अवतार का उदय हुआ था। फलत: इस अवतार का उद्देश्य भी धर्म की स्थापना तथा अधर्म का विनाश है।[२]

उपर्युक्त अवतारों के अतिरिक्त भगवान् विष्णु के दो प्रमुख अवतार हैं रामावतार एवं कृष्णावतार। राम का उल्लेख वैदिक साहित्य में भी मिलता है। रामायण के प्रमुख पात्रों राम[३], दशरथ,[४] जनक वैदेह,[५] सीता-सावित्री,[६] आदि के नाम वैदिक साहित्य में उल्लिखित है किन्तु उन पात्रों का परस्पर सम्बन्ध कहीं भी नहीं प्रदर्शित किया गया है। पुराणों[७] में तो राम-कथा भरी पड़ी है।

सुभद्रा ने रामावतार की कथा के अन्तर्गत राम के जन्म, विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न करने वाले दुष्ट असुरों का बध गौतमी का उद्धार, कैकेयी का

---

१. विप्रात् त्वं संजनिष्यस्यतुलसुकृतिन: शंभलग्राममुख्याद्
विख्यात: कलिनाम्ना तुरगमरुजवं योऽधिरुह्याचरवङ्ग: ।
दुर्वृत्तान् सर्वमर्त्यान् भटिति पटुतया घातयित्वा पृथिव्यां
धर्मं संस्थापयिष्यस्यापि विपुलतमं पाहि पूर्णत्रयीश ।।
पूर्णत्रयीश ४२

२. भागवत २।७।३८

३. ऋग्वेद १०।९३।१४, ऐतरेय ब्राह्मण २।२७।३४, शतपथ ४।६।१।७

४. ऋग्वेद १।१२६।४

५. तैत्तरीय ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में परिचय मिलता है।

६. तैत्तरीय ब्राह्मण २।३।१०, ऋग्वेद ४।५७, अथर्ववेद ३।१७

७. कूर्म्मपुराण २४, देवीभागवत, ३८, वायुपुराण, ३०, ब्रह्मपुराण २१३, पद्मपुराण २६६ ।

वरदान, जटाधारी राम का स्त्री और भ्राता के सहित वनवास गमन , भरत की राम के प्रति भक्ति, शूर्पणखा को कुपित होकर जाना, जटायु एवं शबरी का राम द्वारा मुक्ति प्राप्त करना तथा पवनपुत्र के साथ उनकी मैत्री आदि स्थलों को सीमित करके रखा है।[१]

रामावतार की मुख्य कथा के अतिरिक्त कवयित्री प्रासङ्गिक कथावस्तु राम के साथ सुग्रीव का सख्यभाव और राज्य प्राप्ति का भी उल्लेख किया है। वानरों की सहायता से सेतु निर्माण करके, राम ने लङ्काधिपति रावण का संहार किया और सीता सहित अयोध्या वापस लौटाकर राज्य लाभ किया । रामायण में जिस कथा को अत्यन्त विस्तार पूर्वक रखा गया है उसे सुभद्रा ने अपने स्तोत्र के सहारे केवल छः पद्यों[२] में ही निबद्ध कर दिया है।

रामावतार की भांति कृष्णचरित भी नितान्त विख्यात है। कृष्ण का सङ्केत वैदिक साहित्य में भी मिलता है। छान्दोग्य उपनिषद्[३] ने घोर आङ्गिरस के शिष्य जिस देवकी पुत्र कृष्ण की चर्चा की है वे पुराणों में वर्णित देवकी तथा वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं प्रतीत होते। यद्यपि अनेक पुराणों[४] में कृष्ण कथा का परिचय मिलता है किन्तु श्रीमद्भागवत[५] में इसका विस्तृत वर्णन किया गया है।

सुभद्रा ने कृष्णावतार का चित्रण १३ पद्यों[६] में किया है। कृष्ण की

१: पूर्णत्रयीशस्तोत्र, पद्य संख्या २०–२१, २२

२: वही २०--२५

३: पुराणविमर्श, पृ० १६० बलदेव उपाध्याय ।

४: कूर्म पुराण २४, लिङ्गपुराण ६६, ब्रह्मपुराण २१३, ब्रह्मवैवर्तपुराण ५४

५: श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध ।

६. पूर्णत्रयीशस्तोत्र, २८-४०

कथा में कंसवध, पूतना वध, वकासुर और अघासुर वध, ब्रह्मा का मोह, ब्रह्मा की स्तुति, धेनुकासुर वध, कालियादमन,[१] दावानल से रक्षा, प्रलम्बासुरवध, गोवर्धन का उठाना, नन्द को वरुणा के यहां से छुड़ाना, सुदर्शन मोचन और शङ्खचूड वध, गोपिकाओं का कृष्णाचरित्रगान, अरिष्टासुरवध और अक्रूर का आना, श्रीकृष्णा वलदेव का मथुरा जाना आदि विशिष्ट स्थल हैं। मथुरा जाकर भगवान श्रीकृष्णा ने कुब्जा को अपनी अद्भुत शक्ति द्वारा सीधा करना तथा धनुष को भी तोड़ना। उन्होंने कारागृह में बन्दी माता-पिता को मुक्त करके मथुरा का राज्य उग्रसेन को प्रदान कर दिया। श्रीकृष्णा ने गोपिकाओं, माता-पिता तथा अन्य व्रजवासियों के संताप को दूर करने के लिए उद्धव को व्रज की ओर भेजा, तत्पश्चात् जरासंध की चढ़ाई, मुचकुन्द की दृष्टि से कालयवन का नाश तथा रुक्मिणी, सत्यभामा, भद्रा, कालिन्दी, जाम्बवती, लक्षणा, नाग्नजिती आदि अनेक सुन्दरियों के साथ श्रीकृष्णा से विवाह किया। इसके बाद राजानृग की कथा, मिथ्यवासुदेव और काशिराज वध, जरासंध वध, साल्वराजवध आदि मुख्य घटनायें हैं। श्रीकृष्णा ने अर्जुन की प्रार्थना से किसी ब्राह्मण के मृत दस पुत्रों को जीवित कर दिया, पाण्डवों की ममता के कारण कौरव पाण्डव युद्ध के समय वे सारथि बन गये थे - ऐसे कृष्णा की महिमा अपार है। वे भक्तों के उद्धार के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। ऐसे कृपालु और

---

१. वत्सं हत्वा बकाघावपि कमलभवं मायया मोहयन् यो,
रामात्मा वामरारिं जघनिथ सख्या सानुगं धेनुकाख्यम्।
नूनेनार्तं च कृत्वा फणिपतिमपिब: पावकं तावकैश्च,
स्तोत्रैर्वृत्रारिमुख्यैर्नुतपदकमल: पाहि पूर्णत्रयीश ॥

——पूर्णत्रयीशस्तोत्र, पद्य संख्या ३०

दया की साक्षात् मूर्ति कृष्णा वन्दनीय है।[१]

प्रमुख अवतारों का चित्रण करके स्तोत्रकर्त्री ने एक पद्य में नारायण, व्यास, दत्तात्रेय, बुद्ध, धन्वतरि, पृथु, कपिल, कृष्ण, कमठ, वामन, परशुराम, श्रीराम, कल्कि आदि की एक साथ गणना भी कर दी है।[२]

पूर्णत्रयीशस्तोत्र में अवतारवर्णन के उपरान्त सुभद्रा ने अपने स्तोत्र हेतु ईश्वर से मङ्गल याचना की है जिससे कि वह संसार सागर से शीघ्र ही पार उतर सके।[३] स्तोत्र के अन्त में श्रीमद्भागवत की कथा का माहात्म्य प्रदर्शित किया गया है।[४]

सुभद्रा रचित पूर्णत्रयीशस्तोत्र एक भक्तिपरक रचना है। इसके द्वारा कवयित्री के पौराणिक ज्ञान का स्पष्ट परिचय मिलता है। उन्होंने केवल विविध अवतारों का ही नहीं, अपितु प्रसिद्ध ऋषियों के जीवनचरितों को

---

१. पूर्णत्रयीशस्तोत्र, ३९,४०

२. वैराजश्रीकुमारा सुरमुनिनरनारायणव्यासदत्ता,
बुद्धो यज्ञश्च धन्वन्तरिपृथु-कपिला-मोहिनी-धर्मपश्च।
गोविन्दः श्रीनृसिंहः कमठकिटिभषा वामनो जामदग्न्यः,
श्रीरामः सीरिकल्कीत्यज ! परमवतारांस्तवैतान् स्मरामि ॥
—पूर्णत्रयीशस्तोत्र, ४३

३. वही पद्य ४५

४. अर्द्धं यदि यस्य कस्य हृदयं व्यासात्मजस्योदगत,
श्रीमद्भागवतीकथामृतकणास्पृष्टं हि दिष्ट्यापि वा।
सद्योऽन्तःकरणं तदीममलं भक्त्यादि युक्तं भवे —
दित्युक्तं मम चित्तशुद्धिकरणात् सत्यां कुरु त्वं हरे ॥
—पूर्णत्रयीश स्तोत्र, ४६

पद्यों में निबद्ध करके, उसे अलङ्कारों से सुसज्जित करके, सहृदय के लिए आकर्षक बना दिया है। जो पौराणिक अवतरण एवं कथायें अध्ययन में शुष्क प्रतीत होती हैं, वे भी सुन्दर, मनोहर पदावली तथा सामंजस्य पूर्ण शैली के आवरण में सरस हो गयी हैं। प्रत्येक पद्य का अर्थ स्पष्ट परिलक्षित होता है। कवयित्री ने माधुर्यमय शब्दों में वैदर्भी शैली का प्रयोग किया है। उपमा,[1] रूपक,[2] अनुप्रास[3] निदर्शना[4] आदि अलङ्कारों का प्रयोग काव्य को हृदयग्राही बना देता है —यही कारण है कि वे इस रचना में सफल हो सकी हैं। लघु प्रबन्ध की दृष्टि से स्तोत्र सराहनीय है जहाँ एक ही पद्य में विस्तृत कथा को रख दिया गया है। सुभद्रा की कृति पर महाकवि कालिदास की छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

---

१. पूर्णत्रयीशस्तोत्र, ४५

२. अनेकागोयुक्तां भवनिगळबद्धां दृढतरं
भवत्पादम्भोजं करणमुपयातां ह्यम्पद।
यथा चोरं राजा दम्यति च दद्द् दम्य मां,
भवग्रन्थि छिन्धि प्रचुरकरुणालोकविशिखैः ।। — पूर्णत्रयीश स्तोत्र, पद्य ४५

३. सौभद्रमेतद् भवतोऽवतारकथातिसंक्षेप-नुतिस्वरूपम्।
सतां प्रमोदाय सताऽस्तु पूर्णत्रयीपुराधीश,।। — तवप्रसादात्।। पूर्णपद्य ४४

४. गणेश्वराणीगिरिजा-महेश्वरान् प्रणम्य सर्वान् विविधोत्तमान्- गुरून्।
प्रवक्तुमिच्छाम्यबलापि सत्कथां पिपीलिका लङ्घितुमर्णवं यथा ।।
—पूर्णत्रयीश पद्य १

दैवकुमारिका और उनकी वैद्यनाथ प्रासाद प्रशस्ति

वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति की विषय सामग्री —

दैवकुमारिका द्वारा लिखित वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति[1] को श्री जतीन्द्र विमल चौधरी महोदय ने अपनी पुस्तक[1] के अन्तर्गत प्रकाशित किया है। यह प्रशस्ति पांच प्रकरणों में विभक्त है (१) वंश प्रकरण (२) सङ्ग्रामसिंह — पट्टाभिषेकादि (३) दान प्रशंसा (४) वाल्लुवाश्वोद्भव तथा (५) प्रतिष्ठा। प्रथम प्रकरण में दैवकुमारिका के पति, राणा अमर सिंह के पूर्वजों अर्थात् मेवाड़ के राजपरिवार के शासकों (राणा उपाधि से समन्वित) के महत्त्वपूर्ण कार्यों का इतिहास[2] प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय प्रकरण का प्रारम्भ

---

१. संस्कृत पोयटैसेज़ द्वितीय भाग, पृ १, कलकत्ता १९४०

२. बापा रावल — राहुलराणा — नरपाल — दिनकर — यशःकर्ण — नागपाल — पृथ्वीमल्ल — भीमसिंह — जयसिंह | लक्ष्मणसिंह — अरिसिंह — हमीर — क्षेत्रसिंह — लक्षा — मोकल — कुम्भकर्ण(कुम्भ) — रायमल्ल — संग्रामसिंह(प्रथम | उदयसिंह — प्रतापसिंह — अमरसिंह — कर्ण — जगतसिंह — राजसिंह — जयसिंह — अमरसिंह दैवकुमारिका | सङ्ग्राम सिंह (द्वितीय)

सङ्ग्राम सिंह के राज्याभिषेकोत्सव, जो कि ज्येष्ठ मास सम्वत् १७६७ अर्थात् १७१०--११ ई० में सम्पन्न हुआ था, से होता है। इस कार्य में वृद्ध पुरोहित सुखराम का ही विशेष हाथ था। राज्याभिषेक के पश्चात् पवित्र जल में स्नान करके, हाथी पर आसीन, सङ्ग्राम सिंह ने सम्पूर्ण नगर का भ्रमण किया। राज्य श्री प्राप्त करने के कुछ दिनों बाद, उसने (सङ्ग्राम सिंह) रावल राजकुमार सङ्ग्राम को मेवातिगण को हटाने के लिए आदेश दिया। इस कार्य में कन्थजित् नामक कायस्थ (व्यक्ति) ने भी उसको सहारा दिया। युद्ध में सङ्ग्राम सिंह और उसके शत्रु दलेल खां, दोनों की ही मृत्यु हो गयी, और अन्त में राणा विजयी हो गये। शनैः शनैः राणा सङ्ग्राम सिंह (द्वितीय) ने समीपवर्ती सभी राज्यों को जीत लिया। राणा का मुख्यमन्त्री, विहारीदास, एक विद्वान् धर्मात्मा तथा अनुपम व्यक्तित्वसम्पन्न पुरुष था। जनता में शिक्षा, संस्कृति तथा धार्मिक विचारों के प्रचार के लिए वह उत्तरदायी था। उनकी सम्मति के कारण, राजा ने अनेकों दान क्रियायें सम्पन्न की। तृतीय प्रकरण राणा सङ्ग्राम सिंह की दान प्रशंसा (परोपकारिता) से सम्बन्धित है। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने विद्वान् पुरोहितों, पुरस्कार योग्य छात्रों और अन्य जनों जैसे दक्षिण के दक्षिणामूर्ति, बनारस के दिनकर, तर्कशास्त्री सुखानन्द, वैदिक विधानों में दक्ष पुण्डरीक तथा देवराम, ज्योतिष एवं शिक्षा में पारङ्गत कमलाकान्त भट्ट आदि को विविध दान प्रदान किये थे। चतुर्थ प्रकरण में महान् शासक सङ्ग्राम सिंह द्वितीय के मातृपक्ष के परिवार का चित्रण है। इसमें चाहुवान वंश के विकास की परम्परागत कथा का विस्तार प्रदर्शित किया गया है। उसी वंश में उत्पन्न सङ्ग्राम राव को चित्रकूट के राजा ने अपनी राजधानी में निवासार्थ आमन्त्रित किया था। उसके बाद कुछ अन्य शासक[1] भी देवकुमारिका के परिवार में हुए जैसा कि वैद्यनाथ

१.

प्रासाद-प्रशस्ति के शिलालेख से ज्ञात होता है। चतुर्थ प्रकरण द्वारा देवकुमारिका की व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित कुछ सूचनायें भी प्राप्त होती हैं। देवकुमारिका, मेवाड़ के राणा अमरसिंह की पत्नी तथा राजा सङ्ग्राम - सिंह की माता थीं। राणा अमरसिंह की मृत्यु और पुत्र के राज्याभिषेक के उपरान्त राजमाता का ध्यान धर्म की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने तीन तुला दान, किये, जिसमें प्रथम में देवकुमारिकाने अपने शरीर के भार के बराबर चाँदी का दान दिया। द्वितीय तुलादान में राजकुमारी चन्द्रकुमारिका तथा देवकुमारिका के पौत्र के शरीर के बराबर चाँदी (रजत) का दान किया गया। पुन: श्रीशारम (ग्राम) में शिवमन्दिर के निर्माणार्थ उन्होंने तृतीय तुलादान सम्पन्न किया। पञ्चम प्रकरण में वैद्यनाथ मन्दिर के प्रारम्भिकोत्सव के अवसर पर उपस्थित होने वाले महापुरुषों, क टा के राजा भीम, तथा डुंगरनामक पुर के स्वामी रामसिंह, प्रसिद्ध पुरोहितों आदि की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति का वर्णन है। इस शुभ कार्य में राजमाता देवकुमारिका को मन्त्री हरजी, परिचारिक के पुत्र 'ऊहा' पुरोहित सुखराम आदिजनों ने विशेष सहयोग प्रदान किया। सम्पूर्ण विधियों के पूर्ण हो जाने पर, अन्त में राजमाता ने चतुर्थ तुलादान क्रिया को सम्पन्न किया। अन्तिम प्रकरण की समाप्ति हरिश्चन्द्र द्वारा रचित शिवभक्ति पूरित आठ पद्यों के 'स्तोत्र' से हुयी है।

वैद्यनाथ प्रसाद में प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री —

देवकुमारिका की वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति में अनेक ऐतिहासिक तत्त्व उपलब्ध होते हैं। प्रथम प्रकरण में मेवाड़ के राजपरिवार का इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा राजपूत शासकों महत्त्वपूर्ण कार्यों पर भी प्रकाश पड़ता है अत: इस दृष्टि से 'प्रशस्ति' का विशेष महत्त्व है। जिन ऐतिहासिक तत्त्वों का देवकुमारिका ने निदर्शन कराया है वे सभी इति-

हास की कसौटी पर खरे उतरते हैं उदाहरणार्थ कुछ स्थल प्रस्तुत हैं —

'राणा' उपाधि को सर्वप्रथम राहप्प ने धारण किया और उसके बाद सभी शासकों ने उसका अनुगमन किया ।[१] सङ्ग्राम सिंह के पुत्र उदयसिंह ने, उदयपुर जैसे सुन्दर नगर का निर्माण करवाया था ।[२] पृथ्वी में धनुष-धारी, एवं धैर्यधारी प्रतापसिंह ने (मध्यकालीन भारत में), अन्य क्षत्रियों द्वारा छोड़ दिये जाने पर भी, म्लेच्छ शासकों से धर्म की रक्षा की ।[३] वह अकबर (म्लेच्छ शासक) के विरुद्ध भी अपने जीवन के अन्तिम समय तक युद्ध करता रहा ।[४] कर्ण के पुत्र, जगत् सिंह ने राजाङ्गण के सम्मुख ही गगनचुम्बी विष्णु मन्दिर की स्थापना करायी थी ।[५] उनके पुत्र, राजसिंह ने अपनी प्रजा के हितार्थ समुद्र के सदृश सरोवर का निर्माण कराया था तथा दिल्ली के शासक के आधीन नगर मालपुर को भी हस्तगत कर लिया था ।[६]

---

१. अथाभवद् राणपदं वितन्वन् राहप्पराणः प्रथितः पृथिव्याम् ।
तदादि-तद्वंशभवा नरेन्द्रा, 'राणे' ति शब्दं महितं भजन्ते ।।
— वैद्यनाथप्रसादप्रशस्ति १।१०

२. पार्थिवात् समभवत्ततः परं दीप्तिमान् उदयसिंह भूपतिः ।
यैन विश्ववलयैक -भूषणं भूभृतोदयपुरं विनिर्मितम् ।। — वै०प्रा०प्र० १।३३

३. प्रतापसिंहोऽथ बभूव तस्माद्, धनुर्धरो धैर्यधरो धरित्र्याम् ।
म्लेच्छाधिपैः क्षत्रकुलैन मुक्तो धर्मोऽप्यथैनं शरणं जगाम ।। वै०प्रा०प्र० १।३४

४. प्रतापसिंह सुरक्षितोऽसौ पुष्टः परं तुन्दिलतामगच्छत् ।
अकबर-म्लेच्छ-गणाधिपस्य परं मनः शल्यमिवाभवद्यः ।। वही १।३५

५. तेनोर्जिता षोडश-दान-माला-मान्धातृतीर्थादिवरेषु तेने ।
राजाङ्गणस्याग्रत एव विष्णोः प्रासादमभ्रंलिहमाततान ।। वही १।३८

६. ततोऽभवद् भूमिपतिः पृथिव्यां धराधिराजः किल राजसिंहः ।
येनैव पृथ्वी वलयैक-रूपं सरः समुद्रोपममन्वबन्धि ।। वही १।३६

जयसिंह के पुत्र, अमर ने वरसद्-विलास नामक प्रासाद तथा सरोवर के मध्य में जगमन्दिर नामक देवालय बनवाया था। शाल्पुर को जीतकर, विस्तीर्ण यश से पूर्ण, अमर का देहान्त हुआ।[१]

प्रथम प्रकरण में विभिन्न राजाओं के नाम का उल्लेख, उनके वैशिष्ट्य सहित किया गया है। चूंकि वे सभी क्षत्रियवंश में उत्पन्न होने के कारण रण में प्रवीण होते थे — अतः उनका 'राणा' उपाधि से विभूषित होना उचित ही था। राहप्प के उत्तराधिकारी, 'नरपाल' का नाम उचित ही था क्योंकि उसने अपनी प्रजा का पालन अद्भुत सफलता से किया था[२]। दिनकर का नाम इसलिए दिनकर रक्खा गया, क्योंकि उसे सूर्य के सदृश तेज प्राप्त था।[३] यशकर्ण भी महत्त्वपूर्ण था क्योंकि राणा यशकर्ण की महत्त्वपूर्ण कीर्ति सम्पूर्ण पृथ्वी पर विकसित हुयी।[४] अगणित हाथियों की शक्ति से सम्पन्न होने के

---

१. द्रष्टव्य वैद्यनाथप्रासाद प्रशस्ति १।४४, ४५, ४६, ४७ (वै०प्रा०प्र०)

२. राहप्प राणान्नरपालआसीद्, धर्नुभृतां मुख्यतरः पृथिव्याम्।
 जितारिवर्गः परमप्रधानः, सुश्राव्य-कीर्तिर्नरवन्नरेन्द्रः।। वही १।१२

३. दिनकरस्तु ततोऽप्यभवत् सुतो,
 दिनकरद्युतिभाङ्० नरपालतः।
 अवनिमण्डलभूपतिमण्डली,
 मुकुटरत्नविराजित-पङ्०कजः।।
 —वैद्यनाथप्रसादप्रशस्ति १।१३

४. यशकर्ण इत्यभवत्ततो यशसेवातिसमुज्ज्वला भुवम्।
 बुभुजे युगदीर्घ-बाहुभृन्निज- वीरत्वमवन् द्विषत्स्वपि।।
 —वै०प्रा०प्र० १।१४

कारण 'नागपाल' का नाम सार्थक था ।[१] अपनी प्रजा का पूर्ण सुख से पालन करता था-- अत: उसका नाम पूर्णपाल रखा गया ।[२] पृथ्वीमल्ल ने अपनी अद्वितीय शक्ति द्वारा हस्तिसम्पन्न अपने शत्रुओं को भी परास्त कर दिया था, उसे कभी किसी से पराजित नहीं होना पड़ा था ।[३] भुवनसिंह नामक धराधीश को देखकर, भूपालरूपी हाथी भाग खड़े होते थे ।[४] भीम के सदृश भीमसिंह अपने शत्रुओं के लिए साक्षात् भय का अवतार थे ।[५] जयसिंह का समग्र भूतल पर एकछत्र शासन था जय उनके अन्दर स्थिर होकर निवास करती थी ।[६] राम के अनुज लक्ष्मण की भाँति मेघनाद को परास्त करने वाले, लक्ष्मणसिंह ने भी अपने शत्रु को दबा दिया था ।[७] अपने नाम के अनुकूल ही अरिसिंह ने भूमण्डल के प्रत्येक प्रदेश को अपने आधीन कर लिया था जिसके कारण उनके चरणों के आगे की भूमि, नृपतियों के मस्तकों में लगी, तथा झुकने के कारण बिखरे हुए

---

१. ततस्तु नागपालोऽभून्नागायुत-बलोत्कट: ।
शशास वसुधामेतां प्रजां धर्मेण पालयन् ।। वैद्यनाथ प्रसाद प्रशस्ति, १।१५

२. ततोऽभवत् पूर्णमनोरथोऽयं, कृपाणपाणि: किल पूर्णपाल: ।
पूर्णं सुखै: पालयतीति विश्वं, तत्पूर्णपालत्वमधायि तेन ।। वही १।१६

३. तस्मादभूदुग्रतरश्च पृथ्वीमल्लोऽरिहस्तिष्विव हस्तिमल्ल: ।
ये युद्धमल्ला बलदर्पनद्धास्तस्मादवापु: खलु भङ्गमेव ।। वही १।१७

४. तस्माद् भुवनसिंहोऽभूद् धराधीशो महेन्द्रवत् ।
युधि भूपाल-मातङ्गा: पलायन्ते यदीक्षिता: ।। वही १।१८

५. तत्सूनुरुग्र: किल भीमसिंहो भयङ्करो भीम इवाहितानाम् ।
एकातपत्रां भुवमेत्य वीरो, निष्कण्टकां दीर्घभुजो बुभोज ।। वही १।१९

६. तदङ्गजन्मा जयसिंहराणो, भुवं समग्रां प्रथित: शशास ।
जयो हि यस्मिन् स्थिरतामुपेत्य, पुनर्न कस्मिन् स्थिरतां बभाज ।। वही १।२०

७. तदात्मज: सागरधीरचेता , नाम्ना ततो लक्ष्मणसिंह आसीत् ।
यो मेघनादं सुविजित्य गोभि:, स्थितो हि रामानुजवन्नरेन्द्र: ।। वही १।२१

मौतियों से सुशोभित थी ।[१] लदा सिंह ने लाख मुद्राओं का दान दिया था, तथा उसने शत्रियों को लाखबार युद्ध में पराजित किया था ।[२] 'मौकल' राणा के नाम का सन्धि विच्छेद (मा+उ= मौ) सहित व्युत्पत्ति की गयी है । उनमें विष्णु और शिव का अन्तर्भाव कर दिया गया है ।[३] मोकल से सर्वगुणोपपन्न कुम्भकी उत्पत्ति हुयी, जो कुम्भ से उत्पन्न ऋषि की भाँति, शुष्क शत्रु सैना रूपी समुद्र का पान करने के लिए अवतीर्ण हुए थे,[४] जो कुम्भकर्ण (रावण के भ्राता) से भी अधिक युद्ध में प्रवीण थे, जो कि कुम्भकर्ण के शत्रु अर्थात् राम के प्रति चित्त आसक्त किये थे जो कुम्भ (हाथी अथवा स्वर्ण या रत्नपूर्ण घड़ा) दान की ओर ध्यान लगाये है ।[५] रायमल्ल अनुपम शारीरिक शक्ति से समन्वित था -यही कारण था कि अन्य कोई मल्ल अथवा योद्धा उसके तुल्य नहीं था और न उसके सम्मुख स्थित हो पाता था ।[६] अमरसिंह अपने

---

१. तस्मान्महीयान् अरिसिंह भूपो, भूमण्डलाखण्डलतां जगाम् ।
   लसद्विसन्-कुञ्जर-मस्तकोत्थन् मुक्ताभिराकीर्ण-पदाग्र-भूमिः ।।
   --वै०प्रा०प्र० -- १।२२

२. लक्ष्यव्यधान् योधगणान् विभवे,
   लक्षावधि द्राग् धनमत्र दत्ते ।
   यो लक्षवारं विबभञ्ज शत्रू -
   ल्लक्षाभिधो स्मादुदभून्नरेन्द्रः । १।२६ (वही)

३. मकारवाची खलु विष्णुशब्द-
   उकारवाची किल शम्भुशब्दः ।
   तौ चेतसि स्वे कलयत्यभीक्ष्णं-
   ~~तौ-चेतसि-स्वे-कलयत्यभीक्ष्णं~~ तस्मान्नृपोमोकल इत्यमाणि।वही १।२७

४. स मोकलः सर्वगुणोपपन्नं सम्प्राप पुत्रं किल कुम्भकर्णम् ।
   यः जन्मैव विपक्ष-सैन्य-महार्णवस्यान्य इहावतीर्णः ।। वही १।२८

५. यः कुम्भकर्णादपि युद्धशाली, यः कुम्भकर्णारिमनाः सदैव ।
   यः कुम्भिदाने धृतचित्तवृत्तिः, स कुम्भकर्णेत्यभिधा बभार ।। १।२६

वैभव एवं समर्थता के कारण अमरेन्द्र (इन्द्र) के तुल्य थे,[1] उनके पुत्र कर्ण तो महाराज कर्ण के सदृश ही दानी थे।[2]

चतुर्थ प्रकरण में देवकुमारिका के मातृपक्ष के परिवार के वर्णन[3] में भी ऐतिहासिक तत्त्व मिलते हैं। चूंकि देवकुमारिका ने सर्वत्र तिथियों का उल्लेख स्पष्टत: कर दिया अत: तिथिनिर्धारण में कठिनता नहीं होती है। प्रशस्ति १८ वीं शताब्दीईका इतिहास जानने में भी सुविधा प्रदान करती है।

वैद्यनाथ प्रासाद प्रशस्ति में दी गयी उदयपुर के राणा शासकों की परम्परा पूर्णत: औचित्यपूर्ण है[4]। कवयित्री ने प्रशस्ति में इतिहास और कविता का एकीकरण बड़ी चतुरता से कराया है —यही कारण है कि उनकी रचना में शुष्कता का अभाव होने के साथ साथ रुचिकर भी हो गयी है। इतिहास की कसौटी पर भी उनकी कृति खरी उतरती है। प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि मेवाड़ के प्राय: सभी राणा (शासक) शिव के अनन्य उपासक थे। मङ्गलाचरण[5] में भी शिव की वन्दना की गयी है। मुनियों में श्रेष्ठ तपस्वी, हारीत भी शिव भक्त था।[6] उसे बापा नामक राणा ने अपना

---

१. अशेष भूमण्डलमण्डनश्री:, समग्र-भूभावमरैन्द्र-कल्प: ।
आसस्तु तेनैव कृता: सुमार्गा भूवै: स्ववंश्यैरपि येषु चैले ।।
—वैद्यनाथप्रसाद प्रशस्ति, १।३६

२. तस्मादभूत् कर्ण-समान - दान - प्रवाहभृद् भूभृदिहैव कर्ण: ।।
—वही १।३७

३. दृष्टव्य-वैद्यनाथप्रासादप्रशस्ति ४।१-१६

४. संस्कृत पोयटैसेस ~~भग्न~~ द्वितीय भाग, पृ० २३

५. शिवं साम्बमहं वन्दे विद्याविभवसिद्धये ।
जगत् सृतिहरं शम्भुं सुरासुरसमर्चितम् ।। वही, १।१

६. तथा मुनीनां प्रवरस्तपस्वी, हारीत नामा शिव-भक्त आसीत् ।
स एक-लिङ्गं विधिवत् सपर्याविधेरतोषिष्ट शिवेष्टनिष्ठ: ।। वही १।६

गुरु स्वीकार किया था ।[१]

प्रशस्ति के शीर्षक वैद्यनाथ प्रासाद प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि प्रशस्ति का मुख्य सम्बन्ध वैद्यनाथ के मन्दिर से होगा । किन्तु प्रशस्ति के प्रथम चार प्रकरणों में ऐसा कुछ भी वर्णन नहीं मिलता, जो कि वैद्यनाथ अथवा मन्दिर के वैशिष्ट्य का प्रदर्शन करता हो । प्रशस्ति का मुख्य ध्येय राजपरिवार का चित्रण है और इस दृष्टि से कवयित्री का प्रयास सफल हुआ है । वैद्यनाथ प्रसाद में एकलिङ्ग[२] रूप में शिव की स्थापना करायी गयी थी जो कि उदयपुर के पारिवारिक देवता थे । देवकुमारिका ने प्रथम वन्दनीय गणेश की[३] अपेक्षा शिव को ही प्राधान्य दिया है ।

कवयित्री ने वैदर्भी शैली का आश्रय लिया है । उनका पदलालित्य[४] आकर्षक है । उन्होंने शाब्दी क्रीड़ा की अपेक्षा अर्थ को महत्त्व[५] प्रदान किया है ।

---

१. वैद्यनाथप्रासादप्रशस्ति, श्लोक द्वितीय, पृ० २८ १।७

२. स भूयाद् एकलिङ्गेशो जगतो भूतयेविभुः ।
   यस्य प्रासादात् कुर्वन्ति राज्यं राणाः ध्रुवः स्थिरम् ।।
   —वैद्यनाथप्रासादप्रशस्ति, १।४

३. गुञ्जद्-भ्रमद्-भ्रमर-राजि-विराजितास्यं ,
   लम्बोदराननमहं नितरां नमामि ।
   यत् पादपङ्कजपरागपवित्रितानां,
   प्रत्यूहराशय इह प्रशमं प्रयान्ति ।।
   — वही १।२

४. तज्जन्य-भूमिरिदमन्तराले पतज्जलज्ज्योतिरिव व्यरोचत् ।
   निस्त्रिंश-बाणावलि कुन्तशक्ति-प्रासादिभिस्तत्र दिवापि तून ।।
   — वही २।१०

५. शब्दः संश्रूयते तत्र दीयतां भुज्यतामिति ।
   दीनानाथादयोऽप्यत्र मोदैरंस्तुष्टमानसाः ।।५।१४

'विज्जका' और उनका 'कौमुदी महोत्सव' (नाटक)

'कौमुदी महोत्सव' नाटक और उसका शीर्षक--

'कौमुदी महोत्सव' नामक नाटक की मूल प्रति ब्रिटिश मालाबार में प्राप्त हुयी थी उस जीर्णशीर्ण हस्तलिखित प्रति मद्रास सरकार की जी०ओ० मेस पुस्तकालय में उधार के रूप मी ली गयी थी और पुन: उसकी एक प्रतिलिपि बनाकर उसके स्वामी को वापस दे दी गयी थी ।

ब्रिटिश मालावार से प्राप्त हस्तलिखित प्रति भोजपत्र (श्रीताल) पर है जो लगभग १५० वर्ष प्राचीन है । उसी प्रति के साथ एक अन्य नाटक 'अभिरामचित्रलेखम्' भी प्राप्त होता है जो कि सम्भवत: तेरहवीं शताब्दी की रचना है । 'अभिरामचित्रलेखम्' की एक प्रति आज भी जी० ओ० मेस पुस्तकालय मद्रास में उपलब्ध होती है किन्तु उसके साथ 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक सम्बद्ध नहीं है । प्रस्तुत नाटक में कुछ भी शीर्षक नहीं मिलता है । नाटक की प्रस्तावना अथवा अन्त में कहीं पर भी उसके शीर्षक अथवा रचयिता के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है । नाटक के अन्त में 'कौमुदीमहोत्सव-समाप्त:' ऐसा उल्लेख मिलता है, किन्तु वह प्रस्तुत नाटक की कथा से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता । इससे यह अनुमान किया जाता है कि नाटक इसी नाम से जाना गया होगा जिसे श्रीरामकृष्ण - कवि और पण्डित एस०के० रामनाथ शास्त्री जी ने पारस्परिक सहयोग द्वारा 'कौमुदी महोत्सव'[१] शीर्षक प्रदान करके मद्रास से प्रकाशित किया ।

---

१. कौमुदीमहोत्सव -- दक्षिण भारती संस्कृत सीरीज़ नम्बर ४, मद्रास, १६२६ ई०

मालाबार में कुछ ऐसा प्रचलन था कि किसी रचना के शीर्षक का उल्लेख नहीं किया जाता था । प्राय: सभी नाटक रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि जो कि महाराज उदयन की वीरता के चित्रण से सम्बन्धित हैं, एक मात्र शीर्षक 'वत्सराज-चरितम्' के अन्तर्गत रख दिये गये हैं । भास के नाटक भी विविध नामों से प्राप्त होते हैं जैसे कर्णभार' का 'कवचतन' ,'कुण्डलाहरण' तथा 'उरुभङ्ग' का 'गदायुध' 'अभिषेक' का 'रामाभिषेक, 'प्रतिमा' नाटक का 'प्रतिमाराम' अथवा 'प्रतिमा-दशरथ' के रूप में भी प्रसिद्ध हुए । अत: यह कल्पना की जा सकती है कि 'कौमुदी महोत्सव' भी 'अभिरामचित्रलेखम्' नाटक के साथ ही रख दिया गया होगा ।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस नाटक का नामकरण 'कौमुदी महोत्सव' क्यों किया गया जब कि नाटक के कथानक अथवा नायक कल्याण वर्मन की जीवन कथा के साथ इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं जान पड़ता ? किन्तु नाटक के कलेवर को देखते हुए केवल यही कहा जा सकता है कि चूंकि यह नाटक मगध के राजा कल्याणवर्मन् के राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर पाटलिपुत्र के सुगाङ्ग प्रासाद में प्रतिवर्ष शरद् पूर्णिमा को मनाये जाने वाले उत्सव के दिन अभिनीत किया गया था और उसी दिन कीर्तिषेण की पुत्री के साथ कल्याणवर्मन् का विवाह संस्कार भी सम्पन्न हुआ था । प्राय: सभी नाटकों का आरम्भ, मध्य, अथवा अन्त में कहीं पर भी नाटक के नाम तथा कर्ता का उल्लेख सूक्ष्म रूप से कर दिया जाता है किन्तु 'कौमुदीमहोत्सव' में ऐसा कुछ भी नहीं मिलता है । एक मात्र सूत्रधार के शब्दों – 'अरे ! यह शरद् काल सार्वजनिक महोत्सव के रूप में उपस्थित हो गया ।'[१] के द्वारा मगध में शरद् ऋतु में प्रति वर्ष मनाये जाने वाले 'कौमुदीमहोत्सव' की ओर सङ्केत किया गया है । कौमुदी महोत्सव के इस पर्व की चर्चा भास के नाटकों तथा मुद्राराक्षस[२] में भी आयी है ।

---

१. 'अयं समुपस्थित: सर्वजनसामान्यमहोत्सवभूत: शरत्समयसमवतार:' – कौमुदी-महोत्सव, प्रथम अङ्क

२. मुद्राराक्षस, अङ्क द्वितीय

किन्तु यदि एक वार्षिक उत्सव के रूप में प्रस्तुत नाटक का नामकरण `कौमुदी महोत्सव` कर दिया गया तो यह कुछ उचित नहीं प्रतीत होता है। यद्यपि नाटक का अभिनय शरद्पूर्णिमा के पर्व पर किया गया था किन्तु फिर भी नाटक की मुख्य कथा और नाटक के शीर्षक में सामीप्य सम्बन्ध होना अनिवार्य सा लगताहै। नाटक के कर्ता के मस्तिष्क में `कौमुदी-महोत्सव` पर्व का महत्त्व उतना नहीं विद्यमान था जितना कि नाटक के नायक कल्याणवर्मा को मन्त्री मन्त्रगुप्त के द्वारा बिना किसी रक्तपात आदि के मगध के शासन दिलवाने का प्रयत्न विराजमान था। जैसा कि नाटक की प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन है, `किस नाटक का अभिनय किया जाय ? इसी राजा के समतीत चरित को आगे बना कर लिखा गया नाटकअभिनीत किया जाय।`[१] इस कारण नायक के जीवन चरित की ही नाटक में प्रधानता है। सम्पूर्ण नाटक में लेखक ने अपनी रुचि इस ओर व्यक्त की है। किन्तु प्रमुख वार्षिक पर्व के अवसर पर अभिनीत होने के कारण ही नाटक का नाम `कौमुदी-महोत्सव` रखा गया।

`कौमुदीमहोत्सव` का रचयिता --

मूल पाण्डुलिपि के आरम्भ में ही रचयिता के नाम का जो सङ्केत किया गया है उसके आदि अक्षर कीटभक्षित हो गये हैं अन्तिम दो अक्षर (क्या) शेष हैं। यह तृतीयान्त पद स्त्रीलिङ्ग में है अतः इस नाटक का कर्ता कोई पुरुष न होकर स्त्री ही होगी। श्रीरामकृष्ण कवि महोदय ने इससे विज्जका या विज्जिका का नाम की प्रसिद्ध संस्कृत कवयित्री को `कौमुदी महोत्सव` नाटक की कवयित्री मानने का अनुमान किया किन्तु प्रस्तुत नाटक के एक पद्य के दर्शन से उनका

---

१. कौमुदी महोत्सव --प्रथम अङ्क

२. भवतु यतस्यैव राज्ञः समतीत चरितमधिकृत्य (विज्जि) कया निबद्धं नाटकम् -- कौमुदीमहोत्सव -- अनुवादक देवदत्त शास्त्री, जननी कार्या०, प्रयाग।

मस्तिष्क सन्दिग्ध हो उठा — " प्रथम विजया भगवती की जय हो, देवताओं की जय हो , स्वयं महादेव की जय हो और श्रीमान् अनन्त तथा नारायण की जय हो ।"[१] श्री कवि जी का यह तर्क है कि `विद्या` का प्राकृत रूप विज्जा है और उसका `विजया` के साथ किसी भी प्रकार का भाषा वैज्ञानिक सम्बन्ध नहीं है । ` अनन्त-नारायणौ` से त्रिवेन्द्रम् के प्रसिद्ध देवता की ओर सङ्केत किया गया है और उस दृष्टि से त्रिवेन्द्रम् की विजया नामकी कोई राजकुमारी अनन्तनारायण की उपासिका के रूप में भी मानी जा सकती है ।

प्रस्तुत पद्य का `विजया` पद एक अन्य दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है । नाटक के मङ्गलाचरण में जब सूत्रधार भगवान् शिव की स्तुति करता है उसके तुरन्त बाद ही वह शरद् समय के शुभ पर्व की स्मृति भी करता है । वस्तुत: पश्चिम भारत में विजयादशमी और शरदपूर्णिमा का पर्व प्रधान पर्व है इससे यह ज्ञात होता है कि रचयित्री का ध्यान त्रिवेन्द्रम् के प्रसिद्ध अनन्तनारायण की ओर से दूर चला गया था ।

इस प्रकार यह माना जा सकता है कि नाटक की रचयित्री विज्जका हैं, जो कि पूर्वी भारत में उत्पन्न हुयी थी । विज्जका के नाम पर प्रसिद्ध सुभाषित-सङ्ग्रह शाङ्र्गधरपद्धति में एक पद्य प्राप्त होता है —

" नील कमल के दल के समान श्याम वर्ण वाली मुझ विज्जका को जाने बिना ही व्यर्थ में दण्डी ने सरस्वती को सर्वशुक्ला कह दिया ।"[२]

दण्डी ने अपने काव्यादर्श में सरस्वती को `सर्वशुक्ला`[३] कहा है, उसी

---

१. जयति प्रथमं विजया जयन्ति देवा: स्वयं महादेव: ।
श्रीमन्तौ भगवन्तावनन्तनारायणौ जयत: ।। —कौमुदीमहोत्सव ४।१६

२. नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती ।। —शार्ङ्गधरपद्धति ९८०

३. काव्यादर्श —१।१

की ओर इङ्गित करते हुए वाकी देवी की साक्षात् सरस्वती का अवतार विज्जका ने दण्डी को उपालम्भ दिया है। विज्जका के इस कथन से यह ज्ञात होता है कि विज्जका दण्डी के समकाल की थीं, और उन्होंने अनेक पद्यों की रचना भी की थी। चूंकि विज्जका ने दण्डी द्वारा प्रयुक्त `सर्वशुक्लासरस्वती` पद का उल्लेख अपनी रचना में किया है अत: इतना निश्चित है कि विज्जका दण्डी की रचनाओं से पूर्णरूपेण परिचित थीं। विज्जका के नाम से अनेक पद्य सभाषित ग्रन्थों में मिलते हैं जिनका विस्तृत वर्णन पृथक अध्याय में किया गया है।

विज्जका की एकरूपता—

महाकवि दण्डी की `सर्वशुक्ला सरस्वती` और विज्जका की दर्पपूर्ण उक्ति के अतिरिक्त भी अन्य कवियों तथा संस्कृत के नाटककारों ने इनका उल्लेख किया है प्रसिद्ध संस्कृत आलोचक राजशेखर ने भी सरस्वती का अवतार कर्णाट प्रदेश की निवासिनी विजया अथवा विजयाङ्का की प्रशंसा में सूक्ति मुक्तावली[१] में लिखा है — विजयाङ्का वैदर्भी शैली में कालिदास के पश्चात् प्रमुख हैं।

एक अन्य पद्य के द्वारा भी विज्जका, विजया, विजयाङ्का आदि के रूप में विख्यात कर्णाटी कवयित्री का उल्लेख किया गया है —

> एको भून्नलिनात्ततश्च पुलिनाद् वल्मीकतश्चापर,
> ते सर्वे कवयो भवन्तु गुरवो तेभ्यो नमस्कुर्महे।
> अर्वाञ्चो यदि गद्यपद्यरचनैश्चेतश्चमत्कुर्वते,
> तेषां मूर्ध्नि ददामि वामचरणं कर्णाटराजप्रिया ॥

उपर्युक्त पद्य रचयित्री ने आत्मश्लाघा तथा कर्णाट शासक के प्रिया के रूप रूप में अपनी महत्ता का दिग्दर्शन कराया है। नेरुर के ताम्रपत्र के अभिलेख[२]

---

१. सरस्वतीव कार्णाटी विजयाङ्का जयत्यसौ।
 या वैदर्भ गिरां वास: कालिदासादनन्तरम् ॥ सूक्तिमुक्तावली ४।५३

२. "परमेश्वरताम् अभिवारित-विक्रमादित्या :, तस्य ज्येष्ठभ्रातु: श्री चन्द्रादित्य-पृथ्वीवल्लभमहाराजस्य प्रियमहिषी विजया-भट्टारिका" —

से प्रमाणित होता है कि दक्षिण कर्णाटक प्रान्त के महाराज पुलकेशिन् द्वितीय के राजकुमार चन्द्रादित्य की स्त्री विजया भट्टारिका थीं ।

इसप्रकार दण्डी की समकालिकी विज्जका एवं विजया भट्टारिका एक ही कवयित्री प्रतीत होती हैं । और इसमें लेशमात्र भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन्होंने कौमुदीमहोत्सव के पद्यमें अपनी प्रधानता तथा महत्ता व्यक्त की है—

> 'जयति प्रथमं विजया, जयन्ति देवा स्वयं महादेव: ।
> श्रीमन्तौ भगवन्तावनन्तनारायणौ जयत: ।।[1]

यहाँ पर 'विजया' से 'विजया देवी' का अर्थ भी लिया जा सकता है क्योंकि इनका पर्व भी शरद् ऋतु में ही मनाया जाता है । अत: यह निस्सन्दिग्ध है कि प्रस्तुत पद्य दो अर्थों से समन्वित है । साथ ही नाटक के अन्य स्थल द्वारा नाटककर्त्री की आत्मकथा का परिचय मिलता है । पद्य इस प्रकार है —

> कृष्णाशारां कटाक्षेण कृषीवल-किशोरिका ।
> करोत्येषा कराग्रेण कर्णे कलममञ्जरीम् ।। [2]

यहाँ पर दो अर्थ स्पष्ट झलकते हैं —प्रथम के अनुसार — ' यह किसान कन्या अपने कटाक्षों से कृष्णा मृग को तिरस्कृत करती हुई, हाथों की उंगलियों से कानों में धान की मञ्जरी खोंस रही है ।' यहाँ पर अन्य अर्थ भी दृष्टव्य है । जिसमें ' कर्णे कलममञ्जरीं' पद का विशेष महत्त्व है । क्योंकि कुछ लेखकों को अपने कान में कलम लगाने का अभ्यास-सा हो जाता है जिसे वे हाथ के अग्रभाग अर्थात् उंगलियों से लगाते हैं । साथ ही 'कृषीवल-किशोरिका' पद भी द्व्यर्थक है इसके द्वारा कवयित्री के पिता का नाम कृषीवल माना जा सकता है । चन्द्रादित्य की पत्नी विजयाभट्टारिका के जन्मस्थान के बारे में कुछ पर यह भी कहा जा सकता है कि वे पूर्वी भारत की थीं और बाद में उनका विवाह चन्द्रादित्य के साथ हो गया था । उन्होंने 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक की

---

१. कौमुदीमहोत्सव ४।१६

२. कौमुदीमहोत्सव, १।३

रचना अपने विवाह से पूर्व पाटलिपुत्र में की ।

कौमुदीमहोत्सव का रचनाकाल—

'कौमुदीमहोत्सव' नाटक का रचना काल एक विवादग्रस्त विषय है। नाटक की वर्ण्य घटनाओं की पृष्ठभूमि में डा० काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार यह नाटक ३४० ई० में लिखा गया है।[1]

डा० जायसवाल ने अपने मत के समर्थन में जो तर्क प्रस्तुत किये हैं वे इस प्रकार है — (१) नाटक के वर्ण्य विषय, इतिहास की घटना आदि के अध्ययन से यह निश्चित है कि नाटक समकाल में बीती घटनाओं को लेकर लिखा गया है जैसा कि कौमुदी महोत्सव में प्राप्त कुछ अंशों द्वारा सङ्केत मिलता है —

तदानीं तत्रभवत: पाटलिपुत्राधिपते: सुगृहीतनाम्नो देवस्य कल्याण-वर्णन: प्रतिनवराज्यलाभसंवर्धितदृष्टिवृद्धिपरसङ्कुले पुनरयमपर: प्रत्यासीदति कौमुदी-महोत्सवारम्भ:, तदस्मपि स्वकुलोचितेन सङ्गीतकसेवाधिकारेण लब्धावसरो राज-कुलं प्रविशामि। (प्रविश्य) प्रयुक्तपूर्वेषु पूर्वसूरिसूक्तिविशेषेषु का पुनरभिनव-रमणीया कृतिरभिनेतव्या। भवतु, यत्तदस्यैव राज्ञ: समतीतं चरितमधिकृत्य (विज्जि) कया निबद्धं नाटकम्। तदिदानीमग्रत: कृत्वा मगधराजान्त:पुरमवतरामि। (कौमुदी-महोत्सव प्रथम अङ्क)।

केन कारणेण विरचा पकिदिए वंससेण वुदमस्स', तेनैव शीलायरा-धेन। < < तदो तदो कादं 'एरिसवंणस्स से रायसिरी ? < < तत: संप्रवृत्ते सङ्ग्रामे वधमात्रमप्येनं पुत्रीकृतत्वादपहस्तयित्वा लिच्छविकुलमन्त: सापितवान् देव: (अङ्क ४) । 'पुनरपि यदृच्छयागतैस्तापसैर्नीता- स्तपोवन-नमिति पर्यवसिता कथा' (अङ्क ४) इन सभी घटनाओं को वे कवयित्री के समक्ष

---

१. अन्धकारयुगीन भारत, पृ० २५६, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, १९३२

घटित मानते हैं।

(२) नाटक में वर्णित ऐतिहासिक पात्रों एवं प्रसङ्गों के आधार पर भी डा० जायसवाल ने इसे ३४० ई० की रचना मानने का प्रयास किया है। कौमुदीमहोत्सव का चण्डसेन का वे गुप्त साम्राज्य के प्रतिष्ठित शासक चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ साम्य स्थापित करते हैं। चण्डसेन, मगध के राजा सुन्दरवर्मन् का दत्तक पुत्र था, किन्तु जब से सुन्दरवर्मन् के अन्य पुत्र उत्पन्न हो गया, तभी से वह भयभीत रहने लगा। कल्याण-वर्मन् के पिता सुन्दरवर्मा को समुद्रगुप्त के पिता चन्द्र-गुप्त ने लिच्छवियों की सहायता से जीतकर मगध का राज्य ३२० में हस्तगत कर लिया चन्द्रगुप्त की जाति कारस्कर थी, धर्मशास्त्र के अनुसार जिनके यहां ब्राह्मणों का जाना भी निषिद्ध था। चन्द्रगुप्त ने मगधराज को जीत लिया और सुन्दर-वर्मा उसमें मारा गया। तब सुन्दरवर्मन् के एक मात्र शिशु को उसके रक्षक किसी प्रकार बचाकर किष्किंधा (पंपासर) ले गए और वहां उसका बीस वर्ष तक लालन पालन किया। कल्याण वर्मन के बड़े होने पर उसके हितैषी मन्त्रियों ने पुन: उसका मगधराज पर अभिषेक करने की बात सोची। प्रजा चन्द्रगुप्त को नहीं चाहती थी उसे अपने वास्तविक उत्तराधिकारी शासक के प्रति स्नेह था। सन् ३४० ई० में चन्द्रगुप्त जब विद्रोही शबरों का दमन करने के लिए अमरकण्टक की ओर गया था। कल्याणवर्मन् के सहायकों ने प्रजा के सहयोग से पाटलिपुत्र के सुङ्गाङ्ग-प्रासाद में उसका राज्याभिषेक कर दिया। संभवत: इस कार्य में वाकाटक सम्राट प्रवरसेन का भी हाथ था और मगधराज्य के अधिकार से चन्द्रगुप्त च्युत हो गया। कुछ दिनों के पश्चात् उसकी मृत्यु हो गयी। राज्याभिषेक के अवसर पर ही, कल्याणवर्मन् का विवाह मथुरा के राजा कीर्तिषेण की पुत्री के साथ सम्पन्न हो गया। सन् ३४४ ई० में प्रवरसेन की मृत्यु हो गयी, तब चन्द्रगुप्त के होनहार उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त को पुन: मगध पर अधिकार करने और पूर्णरूपेण स्वातं-स्वतन्त्रता प्राप्त करने का अवसर मिला। उसने मगध को विजय करने के लिए सेना

---

१. अन्धकारयुगीन भारत, पृ० २५६, काशीनागरी प्रचारिणी सभा, सन् १९३२

भेज दी और स्वयं कौशाम्बी में उन शासकों के साथ युद्ध किया जो कल्याणवर्मन् की सहायता के लिए जा रहे थे (गणपति, नाग, नागसेन, अच्युतनन्दी, बलवर्मन् और वे सभी युद्ध में मारे गये । मगध का कल्याणवर्मन् (जिसे समुद्रगुप्त के प्रयागस्तम्भ लेख में कोतवंश का राजा कहा गया है, जिसके नाम वाला अंश अभिलेख में नष्ट हो गया) जेल की जेल में पकड़ लिया गया और इस प्रकार समुद्र गुप्त ने अ पिता के राज्य को पुन: प्राप्त किया ।[१]

वस्तुत: डाक्टर जायसवाल ने 'कौमुदी महोत्सव' के आधार पर जिन ऐतिहासिक तत्त्वों को सम्मुख रखा है, वे सभी संशयपूर्ण हैं । उनके मतानुसार इस नाटक का रचनाकाल ३४० ई० है किन्तु कुछ पाश्चात्य विद्वान् इस नाटक का रचनाकाल ३४० ई० स्वीकार नहीं करते जिनमें विन्टरनित्ज भी हैं, तथा कुछ पौरस्त्य विद्वान् जिनमें पं० दीनेश चन्द्रचट्टोपाध्याय[२] प्रधान हैं, उन्होंने डा० जायसवाल के मत का खण्डन अनेक तर्कों सहित किया है ।

पं० चट्टोपाध्याय जी का प्रथम आग्रह यह है कि नाटक के वर्ण्य विषय तथा इतिहास की घटना के आधार पर किसी भी नाटक का रचना काल निश्चित करना उचित नहीं है । कोई भी नाटककार किसी भी समय में अतीत की घटना के कथानक को लेकर नाटक का सूत्रपात करता है, उस काल एवं नाटककार के काल में साम्य होना अनिवार्य नहीं है । कौमुदीमहोत्सव की भांति उत्तररामचरित की

---

१. अन्धकारयुगीन भारत -पृ० २०७, २४८-२४६, २५६-२५७, २८६-२६२
पुन: देखिए- दर्पोत्थापित्येव कौतमुलजं पुष्पाह्वये क्रीडता । सूर्यनित्य.......
रुद्रदेव-मातिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म-गणपति नाग-नागसेनाच्युत-नन्दिबलवर्माद्यनेकार्यावर्त राज-प्रसभोद्धरणोद्वृत्त प्रभावमहत: । हिस्टारिकल एण्ड लिटरेरी इन्स्क्रिप्शंस (समुद्रगुप्त का अभिलेख) पृ० ७३-७४

२. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, खण्ड १४ (सन् १६३८), पृ० ५८२-६०६

प्रस्तावना में भी सूत्रधार कहता है कि —

'एषोऽस्मि कार्यवशात्....... राजगृहमेव स्वगृहमिव निर्भयेनोपतिष्ठाव:'

अत: यहाँ पर भी यह कहा जा सकता है कि सूत्रधार तथा नाटकीय पात्रों

का समय एक ही है। उत्तररामचरित की भाँति ही वेणीसंहार में सूत्रधार द्वारा नाटक सम्बन्धी परिचय देने के बाद ही पर्दे के पीछे से सुनायी पड़ता है —

भाव त्वर्यतां त्वर्यताम् । एते खल्वार्यविदुराज्ञया पुरुषा: सकलमेव शैलूषजनं व्याहरन्ति — 'प्रवर्त्यन्तामपरिहीयमानमातोद्यविन्यासादिका विधय: । .... प्रस्थातुकामस्य ' इति ॥

तभी प्रसन्न होकर सूत्रधार कहता है —

अहो नु खलु भो: भगवता कमलनाभप्रभवस्येति...... कृतम् । तत्किमिति पारिपार्श्विक नारम्भयसि कुशीलवै: सह संगीतम् ।'

उसी समय नट का प्रवेश होता है और उन दोनों के वार्तालाप से यह प्रतीत होता है कि जैसे वे दोनों कौरव पाण्डवों के काल के ही हों।

शूद्रक रचित 'मृच्छकटिक' में सूत्रधार अपनी पत्नी से अपने मित्र को राजा पालक द्वारा जाने वाले दण्ड के बारे में इस प्रकार चर्चा करता है। मानो वह शासक के समकाल का हो। विक्रमोर्वशीय तथा मुद्राराक्षस में भी इसी प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है जिनको देखने से ऐसा लगता है कि वे जैसे सभी नाटककार के सामने घटित हुयी हों। 'रत्नावली' के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में यौगन्धरायण का कथन तथा भास के प्राय: सभी नाटकों के प्रारम्भिक दृश्य में प्रथम अङ्क में वक्ता के द्वारा कुछ इसी प्रकार के अतीत से सम्बन्धित उल्लेख प्रस्तुत किये गये हैं।

अत: 'कौमुदीमहोत्सव' के आधार पर उसकी रचयित्री को ३४० ई० में उदित हुआ नहीं माना जा सकता।

पं० चट्टोपाध्याय जी नाटक में वर्णित ऐतिहासिक तत्वों के आधार पर इसे ३४० ई० की रचना मानने के पक्ष में नहीं है। वे डा० जायसवाल द्वारा प्रस्तुत की गयी ऐतिहासिक सामग्री को भी असत्य ठहराते हैं। उनका कथन है कि 'कौमुदीमहोत्सव' में चित्रित किसी भी पात्र के बारे में शिलालेखों, सिक्कों तथा साहित्यिक उद्धरणों के द्वारा परिचय नहीं मिलता है। नाटक के पात्र चण्डसेन का डा० जायसवाल ने चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया है क्योंकि दोनों ने लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करके, उनकी सहायता से राज्यलाभ किया था। इसमें सन्देह नहीं है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी के साथ विवाह (सम्बन्ध) किया था, जिसके कारण चन्द्रगुप्त प्रथम तथा उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने वहाँ शासन किया था। किन्तु चण्डसेन के बारे में 'कौमुदीमहोत्सव' में केवल इतना ही कहा गया है कि उसका लिच्छवियों के साथ सम्बन्ध था —ततः स्वयं व्यपदिशन्नपि मगधकुलवैरिभिर्म्लेच्छैः सह सम्बन्ध कृत्वा लब्धावसरः कुसुमपुरमुपरुद्धवान् (पृ०३०)। यहाँ पर किसी भी प्रकार के विवाह सम्बन्ध के लिए नहीं कहा गया है, बल्कि यह राजनैतिक सम्बन्ध है।

यह अवगत करना दुष्कर है यदि चन्द्रगुप्त प्रथम और चण्डसेन एक ही व्यक्ति है तो क्यों वह किसी राजा का दत्तक पुत्र होगा जबकि उसका पिता घटोत्कच स्वयं एक राजा था ? समुद्रगुप्त के समय के गुप्त अभिलेखों तथा चन्द्रगुप्त प्रथम और कुमारदेवी के काल के सिक्कों से पता चलता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम अनेक राजाओं का शासक था (महाराज) गुप्त और घटोत्कच के राज्य को प्राप्त करके वह सम्राट् बन गया, (महाराजाधिराज) उसने लिच्छवी राजकुमारी के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपने राज्य का विस्तार किया। दूसरी ओर चण्ड-सेन का शासन केवल मगध के सिंहासन तक ही सीमित था। क्योंकि यदि लिच्छवियों ने चण्डसेन को सिंहासनारूढ़ किया होता तो कल्याणवर्मा के द्वारा पुनः अभिषिक्त होने पर लिच्छवि चण्डसेन की सहायता अवश्य करते। किन्तु 'कौमुदी महोत्सव' में इस प्रकार चित्रण नहीं मिलता है। नाटक में स्पष्ट कह

दिया गया है कि कल्याणवर्मन् के राज्य लाभ के बाद चण्डसेन मार डाला गया-
दिष्ट्येदानी प्रतिलब्धराज्याभिषेको देव: कल्याणवर्मा दिष्ट्या श्री-कौमुदी
वत्सानुबन्धों निहतश्चण्डसेनहतक: ।। (पृ० ३६) इसी प्रकार का एक पद भी
कौमुदीमहोत्सव में प्राप्त है -

प्रकटितवर्णाश्रमपथमुन्मूलितचण्डसेनराजकुलम् ।
कल्पन(१) मिव नमति जन: (सकल:) कल्याणवर्माणाम् ।।

अत: चण्डसेन के सम्पूर्ण परिवार को कल्याणवर्मन् ने नष्ट कर दिया था । किन्तु इसके विपरीत चन्द्रगुप्त प्रथम का अन्तिम समय सुखपूर्वक बीता था और वह समुद्रगुप्त आदि पुत्रों को छोड़कर मरा था जैसा कि प्रयाग-स्तम्भ-लेख के द्वारा ज्ञात होता है । चन्द्रगुप्त प्रथम के अन्तिम जीवन और चण्डसेन के जीवन में महान् अन्तर हैं अत: ये दोनों एक नहीं माने जा सकते हैं ।

इन दोनों के नामों में भी अत्यधिक अन्तर है । डाक्टर जायसवाल ने संस्कृत चन्द्र[1] के प्राकृत रूप को 'चण्ड' माना है जिसका समर्थन श्री दशरथ शर्मा[2] ने भी किया है । संस्कृत चन्द्र का प्राकृत रूप 'चन्द' है, 'चण्ड' नहीं । 'कौमुदी-महोत्सव' के प्रारम्भिक भाग में ही 'चण्ड' का प्रयोग किया है 'चन्द्र' का नहीं नाटक के चतुर्थ अङ्क में पात्र (चण्डसेन) के नाम के दोनों रूप (संस्कृत , प्राकृत) सामने आते हैं - प्राकृत-चण्डक्क संस्कृत='चण्ड-क', और बाद में सम्पूर्ण नाटक में संस्कृत में 'चण्डसेन' ही प्रयुक्त हुआ है । अत: यह कहना अनुचित है कि 'चण्ड' और 'चन्द्र' में समानता है ।

अत: यह स्पष्ट है कि कौमुदी महोत्सव का चण्डसेन[3] और गुप्त साम्राज्य का प्रसिद्ध शासक चन्द्रगुप्त प्रथम दो पृथक् शासक हैं । इस दृष्टि से

---

१. एनल्स आफ भण्डारकर औरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट खण्ड, १६-पृ० ११३
२. वही, पृ० २७६
३. 'कारस्कर: स खलु सम्प्रति पार्थिवेषु ' -कौमुदीमहोत्सव ४।६

कल्याणवर्मन् चण्डसेन तथा कीर्तिषेण का समय और ऐतिहासिकता भी प्रमाणिक नहीं मानी जा सकती । तथा इसकी कथावस्तु नाटक की पूर्व सीमा निर्धारित करने में भी सहायक नहीं होती ।

डा० जायसवाल द्वारा बताये गये कौमुदी-महोत्सव के रचनाकाल से सम्बन्धित मत का खण्डन करके पं० चट्टोपाध्याय जी ने इस नाटक को ईसा की आठवीं शताब्दी से पूर्व की रचना नहीं माना है । उनका विशेष आग्रह यह है कि 'कौमुदीमहोत्सव' का प्रथम मङ्गल श्लोक जो शिव की वंदना में कहा गया है —

श्रीमद्वैयाघ्रचर्मास्तररचितले स्थण्डिले संनिषण्ण:
कृत्वा पर्यङ्कबन्धं फणामणिकिरणधारिणा तक्षकेण ।
नानात्वग्रन्थिभेदीं धियमिव विकिरन् दन्तकान्तिच्छलेन ,
ब्रह्मव्याख्याननिष्ठस्त्वव भवतु तम:कृत्यैकृत्तिवासा : ।।१।१

यहाँ पर प्रयुक्त 'श्रीमद्वैयाघ्रचर्मास्तररचिततले स्थण्डिले संनिषण्ण:' और 'ब्रह्मव्याख्याननिष्ठ:' पद आदि शङ्कराचार्य की ओर सङ्केत करते हैं । चूंकि महान् वैदान्ती शङ्कराचार्य का समय ७८८-८२० ई० माना जाता है अत: यह नाटक भी इसी समय के आस पास की रचना है । अत: पं० चट्टोपाध्याय भी जी कौमुदीमहोत्सव का रचनाकाल आठवीं शताब्दीई के बाद मानते हैं ।

किन्तु पं० चट्टोपाध्याय जी का यह कथन संदेहास्पद है क्योंकि यदि 'ब्रह्मव्याख्याननिष्ठ' पद से ही शङ्कराचार्य की ओर लक्ष्य मान लिया जाय तो 'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्यस्थितं रोदसी'[1] कालिदास के इस मङ्गलाचरण में 'वेदान्तेषु' पद के प्रयोग से भी शङ्कराचार्य का भ्रम हो सकता है । किन्तु 'कौमुदीमहोत्सव' में केवल भगवान् शङ्कर की स्तुति की गयी है उसका आदि शङ्कराचार्य के साथ उचित सम्बन्ध नहीं लगता है । बृहत्कथा की अद्भुत विद्याधर कथायें शिव के मुख से ही निकली हुयी है । 'वेदान्त' और 'ब्रह्म की व्याख्या'

---

१. विक्रमोर्वशीय १।१, चौखम्भा संस्करण, १९५३

उपनिषद्काल से ही प्रसिद्ध विषय रहे हैं।

पं० चट्टोपाध्याय जी के मतानुसार यह नाटक पाञ्चाली रीति की रचना है किन्तु हम उसमें दण्डी के 'काव्यादर्श' में निरूपित वैदर्भी शैली के लक्षण पाते हैं। लेखिका ने इसी प्रस्तावना में गौड सम्मत अनुप्रासयुक्त माधुर्य गुण के एक उत्तम श्लोक को विद्यमान देखते हैं।[१]

अतः यह स्पष्ट पता चलता है कि यह नाटक न तो ३४० ई० की रचना है और न ही आठवीं शताब्दी ईसवी के बाद की रचना है अपितु सन् ६६० ई० के आस पास की रचना मानना उचित है।

जैसा कि नाटक के रचयिता के सम्बन्ध में चर्चा करते समय कहा जा चुका है कि विज्जका या विजया या विजयाङ्का दण्डी की समकालिकी है। वे दक्षिण कर्णाटक प्रान्त के महाराज पुलकेशिन द्वितीय के राजकुमार चन्द्रादित्य की विदुषी पत्नी विजया-भट्टारिका है। इनके सम्पूर्ण 'कौमुदीमहोत्सव' पर कालिदास की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। नाटक के तत्त्वों के आधार पर यदि हम नाटक को विजया-भट्टारिका का समकालीन मानते हैं तब निश्चित रूप से नायक का समय सातवीं शताब्दी का मध्यकाल रहा होगा। किन्तु ज्ञात प्रमाणों के द्वारा, जिनमें मगध में शासन करने राजाओं की सूची दी गयी है, कहीं भी सुन्दरवर्मन् या कल्याणवर्मन् के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। केवल एक अभिलेख से यह परिचय मिलता है कि इस समय मगध में वर्मन् साम्राज्य का शासन था। महाशिवगुप्त के समय का शिरपुर (रायपुर) अभिलेख, जो कि वासता देवी द्वारा हरिमन्दिर के निर्माण के समय लिखा गया था, द्वारा प्रमाणित होता है कि —

---

१. कृष्णसारां कटाक्षेण कृषीवल-किशोरिका।
करोत्येषा कराग्रेण कर्णे कलमम्ञ्जरीम् ॥
— कौमुदी महोत्सव १।३

"चन्द्रवंशी, चन्द्रगुप्त, उनके पुत्र हर्षगुप्त ने वासता (मगध में वर्मन् साम्राज्य के सूर्यवर्मन् की पुत्री) से विवाह किया, उन दोनों का पुत्र महाशिवगुप्त-बालार्जुन हुआ।"[१]

महाशिवगुप्त का समय आठवीं शताब्दी ईसवी दिया गया है। यद्यपि मगध शासक के रूप में सुन्दरवर्मन् के नाम का उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता है, तथापि यह अनुचित नहीं होगा यदि उस सूर्यवर्मन् के साथ संयुक्त कर दिया जाय। जब वासता का सम्बन्ध आठवीं शताब्दी ईसवी से है तो सूर्यवर्मन् —वासता के पिता को सातवीं शताब्दी ई० के मध्यकाल का माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में सूर्यवर्मन् को कल्याणवर्मन् का उत्तराधिकारी मानने से कर्णाट प्रदेश की रानी विजया-भट्टारिका की तिथि के साथ उसका समन्वय हो जाता है।

चूंकि पुलकेशिन् द्वितीय का शासन काल ६६० ई० के आस पास रहा है और महाकवि दण्डी का भी समय सुबन्धु से पूर्व ६६० के समीप ही है अतः कौमुदीमहोत्सव का रचनाकाल और विज्जका का स्थितिकाल भी सातवीं शताब्दी ई० का मध्यकाल मानना उचित होगा।

कौमुदी महोत्सव (कथानक)

"कौमुदी महोत्सव" नाटक है, जिसका अभिनय मगध के प्रसिद्ध राजा कल्याणवर्मन् के राज्याभिषेक के शुभ अवसर पर राजभवन में शरद्पूर्णिमा के दिवस पर किया गया था। इसके द्वारा नायक कल्याणवर्मन् के अतीत जीवन की झांकी प्रस्तुत की गयी है।

कल्याणवर्मन् मगध के विख्यात् शासक सुन्दरवर्मन् का एक मात्र पुत्र था। यद्यपि सुन्दरवर्मन के अनेक रानियां थीं, किन्तु उसे किसी से भी पुत्र लाभ नहीं हुआ। अतः उसने मगध निवासी क्षत्रिय जाति के चण्डसेन को पुत्रवत् मानकर प्रधान सेना-

---

१. इपीग्रैफिक इण्डिका, खण्ड ६, पृ० १६०

पति बनाया । सुन्दरवर्मन् ने उसे उत्तराधिकारी बनाने के बारे में विचार किया था, किन्तु कुछ समय बीतने पर, रानी मदिरावती से उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, पुत्र का नाम 'कल्याणवर्मन्' रक्खा गया । चण्डसेन ने मगधराज के वंश परम्परा के शत्रु लिच्छिवियों से मिलकर मगध-राज के विरुद्ध षड्यन्त्र किया । शीघ्र ही शत्रुओं ने मगध के राजभवन को चारों ओर से घेर लिया । आत्मरक्षा में तत्पर, सुन्दरवर्मन् वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआउसके मरने पर सभी रानियाँ पति के साथ ही सती हो गयी ' । चण्डसेन राजा बना । सुन्दरवर्मा का मन्त्री पुत्र मन्त्रगुप्त, पुरोहित का पुत्र अर्थरक्षित, राजकुमार कल्याण-वर्मन् तथा अन्य विश्वस्त मित्र एवं अन्यान्य राजकर्मचारी धात्री विनयन्धरा को साथ लेकर प्राण बचाकर रात्रि में घोर जङ्गल की ओर चले गये । घने अन्ध-कार में वे सभी एक दूसरे से पृथक् हो गये । कुमार कल्याण-वर्मन् का जाबालि ऋषि के आश्रम में अन्य ऋषियों ने पिता की भाँति पालन किया । कुमार के विलग हो जाने से विनयन्धरा अत्यन्त दुखी हुयी, और उसने सांसारिक माया मोह छोड़ कर संन्यास व्रत ले लिया और तीर्थयात्रा करती हुयी वह मथुरा पहुँची । वहाँ पर शूरसेन देश के राजा कीर्तिषेण की रानी राजवन्ती ने परिव्राजिका योगसिद्धि (विनयन्धरा)का बहुत आदर किया अत: योगसिद्धि वहीं रहकर राज-पुत्री कीर्तिमती का पालन पोषण करने लगी ।

वर्ष बीतते गये, कल्याणवर्मन्-जाबालि ऋषि की संरक्षता में रहकर, शासक के लिए उचित सम्पूर्ण कलाओं का अभ्यास किया । कुछ समय पश्चात् उसे बहुमत प्राप्त हो गया । सुन्दरवर्मा के विश्वासपात्र मन्त्रीगण मूर्ख नहीं थे । चण्डसेन निष्ठुर शासक सिद्ध हुआ । उसने मगध के प्रमुख नागरिकों को बन्दी लिया जिसके कारण जनमत उसके विरुद्धहो गया । मन्त्रियोंने इस अवसर से लाभ-लाभ उठाया । वे गुप्त रूप से राजधानी में चण्डसेन को गद्दी से उतारने तथा उचित उत्तराधिकारी के राज्याभिषेक के हेतु नाग-रिकों को उत्तेजित करने लगे । उस समय जनता को अपना शासक स्वयं चुनने

का अधिकार था, जो कि पाटलिपुत्र में नगर-सभा के नाम से प्रसिद्ध था। मन्त्रगुप्त द्वारा उकसाये जाने पर, सम्पूर्ण जन साधारण ने चण्डसेन के विरुद्ध विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। अपनी सहायता का कोई उपाय न मिलने पर, चण्डसेन स्वयं राजधानी से भाग खड़ा हुआ। राजधानी को असुरक्षित देखकर, नागरिकों ने कल्याणवर्मन् का स्वागत किया और उसका राज्याभिषेक किया। चण्डसेन पराजित होकर मारा गया।

जैसे जैसे कल्याणवर्मा को बहुमत प्राप्त हुआ, मन्त्रगुप्त के मित्र उसे आश्रम से बुलाने के लिए गये। मार्ग में जाते हुए, उन लोगों ने पम्पा सरोवर के किनारे चन्द्रिका के मन्दिर के समीप विश्राम ग्रहण किया।

उधर मथुरा में राजपुत्री कीर्तिमती विवाहोचित अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी, अत: शूरसेनाधिप कीर्तिषेण उसके विवाह के लिए चिन्तित थे परिव्राजिका योगसिद्धि के उत्तरदायित्व पर महाराज कीर्तिषेण ने अपनी पुत्री को भगवती विन्ध्यवासिनी (चन्द्रिका) की आराधना हेतु प्रेषित किया। देवी दर्शन के उपरान्त कीर्तिमती अपने निवासस्थान को लौट रही थी, उस समय सूर्य के तीव्रताप से पीड़ित होकर, वह छायापूर्ण स्थान को देखकर वृक्ष के समीप आयी, जहाँ पर राजकुमार कल्याण पहले से ही विराजमान थे। उस अपरिचित युवा की मनोहर आकृति को देखकर कीर्तिमती उसकी ओर आकृष्ट हो गयी किन्तु एक दूसरे की ओर परस्पर आसक्त होते ही क्षण भर में दोनों पृथक् हो गये। इसी बीच राजकुमारी का हार गले से गिर गया।

विरह व्यथा से खिन्न होकर राजपुत्री ने अपनी सखियों आदि से वार्तालाप करना बन्द कर दिया। एक रात्रि में सभी लोग निद्रामग्न थे, कीर्तिमती ने राजकुमार का एक सुन्दर चित्र निर्मित किया। निपुणिका ने,जो कि राजकुमारी की अन्तरङ्ग सखी थी,जागते हुए सम्पूर्ण दृश्य देख लिया।

दूसरे दिन, प्रात:काल, उस चित्र को मांस के टुकड़े के भ्रम, कोई पक्षी

उठाकर ले गया और बाद किसी अन्य स्थान पर उसे गिरा दिया, जहाँ पर योगसिद्धि ध्यान मग्न मुद्रा में आसीन थी । आकाश से गिरी हुयी किसी वस्तु को देखकर, योगसिद्धि ने उसे उठा लिया, गूढ़ अन्वेषण के बाद उन्होंने पहचाना कि वह कुमार कल्याणवर्मन् का चित्र है अत: वे मूर्च्छित हो गयी ।

राजकुमारी की परिचारिकाओं ने उसकी सेवा शुश्रूषा की जिसने चेतनता प्राप्त करने पर उन्होंने चित्र सम्बन्धी वृत्तान्त के बारे में जिज्ञासा व्यक्त की निपुणिका ने सम्पूर्ण कथा निवेदित की । योगसिद्धि ने कहा कि वह मगध के राजकुमार का चित्र था ।

विदूषक, जो कि पीछे से सब सुन रहा था, उसने विनयन्धरा को पहचान लिया अत: उसने सामने आकर कल्याणवर्मन् के उपहार को समर्पित किया, यह उपहार राजकुमारी के गले से गिरा हुआ हार था , जिसको लौटाने के लिए राजकुमार ने अपने मित्र को भेजा था । वैखानस (विदूषक) ने उस उपहार को निपुणिका को प्रदान किया और उसके साथ ही कुमार के चित्र को भी ग्रहण किया, जिसमें योग सिद्धि ने कीर्तिमती और कल्याण-वर्मन् के पुनर्मिलन से सम्बन्धित अभिलाषा लिखित रूप से व्यक्त की थी ।

कल्याणवर्मन् उस चित्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने चित्र के समीप कीर्तिमती का चित्र अङ्कित कर दिया और उसे योगसिद्धि को लौटा दिया । कीर्तिमती मथुरा की ओर वापस लौट जाती है । योगसिद्धि कीर्तिषेणा से मिलकर, उसे वह चित्र देती हुयी राजकुमारी और राजकुमार के परस्पर प्रेम को अत्यन्त कौशल के साथ अवगत कराया और उसे मथुरा के राजपरिवार की देवी एकाङ्गा का आदेश बताया ।

इस शुभ समाचार को सुनकर प्रसन्नचित्त से कीर्तिषेणा ने राज-पुरोहित और परिव्राजिका के साथ कीर्तिमती को मगध भेजा । अब

तक कुमार कल्याण वर्मन् मगधराज पर अभिषिक्त हो चुका था । मगध में कीर्तिमती तथा कुमार कल्याणवर्मन् के विवाह के उत्सव के साथ ही 'कौमुदी-महोत्सव' नाटक भी समाप्त हो जाता है।

'संस्कृत नाटक और कौमुदी महोत्सव'

संस्कृत साहित्य मनीषियों ने काव्य कोटि का विवेचन करते हुए नाटक को काव्य का सर्वोत्तम प्रकार बताया है — 'काव्येषु नाटकं रम्यम्' । इसका कारण यह है कि ऐसा कोई भी ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग और कर्म अवशिष्ट नहीं है जो नाटक में विद्यमान न हो । अतएव भरतमुनि ने कहा है —

'न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन्नदृश्यते ।। नाट्यशास्त्र १।११६

नाटक की प्रमुख विशेषता यह है कि वह जाति और ज्ञान की परिधि को पार करके सर्व साधारण के लिए सुलभ होता है । नाटक श्रवण और नेत्र द्वारा दर्शक को आनन्दानुभूति कराता है । चूंकि काव्य के अन्य प्रकार में कल्पनाशक्ति का भी आश्रय लेना पड़ता है अत: उसका आनन्द वस्तुत: शिक्षित व्यक्ति ही अनुभव कर पाता है । किन्तु नाटक में संवाद के अतिरिक्त पात्रों का अभिनय देखते ही सहृदय को रसास्वाद होने लगता है । इसी कारण भरत ने इसको 'सार्ववर्णिकवेद' (१।१२) कहा है ।

नट् (नाचना) धातु से नाट्य या नाटक शब्द बना है । नाटकों का मुख्य उद्गम वेद है । वेदों यम यमी तथा पुरूरवा उर्वशी आदि के संवाद के रूप में नाटक विद्यमान मिलता है । अभिनय (अनुकरण) शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर चित्राङ्कन का सूत्रपात उसके बाद मूर्तिरचना और फिर पुत्तलिका नृत्य की उत्पत्ति हुयी । आगे चलकर नाटक के दो भाग हो गये एक नाटक दूसरा छाया नाटक ।

नाटक की प्राचीनता वैदिक काल से लेकर पुराणों, महाभारत तथा काव्यों में भी प्राप्त होता है । पाणिनि (ई० पू० ४००) की अष्टाध्यायी में कृशाश्व और शिलालिन इन दो नाट्याचार्यों का उल्लेख तथा पतञ्जलि

(ई० पू० २००) के महाभाष्य में भूतकाल के स्थान पर वर्तमान काल का प्रयोग करने का आदेश अभिनय की अविच्छिन्न परम्परा का सङ्केत करता है। नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त प्रचलित है। दैवी उत्पत्ति, पुत्रलिका-नृत्य तथा वीरपूजा से नाटक का उद्भव, मेपोल नृत्य अथवा यूनानी नाटकों से भी नाटक की उत्पत्ति मानी गयी है।

किन्तु नाटक मूलत: भारतीय वस्तु है। नट, नर्तक, नाटक, नृत्य, सूत्रधार, स्थापक आदि शब्दों का प्रयोग प्राचीन काल से ही साहित्य में किया जा रहा था अत: किसी न किसी रूप में नाटक सदैव से ही जन समुदाय में विद्यमान था।

संस्कृत साहित्य में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'उत्तररामचरितम्', 'मृच्छकटिकम्', 'वेणीसंहार, 'मुद्राराक्षस', और 'रत्नावली' आदि उत्कृष्ट कोटि के नाटक हैं। इसी नाट्य परम्परा के अन्तर्गत 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक भी आता है।

सर्वप्रथम भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य सम्बन्धी नियमों का उल्लेख किया। उसके बाद मालवा के परमार-वंश के राजा मुञ्ज (९७४-९५) के राजकवि धनंजय ने 'दशरूपक' के अन्तर्गत उसे उचित रूप प्रदान किया। किसी भी प्रकार के नाटक को 'रूपक' की संज्ञा दी गयी क्योंकि इसमें अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरञ्जन किया जाता है। प्रमुख रूप से रूपक के दस भेद[1] हैं —(१) नाटक (२) प्रकरण (३) भाण (४) व्यायोग (५) समवकार (६) डिम (७) ईहामृग (८) अङ्क (९) वीथी (१०) प्रहसन। इन सब में नाटक की रचना ही रूपक का सर्वोत्तम प्रकार है। प्रस्तुत 'कौमुदीमहोत्सव' भी नाटक की कोटि के अन्तर्गत है।

---

१. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमा:।
ईहामृगाङ्कवीथ्य: प्रहसनमिति रूपकाणि दश।। दशरूपक १।८

'कौमुदीमहोत्सव' की कथावस्तु राजा कल्याणवर्मन् के जीवन चरित से सम्बन्धित है। पांच अङ्कों के इस नाटक का नायक कल्याणवर्मन् उच्च-भावनाओं से पूर्ण शक्तिशाली, गुणवान् तथा प्रसिद्ध मगधराज्य का उत्तराधिकारी है। नाटक में वीरता और प्रेम का सम्मिश्रण करके वीरता की प्रधानता प्रदर्शित की गयी है। नाटक के प्रमुख चार पात्र मन्त्रगुप्त जावालि कुञ्जरक, और आर्यरक्षित कल्याणवर्मन् के व्यवसाय में संलग्न रहे हैं अतः नाटक [illegible] सुखान्त है।

आचार्यों ने कथावस्तु के दो[1] प्रकार बताये है (१) आधिकारिक (मुख्य) (२) प्रासङ्गिक (गौण) कथा के प्रधान फल का स्वामी अधिकारी कहलाता है और उसके इतिवृत्त को आधिकारिक कहते हैं।[2] आधिकारिक कथानक के लिए जो कथानक प्रसङ्ग वश आ जाता है उसे प्रासङ्गिक[3] या गौण कहते हैं। कौमुदीमहोत्सव में कल्याणवर्मन् द्वारा खोये हुए राज्य को प्राप्त करना आधिकारिक कथा है तथा कीर्तिमती और कल्याणवर्मन् का मिलना और तत्पश्चात् उनका विवाह प्रासङ्गिक है जिसके द्वारा मुख्य कथा का विकास हुआ है।

अर्थ प्रकृतियां मुख्य प्रयोजन के साधन की उपाय बतायी गयी हैं। बीज, बिन्दु-पताका, प्रकरी तथा कार्य इन पांचों अर्थप्रकृतियों में से, कौमुदी-महोत्सव में कथानक सूक्ष्म होने के कारण सभी सम्भव नहीं हैं। नाटक का

---

१. वस्तु च द्विधा। तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।
—दशरूपक १।११ चौखम्बा संस्करण, १९५५

२. अधिकारः फलस्वाम्यधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निवर्त्यमभिव्यापि वृत्तंस्यादाधिकारिकम्।। दशरूपक १।१२

३. प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।। वही १।१३

बीज[१] मन्त्री मन्त्रगुप्त द्वारा योजना बनाना तथा बिना किसी रक्तपात के कल्याणवर्मन् को मगध का शासन दिलवाना है । 'कार्य' नामक अर्थ-प्रकृति उसे कहते हैं जिसमें प्रधान साध्य के लिए प्रारम्भ किये गये सब उपायों की सिद्धि की सामग्री एकत्रित हो जाती है ।[२] कल्याणवर्मन् द्वारा मगध की शासनसत्ता हस्तगत कर लेना 'कार्य' है ।

इतिवृत्त को पांच अवस्थाओं में विभक्त किया जाता है जो कार्यावस्थायें कहलाती हैं । ये अवस्थायें आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम[३] । मुख्यफल की सिद्धि के लिए जो औत्सुक्य होता है उसे आरम्भ अवस्था कहते हैं ।[४] कुमार कल्याणवर्मन् द्वारा मगध शासन को पुन: प्राप्त करने की अभिलाषा होना 'आरम्भ' है । फल प्राप्त न होने पर उसके लिए अत्यन्त त्वरायुक्त व्यापार का यत्न कहते हैं ।[५] कल्याणवर्मन् के द्वारा गुप्त रूप से वन में निवास करना तथा अपने मंत्रियों के द्वारा कार्य करवाना 'प्रयत्न' अवस्था है । जहां प्राप्ति की आशा उपाय और अपाय की आशङ्काओं से घिरी हो, किन्तु प्राप्ति की सम्भावना हो, उस अवस्था को 'प्राप्त्याशा' कहते हैं ।

---

१. स्वल्पोद्दिष्टस्तुतद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा ।।

— दशरूपक १।१७

२. अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनम् ।
समापनं तु यत्सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम् ।।

— साहित्यदर्पण ६। ६९ — ७०

३. अवस्था पञ्च कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभि: ।
आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागम: ।।

— दशरूपक १।१९

४. औत्सुक्यमात्रमारम्भ: फललाभाय भूयसे ।।

— दशरूपक १।२०

५. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वित: ।। वही १।२०

तृतीय अवस्था उस समय आती है जब कि कल्याणवर्मन् का स्वामिभक्त मन्त्री गुप्तरूप से चण्डसेन के विरुद्ध जन साधारण के मन में अविश्वास उत्पन्न कर देता है। अपाय के दूर हो जाने से जो प्राप्ति का निश्चय होता है उसे `नियताप्ति` कहते हैं।[२] चौथी अवस्था का आरम्भ चण्डसेन के द्वारा शबरों तथा सीमावर्ती जातियों का दमन करने के लिए राजधानी छोड़कर चले जाने पर होता है क्योंकि अब मन्त्रगुप्त के उद्देश्य की पूर्ति का समय समीप आ गया है। जहाँ सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जाय उस अवस्था को `फलयोग` या `फलागम` कहते हैं।[३] कौमुदी महोत्सव` में नायक कल्याणवर्मन् द्वारा असुरक्षित राजधानी में प्रवेश करने तथा जनता द्वारा, अपने उचित उत्तराधिकारी का स्वागत किये जाने पर `फलागम` अवस्था है।

नाटककार अपने नाटक को निर्विघ्न समाप्त करने की अभिलाषा से नाटक के आरम्भ में देव, द्विज, नृपादि की स्तुति करता है उसे `नान्दी`[४] कहते हैं। `नान्दी` अथवा `रङ्गद्वार` `पूर्वरङ्ग` का ही एक अङ्ग है क्योंकि नान्दी और `रङ्गविघ्नशान्ति` का अटूट सम्बन्ध है। सूत्रधार द्वारा `नान्दी` पाठ करने के उपरान्त स्थापक, नाटक के कथानक, बीज तथा नायक से सम्बन्धित परिचय दर्शकों को देता है। इस विषय में मतभेद है क्योंकि प्रारम्भिक काव्य-शास्त्रियों ने `नान्दी` को `रङ्गद्वार` के रूप में माना किन्तु नाट्यशास्त्र के

---

१. उपायापायशङ्काभ्यां प्राप्त्याशाप्राप्तिसम्भवः। दशरूपक १।२१

२. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता ।। वही १।२१

३. समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः।

— दशरूपक १।२२

४. आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।

— साहित्य दर्पण ६।२४, चौखम्बा संस्करण, १९५७

रचयिता भरतमुनि ने इसका उल्लेख नहीं किया है। जैसा कि साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ का कथन है — "नाट्याचार्य भरतमुनि ने पूर्वरङ्ग के अङ्गों में 'रङ्गद्वार' के पहले जिस 'नान्दी' नामक अङ्ग का निर्देश किया है, वह नटों द्वारा ही अनुष्ठित हुआ करती है और इसलिए नाटककार का इसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।"[१]

यही कारण है कि कालिदास और भास आदि के नाटकों में भरतमुनि के आधार पर नान्दी स्पष्ट रूप से रङ्गमञ्च पर पढ़ा जाता है, उसे पर्दे के पीछे ही समाप्त करके सूत्रधार का प्रवेश होता है। प्रस्तुत नाटक में भी 'नान्दी के अन्त में सूत्रधार का प्रवेश है। (नान्द्यन्ते सूत्रधारः) नाटक के विष्कम्भक स्थापना और प्रवेशक आदि को भी स्थान दिया गया है। विष्कम्भक बीते हुए तथा भविष्य में घटित होने वाले कथांशों का संक्षेप में दिग्दर्शन करा देने वाला अर्थोपक्षेपक है इसका प्रयोग मध्य श्रेणी के पात्रों द्वारा होता है।[२] विष्कम्भक के दो भेद होते हैं शुद्ध और सङ्कीर्ण। एक या अनेक मध्यम श्रेणी के पात्र जिसका प्रयोग करें उसे शुद्ध विष्कम्भक कहते हैं और नीच श्रेणी के तथा मध्यम श्रेणी के पात्र मिल कर जिसका अभिनय करें उसे सङ्कीर्ण विष्कम्भक कहते हैं।[३] कौमुदीमहोत्सव में दो स्थानों पर विष्कम्भक शुद्ध है तथा पाँचवें अङ्क का विष्कम्भक सङ्कीर्ण है। नाटक में विष्कम्भक की भाँति ही प्रवेशक का भी महत्त्व है। विष्कम्भक के सदृश ही जब अनुदात्त उक्तियों से नीच पात्रों द्वारा प्रयुक्त किया जावे, दो अङ्कों के बीच में हो और शेष अर्थ की

---

१. साहित्यदर्पण, षष्ठ अध्याय, पृ० ३७६

२. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजकः ॥
— दशरूपक १।५६ साहित्यनिकेतन, कानपुर

३. एकानेककृतः शुद्धः सङ्कीर्णो नीचमध्यमैः ॥
— दशरूपक, १।६०

सूचना देने वाला हो तो उसे प्रवेशक कहते हैं।[1] कौमुदी महोत्सव के द्वितीय अङ्क के मध्य में प्रवेशक को रखा गया है। इससे यह परिचय मिलता है कि रचयित्री प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों का ही पालन किया है। नाटक में पाँच अङ्कों के रहते हुए भी उनका दृश्यों में विभाजन नहीं होता है इसके द्वारा भी विज्जका की प्रौढ़ बुद्धि और भरतमुनि द्वारा बताये गये नियमों के प्रति श्रद्धा भाव परिलक्षित होता है।

नाटकीयकला और शैली —

समस्त संस्कृत नाटकों में 'कौमुदीमहोत्सव' ही एक मात्र ऐसी रचना है जो कि स्त्री द्वारा रची गयी है साथ ही यह नाटक एक राज परिवार से सम्बन्धित प्रतिष्ठित महिला द्वारा अपने समकाल की ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर लिखा गया है। नाटक के सभी पात्र न तो कल्पना पर ही आधारित हैं और न अनेक विधियों को ही प्रस्तुत करते हैं अपितु दैनिक जीवन में निमग्न रहने वाले साधारण स्त्री पुरुष आदि जीवित प्राणी हैं। नाटक में कल्याणवर्मन् को जो कि अपने राज्य से पृथक हो गया था और जिसने अपने स्वामिभक्त मन्त्री की सहायता से पुनः मगध साम्राज्य को प्राप्त किया था, मध्यस्थ बनाकर राजनैतिक षड्यन्त्र का विस्तार किया गया है। इस कार्य में लगभग २० वर्ष का समय लगना स्वाभाविक है क्योंकि कल्याणवर्मन् के पिता की मृत्यु के बाद, अनेक बाधायें रहने पर भी दीर्घकाल तक जाबालि ऋषि के आश्रम में कल्याणवर्मन् का निवास करना और फिर मगध राज्य को प्राप्त करना — इन घटनाओं के बीच में इतने समय का अन्तर होना उचित है। किन्तु नाटक में किसी भी

---

१. तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीच-पात्र-प्रयोजितः।

—दशरूपक १।६०

१. प्रवेशोऽङ्कद्वयस्यान्तः शेषार्थस्योपसूचकः॥ वही १।६१

प्रकार का रक्तपात हुए बिना ही राज्यलाभ हो जाना सराहनीय है।

नाटक में राजनैतिक षड्यन्त्र को विस्तार का अवसर मिले -इसी कारण रचयित्री ने मगध के कुमार कल्याणवर्मन् और राजकुमारी कीर्तिमती में परस्पर प्रणय के द्वारा अन्य रस का समावेश कराया। यही कारण है कि नाटक ऐतिहासिक घटनाओं के रहते हुए भी रुचिकर हो गया है। `मुद्राराक्षस` में भी इसी प्रकार के कथानक को ग्रहण किया गया है किन्तु वहां शुष्क ऐतिहासिक घटनाओं के आधिक्य के कारण मानवीय रुचि समाप्त हो जाती है। दूसरी ओर `मृच्छकटिकम्` में साधारण मानव जीवन का चित्रण किया गया है किन्तु उसका राजपरिवार से विशेष सम्बन्ध नहीं दिखाया गया है। किन्तु इसके विपरीत `कौमुदीमहोत्सव` के प्रारम्भ में भी आत्मरक्षा हेतु युद्ध करते हुए सुन्दरवर्मन् की मृत्यु का वर्णन है और पञ्चम अङ्क में भी युद्धस्थल में चण्डसेन की मृत्यु का सङ्केत किया गया है, यद्यपि युद्धादि के रङ्गमञ्च पर दिखाये जाने में निषेध होने के कारण ये सभी दृश्य स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होते, किन्तु नाटक द्वारा इनकी सूचना मिल जाती है। नाटक में, ऋषि, राजकुमार, राजपरिवार से सम्बन्धित मन्त्री तथा रनिवास सैनिक पदाधिकारी, कर्मचारी, बुद्ध की उपासिका परिव्राजिका, मगध के साधारण नागरिकों, भिक्षुओं, पुरोहितों तथा गुप्तचरों आदि का भी चित्र अङ्कित किया गया है। नाटककर्त्री ने नायक-नायिका को परस्पर आकर्षण, मिलन, और अपने भावी जीवन के निर्माण करने के निश्चय के विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है। इतिहास और प्रणय के समन्वय के कारण ही सहृदय का मन नाटक की ओर आकृष्ट हो उठता है। यद्यपि नाटक सुखान्त है जैसा कि भारतीय नाट्य शास्त्र का नियम है, किन्तु फिर भी सम्पूर्ण नाटक में दुःख और समवेदना के अनेक दृश्य है। कुमार द्वारा अपने पिता की मृत्यु का वर्णन तथा विनयन्धरा द्वारा खोये हुए कुमार की स्मृति में संताप करना अत्यन्त मार्मिक है। अनेक स्थलों पर तो पाठक संशयग्रस्त हो उठता है जैसे कि दुष्ट चण्डसेन को पदच्युत करने के लिए और कुमार को राज्य प्रदान करवाने के लिए रात्रि के गहन अन्धकार में तैयारी की जाती है। फिर भी नाटक के कुछ स्थल विशिष्ट हैं जिनमें दैनिक जीवन के पात्रों का व चरित्रचित्रण,

राजकुमारी और राजकुमार का परस्पर प्रेम, उनके साथ ही तत्कालीन राजनैतिक संघर्ष और प्रणय का मिश्रण आदि ।

नाटक की प्रस्तावना द्वारा नाटककर्त्री का नामोल्लेख, नाटक का शीर्षक, तथा समसहानुभूतिपूर्ण स्वागत के लिए रचयित्री की अभिलाषा आदि व्यक्त की गयी है ।

नाटक का प्रारम्भ भारत में प्रसिद्ध, नीले आकाश तथा कमलों से भरी हुयी सरिताओं से युक्त, मनोहारी तथा स्वच्छ शरद् ऋतु से होता है । वर्षा ऋतु के पश्चात् परिवर्तनशील प्रकृति भी नवीन जीवन धारण करती है । इस समय दिवस पहले की अपेक्षा शीतल हो उठते हैं और सूर्य की करणों की उष्णता भी कम हो जाती है । नाटक का कार्य कलाप भी वर्ष के ऐसे दिन आरम्भ होता है जब कि शरद् पूर्णिमा के दिन कल्याणवर्मन् का राज्याभिषेक हुआ था ।

अगली दृश्य हमें पहले दृश्य के कुछ मास पीछे ले जाता है, जबकि कल्याण-वर्मन् ने जाबालि ऋषि के आश्रम में आश्रयपाया था । ऋषि जाबालि के संरक्षण में रहकर ही कल्याणवर्मन् अपने राज्य को पा सका, जिसके लिए उसके मन्त्रियों ने निरन्तर प्रयास किया । आश्रम से विदा लेते समय कुलपति का अश्रुपूर्ण स्वर पुष्पों का रुदन , आश्रम का दुःखी प्रिय हिरन, कीर्तिमती और राजकुमार का परस्पर पृथक होना, राजकुमारी के ऊपरी वस्त्र का लताओं में फंसना आदि दृश्य कारुणिक एवं हृदयभेदी है ।

किन्तु बुद्धिमती रचयित्री ने शुष्क राजनैतिक इतिहास में प्राणसञ्चार करके उसे जीवित कथानक का रूप प्रदान किया है । कथा का क्रम कहीं पर भी भङ्ग नहीं हुआ है, चित्र-निर्माण द्वारा नायक नायिका के पुनर्मिलन का भी सङ्केत मिलता है, मन्त्रगुप्त का षड्यन्त्र हमें चाणक्य की कूटनीति की स्मृति करा देता है इनके द्वारा हमें विज्जका की अनोखी सूझ बूझ का परिचय मिलता है ।

यद्यपि कवयित्री ने कथानक को रस परिवर्तन द्वारा रुचिकर बनाने का

प्रयास किया है किन्तु कथावस्तु की एकता न होने के कारण वह अधिक सफल नहीं हो सकी है। कहीं कहीं पर घटनाओं का कथन इतना विस्तृत है कि दर्शक का मन विचलित हो उठता है। कल्याणवर्मन् विनयंधरा तथा मन्त्रगुप्त के चरित्र से सम्बन्धित अनेक वस्तुयें अनाटकीय प्रतीत होती हैं।

नाटक में दैवी शक्ति के अवतरण को भी रखा गया है। पांचवें अङ्क में दैवी खड्गा द्वारा विनयंधरा को चित्र प्रदान किये जाने का उल्लेख है इसके द्वारा कवयित्री ने नागानन्द आदि में चित्रित प्राचीन परम्परा की ओर सङ्केत कराया है।

सम्पूर्ण नाटक में कीर्तिमती की मधुरता, कल्याणवर्मन् की पुरुष व सुलभ शक्ति सम्पन्नता, मन्त्रगुप्त की स्वामिभक्ति एवं देश प्रेम की भावना प्रमुख रूप से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है अन्य मन्त्रियों का आत्मत्याग और नागरिकों द्वारा अपने उचित उत्तराधिकारी को शासन सत्ता दिलाने के लिए किये गये प्रयास प्रशंसनीय है।

नाटक की भाषा तथा शैली स्पष्ट, आकर्षक तथा कल्पना, उपमा, रूपक आदि अलङ्कारों से समन्वित है। मानवीय पात्रों में ही विभिन्न स्तर के जनों को लेकर आदर्श पूर्ण उद्देश्य को सम्मुख रखा गया है। चूंकि नाटकीय कथानक में ऐतिहासिक तथा पौराणिक दो कोटि हैं तथा यहां पर ऐतिहासिक कथा को ग्रहण किया गया है।

रीति –

जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि राजशेखर[१] ने महाकवि कालिदास के बाद विजयाभट्टारिका को वैदर्भी रीति में रचना करने में

प्रवीण माना है ।

रीति के तीन भेद माने गये हैं (१) वैदर्भी (२) गौडी (३) पाञ्चाल
साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने वैदर्भी रीति के विषय में लिखा है कि –
वैदर्भी रीति वह है जिसे माधुर्य के अभिव्यञ्जक वर्णों से पूर्ण, असमस्त अथवा
स्वल्प-समास युक्त ललित रचना कहा गया है ।[1]

संस्कृत के काव्य शास्त्रीय विज्ञों द्वारा नाटक के लिए बतायी गयी
विशेषताओं को देखते हुए यह नाटक सफल प्रतीत होता है । भाषा सरस एवं
प्रवाहमयी है, दीर्घ समासों को नहीं लिया गया है जिसके द्वारा भावगम्या है ।

'कौमुदीमहोत्सव' की प्राकृत –

काव्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार स्त्रियों तथा निम्नश्रेणी के पात्रों
को प्राकृत भाषा का प्रयोग करना होता है अत: प्रस्तुत नाटक में प्राय:
सभी स्त्री पात्र प्राकृत बोलते हैं किन्तु इनमें परिव्राजिका अपवाद स्वरूप है
जो कि प्राकृत और संस्कृत दोनों भाषाओं का प्रयोग करती है ।[2]

प्राकृत का प्रयोग मुख्यत: कथोपकथन में किया गया है किन्तु एक
स्थान पर पद्य में भी प्राकृत मिलती है, जहाँ पर एक निम्नकोटि का पात्र
(वर्द्धमानक) प्राकृत में गान करता है ।[3]

---

१. माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका । अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते
—साहित्यदर्पण ९।२।।

वैदर्भी के सम्बन्ध में महाकवि श्रीहर्ष की यह सूक्ति बड़ी सुन्दर है –
धन्यासि वैदर्भि गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि ।
इत:स्तुति: का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ।।
— नैषधीयचरित ३।११६

२. कौमुदीमहोत्सव परिचय, पृ० ४२ (लेखिका शकुन्तला राव शास्त्री)

३. प्राकृतप्रकाश—वररुचि १२।३ प्राकृत व्याकरण—हेमचन्द्र ४।२६७

कुछ पुरुष जो कि निम्नश्रेणी के अन्तर्गत आते हैं वे प्राकृत का ही प्रयोग करते हैं जैसे विदूषक, वर्द्धमानक आदि ।

प्राकृत के दो प्रकार हैं (१) शौरसैनी (२) महाराष्ट्री। कथोपकथन तथा गद्य में शौरसैनी तथा पद्य में महाराष्ट्री प्राकृत प्रयुक्त की जाती है। `कौमुदी-महोत्सव` में भी इसी क्रम को अपनाया गया है। शौरसैनी और महाराष्ट्री प्राकृत में पर्याप्त भेद है –

(१) व्याकरण के नियमानुसार शौरसैनी में संस्कृत के `त` के स्थान में `द` और `थ` के स्थान पर `ध` हो जाता है।[१]

(२) संस्कृत क, ग, च, ज, त, द, प, य और व का प्राय: लोप होता है[२] –दृश्यते = दिसइ ।

(३) संस्कृत ख, घ, ध, थ, फ और भ के स्थान में ह हो जाता है[३] कथम् = कहं ।

नाटक में चित्रित तत्कालीन सामाजिक अवस्था –

`कौमुदी महोत्सव` नाटक के द्वारा तत्कालीन समाज की झांकी सहृदय को स्पष्ट परिलक्षित होने लगती है।

नाटक के मङ्गलाचरण में ही शिव की वंदना की गयी है। अन्यत्र भी आर्यरक्षित पाशुपत के रूप में शिव की तन्मय होकर अर्चना करता है — `चन्द्रचूड महादेव को नमस्कार है। कण्ठ में विष, हाथ में खोपड़ी कन्धे पर गज चर्म, छाती पर साँप, कानों में सुवर्ण कुण्डल और जटाजूट से घिरे हुए

---

१. प्राकृत प्रकाश–वररुचि १२।३ , प्राकृत व्याकरण- हेमचन्द्र ४।२६७

२. वही २।२, प्राकृत व्याकरण, १।१७७

३. वही २।२५ ,प्राकृत व्याकरण १।१८७

ललाट पर सुन्दर अर्धचन्द्र धारण किये हुए आपका वेष विकट है।"[१] इन दोनों से यह लगता है कि उस समय शैव मत की प्रतिष्ठा थी। राजकीय धर्म हिन्दू था किन्तु उसके अन्दर भी शिव ही सर्वशक्तिमान् -रूप से पूज्य माने जाते थे।

ईसा की शताब्दी के प्रारम्भिक समय में हिन्दू साम्राज्य में वाकाटक नरेशों ने शिवपूजा को ही प्राधान्य दिया किन्तु समय के 'शिव' विनाशकारी देव के रूप में सम्मुख आये। कौमुदी-महोत्सव में चित्रित शिव एक योगी अथवा गुरु के रूप में अज्ञान के अन्धकार को दूर करने वाले हैं।[२] कौमुदीमहोत्सव के शिव में भगवान् बुद्ध की भांति शान्ति प्रदान करने वाले हैं, नाशकारी नहीं हैं। उसी के बाद पाशुपत सम्प्रदाय का उदय हुआ।

इस समय बौद्ध धर्म का पतन की ओर उन्मुख था। स्त्रियां भी बौद्ध धर्म स्वीकार करने लगी थीं और समाज में उन्हें पूर्ववत् आदरणीय स्थान प्राप्त था। कुमार की दासी विनयधरा भी बुद्ध की उपासिका बनकर, 'योगसिद्धि' के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थी, और उसे राजकुमारी कीर्तिमती के कार्य हेतु नियुक्त कर दिया गया था। राजा लोग एक से अधिक विवाह कर सकते थे। सुन्दरवर्मन् की अन्य रानियों में रानी मदिरावती ज्येष्ठा थी।

महाभारत की भांति तत्कालीन समाज में भी स्वयंवर परम्परा विद्यमान थीं जैसा कि कीर्तिमती के विवाह से ज्ञात होता है। मथुरा के राजा कीर्तिषेण ने अपनी पुत्री को चन्द्रिका देवी के मन्दिर में पासना हेतु प्रेषित किया था जिससे कि वह उचित वरलाभ कर सके। वहां पर राजकुमार से मिलने पर उसके प्रति मुग्ध हो जाती है। उसकी रुचि का समर्थन उसकी परिचारिका योगसिद्धि भी करती है और कीर्तिषेणा को इस सम्बन्ध में

---

१. कौमुदीमहोत्सव ४।३

२. वही, १।१

सूचना देते समय वह इस सम्बन्ध को उनके राजपरिवार की देवी एकाङ्गा का आदेश बताती है इसे कुछ प्रतिबन्धों से युक्त स्वयंवर कहा जा सकता है।

राजा ही राज्य में प्रमुख होता था, वह शासन सत्ता और धर्म का भी रक्षक रहता था जैसा कि चतुर्थ अङ्क से ज्ञात होता है —

"वर्णाश्रम के मार्ग को प्रकट करने वाले और चण्डसेन राजकुल का उन्मूलन करने वाले कल्याणवर्मा को सम्पूर्ण प्रजा कल्पवृक्ष की तरह प्रणाम करती है।"[१]

शासन प्रबन्ध की दृष्टि से प्रभुसत्ता शासक में सीमित रहती थी। वह अपने मन्त्रियों की सहायता से राज्य भार संभालता था। सेना पर भी राजा अपने सेनापति की सहायता से अधिकार रखता था। वाकाटक नरेशों की प्रजा-तान्त्रिक भावना इस समय तक जनता में विद्यमान थी।

चण्डसेन ने सुन्दरवर्मन की हत्या करके, मगध के प्रमुख नागरिकों को बन्दीगृह में डाल दिया जिसके कारण जनमत उसके विरुद्ध हो गया। एक तो वह मगध का उचित उत्तराधिकारी नहीं था, दूसरे वह क्षत्रिय भी नहीं था। उसने मगध के वंशपरम्परा से रहने वाले वैरियों (लिच्छिवियों) की सहायता ली। चूंकि उसकी जाति अत्यन्त हीन या कारस्कर[२] थी, जिनकी गणना हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म के अन्तर्गत नहीं होती थी — अतः सर्व साधारण उसके विरोध में था तत्कालीन समाज में कारस्कर एक निम्नकोटि की जाति थी। जिसके यहां ब्राह्मणों का जाना भी निषिद्ध था।[३]

---

१. कौमुदी महोत्सव, ५।१

२. कारानिरोधपरियाणद्धकपोलरेखाकारानिरोधविधुरं प्रकटीश्चकार।
कारणेन कबुभो वशमानिनाय कारस्करः स खलु सम्प्रति पार्थिवेषु।।
—वही ४।६

३. बौधायन धर्मसूत्र १।१।३२

किन्तु कौमुदी-महोत्सव के समय तक इनकी दशा में सुधार हो गया होगा अन्यथा सुन्दरवर्मन् इतने निम्नश्रेणी के व्यक्ति को अपना दत्तक पुत्र कदापि न स्वीकार करता । मन्त्रगुप्त प्रजा की सहायता से गुप्त रूप से योजना बनाता रहा और जैसे ही चण्डसेन राजधानी के बाहर गया, उसी बीच में उसने सर्वसाधारण के सहयोग से शासन सत्ता पर अधिकार कर कुमार कल्याणवर्मन् का राज्याभिषेक करा दिया ।

जिस प्रदेश में कुमार को पहले छिपाया गया था, वह विन्ध्य पर्वत था जो कि हिन्दू राज्य का ही एक अंश था ।

तत्कालीन समाज की प्रमुख विशेषता संस्कृत ज्ञान से सम्बन्धित है । महात्मा बुद्ध के समय पाली की प्रमुखता थी किन्तु हिन्दू धर्म के उत्थान के होते ही संस्कृत राजभाषा के रूप में समृद्ध हुयी । चूंकि इस नाटक की रचना मगध शासकों की राजसभा के समय हुयी अत: इससे स्पष्ट पता चलता है कि अधिकांश जन संस्कृत बोलते और लिखते भी थे । उस समय में मगध राज्य के आस पास प्राप्त हुए वाकाटक अभिलेखों से भी संस्कृत भाषा का ही प्रयोग मिलता है ।[१]

तत्कालीन समाज में वर्णाश्रम धर्म की प्रधानता थी । जिसका समर्थन प्रत्येक हिन्दू शासक ने किया है । समाज में वैश्याओं का भी सम्माननीय स्थान था जैसा कि कौमुदी-महोत्सव के पांचवें अङ्क से लोकादित्य के कथन द्वारा स्पष्ट होता है — " वैश्याजनों से अभ्यर्चित तथा कर्णीपुत्र के कीर्तिस्तम्भ से अलङ्कृत राजमार्गसहित कुसुमपुर के वैश्याजनों की कैसी सुषमा है । यहाँ — जनसमुदाय वैश्याओं से सुशोभित हो रहा है, उत्तमवैश्या भक्तों की टोली प्रफुल्लित हो रही है ।"[२]

---

१. कौमुदीमहोत्सव नाटक का परिचय, पृ० ४२ (लेखिका शकुन्तला राव शास्त्री) भारती विद्याभवन, बम्बई, १९५२

२. कौमुदीमहोत्सव ५।२

वेश्यायें विशिष्ट भवनों में निवास करती थीं । वेशरक्षित उनका प्रबन्धकर्ता था, जो कि एक वृद्ध युवक था । समाज में निम्नश्रेणी के व्यक्ति द्यूत कर्म भी करते थे जैसा कि लोकाक्षि के चरित्र से पता चलता है ।

नाटक की भौगोलिक स्थिति--

कौमुदीमहोत्सव नाटक का कथानक ऐतिहासिक है अत: उसका सम्बन्ध कुछ नगरों, भवनों तथा स्थानों से होना अनिवार्य है । इनमें से कुछ स्थान ऐसे हैं जिनका नाटक के कथानक के साथ सीधा सम्बन्ध है और कुछ का उल्लेख किसी अन्य वर्णन के सम्बन्ध के कारण आ गया है । नाटक का अभिनय मगध की राजधानी `पाटलिपुत्र` के `सुगाङ्ग` प्रासाद में कियागया था । नायक कल्याणवर्मन् अपने मन्त्रियों की सहायता से गुप्त रूप से `चन्द्रिकादेवी ` के मन्दिर के समीप `व्याधकिष्किन्धा` प्रदेश में रखा गया था, जहां पर राजकुमारी कीर्तिमती तीर्थयात्रा करने के लिए, शूरसेन प्रदेश की राजधानी मथुरा से आयी थी । ये सभी स्थल नाटक की कथा से मुख्य रूपेण सम्बन्धित हैं । इसके अतिरिक्त जिन स्थानों का उल्लेख किसी अन्य मार्ग के सङ्केत के समय हुआ है वे साकेत, काञ्ची, विदिशा, वत्स, पम्पा, कौशाम्बी और सुयमुना हैं ।

नाटक में `पाटलिपुत्र`[1] की प्रधानता है क्योंकि इसी स्थान में नाटक अभिनीत किया गया था । ये मगध की राजधानी थी जहां शरद्पूर्णिमा के दिन उत्सव मनाया जाता था । नाटक में `सुगाङ्ग`[2] प्रासाद का भी नामोल्लेख किया गया है । पाटलिपुत्र के एक प्रदेश को `कुसुमपुर`[3] की संज्ञा दी

१: कौमुदीमहोत्सव की प्रस्तावना , पृ० ४,जननी कार्यालय, प्रका०,प्रयाग

२: वही पृ। १७

३, कौमुदी महोत्सव चतुर्थ अङ्क

गयी थी । मुद्राराक्षस[१] में मिले वर्णन के द्वारा यह और भी निश्चित हो जाता है ।

प्राचीन भारत में प्रसिद्ध मगध की राजधानी पाटलिपुत्र को विद्वानों ने आधुनिक `पटना` माना है । मेगस्थनीज़ के विवरण के अनुसार यह गङ्गा और सोन नदी के समीप स्थित था । सुगाङ्ग प्रासाद गङ्गा के तट स्थित था, यद्यपि नाटक में ऐसा कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है । इसके अतिरिक्त चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी पाटलिपुत्र के विषय में लिखा है कि नगर का अधिकांश भाग नष्ट भ्रष्ट स्थिति में था किन्तु नाटक में मिला वर्णन इसके ठीक विपरीत है । किन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि चीनी यात्री को मगध की हिन्दू राजधानी के विषय में उतनी रुचि नहीं थी जितनी बौद्ध सभ्यता के केन्द्र के विषय में थी ।

पाटलिपुत्र का नामकरण `पाटलेश्वरी` या `पाटलदेवी` से हुआ प्रतीत होता है, जो कि वृहद् नीलकण्ठ में बताये गये पीठों में से एक है । यह महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में ४८० ई० पू० में राजा अजातशत्रु के द्वारा मगध में हिन्दू शासन की पुनर्स्थापना के प्रयास से स्थापित करवाया गया था । यह सम्भव है कि सुगाङ्ग प्रासाद का आकार अत्यन्त सुन्दर रहा हो ।

`व्याध किष्किन्धा` में कुमारकल्याणवर्मन् को उसके मन्त्रियों ने छिपाया था अतः यह स्थान कहां पर है ? यह जानना आवश्यक है । प्राचीन भारत में एक नाम के दो या दो से अधिक स्थान होना सम्भव था । यहां पर भी वैसी ही स्थिति है । इनमें से एक तो नर्मदा नदी के उत्तरी तट पर और दूसरा इसके विपरीत सुदूर प्रदेश में है । जिस विन्ध्य पर्वत का नाटक में नाम मिलता है उनमें `चन्द्रिका` देवी का मन्दिर भी है । प्राचीन भारत में यह मन्दिर विन्ध्यवासिनी` के नाम से विख्यात था चूंकि कीर्तिमती इस मन्दिर तक मथुरा

---

१. मुद्राराक्षस, अङ्क प्रथम और चतुर्थ, चौखम्बा संस्करण १९६१

से पैदल ही तीर्थ यात्रा के लिए आयीं थी अत: इसे सुदूर प्रदेश का विन्ध्य पर्वतन मानना ही उचित होगा ।

इम्पीरियल गजेटियर आफ इण्डिया[1] के अनुसार विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर मिर्जापुर जिले के विन्ध्याचल ग्राम में स्थित है ।

किन्तु इस विन्ध्याचल के समीप आधुनिक भूगोल की दृष्टि से कोई पम्पा सरोवर नहीं मिलता है अपितु एक पम्पापुर का उल्लेख अवश्य मिलता है इसके साथ `व्याघ्रकिष्किन्धा` जहां पर कल्याणवर्मन् ने गुप्तरूप से निवास किया था, नर्मदा नदी के किनारे विन्ध्य पर्वत का ही एक भाग है ।[2]

इसके बाद `शूरसेन` देश प्रधान है क्योंकि कीर्तिमती शूरसेन की राजकुमारी थी । कुछ लोगों ने शूरसेन और सौराष्ट्र में ऐक्य स्थापित किया है किन्तु प्राचीनभारत में ये दोनों भिन्नभिन्न प्रदेश थे । सौराष्ट्र के अन्तर्गत गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ आदि स्थान आते थे, जिनकी राजधानी वलभी थी जब कि शूरसेन प्रदेश मध्यभारत में दिल्ली के समीप स्थित था जिसकी राजधानी मथुरा थी । ये वह नगर था जहां कि हुवेनसांग ने यात्रा की थी । कनिङ्घम को प्राप्त मथुरा के अभिलेखों से स्पष्ट है कि कव्व शासन में वासुदेव यहां का प्रथम शासक था और उसके बाद कनिष्क ने शासन सत्ता हस्तगत की ।

अन्य गौण स्थानों में `साकेत` का भी नाम मिलता है यह `अयोध्या` या `अवध` का प्राचीन नाम है । रामायण[3] के अनुसार साकेत राजा दशरथ और उनके पुत्रों की राजधानी थी । रघुवंश[4] में भी साकेत और अयोध्या के

---

१. दण्डकारण्य -डा०डी०आर० भण्डारकर भा, मैमोरियल संस्करण

२. कौमुदीमहोत्सव का परिचय, पृ० २६ (शकुन्तला राव शास्त्री)

३. साकेतनगरं राजा नाम्ना दशरथोबलि: -?-

४. रघुवंशम् -१३।७६, १४।१३

ऐक्य का समर्थन किया गया है। रामायण से पता चलता है कि यह नगरी सरयू नदी तट पर बसी हुयी है।

फाहियान ने 'साकेत' को 'साँची' ह्वेनसांग ने 'विशाखा' कहकर बताया है। वस्तुत: यह दर्शनीय है कि 'साकेत' का 'विशाखा' नाम क्यों रख दिया गया। यह नाम बुद्ध काल में रखा गया जो कि बुद्ध की उपासिका विशाखा के कारण पड़ गया। काञ्ची का भी नामोल्लेख कौमुदीमहोत्सव में आया है। आज यह 'कांजीवरम्' के नाम से विख्यात है जो कि मद्रास से ४३ मील दूर पोलर नदी के किनारे पर स्थित है। प्राचीन भारत में काञ्ची ज्ञान का स्थान था क्योंकि महात्मा बुद्ध के समय में नालन्दा, विक्रमशिला, वलभी, अमरावती, काञ्चीपुर आदि विश्वविद्यालय प्रसिद्ध थे।

तत्पश्चात् 'विदिशा' है जो आज 'भिलसा' नाम से जाना जाता है। यह स्थान भोपाल के समीप स्थित है। इसी प्रकार 'वत्स' भी प्राचीन भारत में इलाहाबाद के समीप गङ्गा के दक्षिणी किनारे का प्रदेश कहलाता था जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी जो कि जमुना नदी के दाहिने किनारे पर है। वत्सदेव, वंशदेव अथवा उदयन इसके प्रथम शासक थे।

कौमुदीमहोत्सव के छन्द—

'विज्जका' ने अपने 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक में शार्दूलविक्रीडित, अनुष्टुप्, वसन्ततिलक, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, विरहिणी, मालिनी, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी आदि छन्दों के अतिरिक्त प्राय: अप्रयुक्त छन्दों पुष्पिताग्रा, गीत, सुन्दरी, रथोद्धता छन्दों को भी स्वीकार किया है। शार्दूल-विक्रीडित कवयित्री का प्रिय छन्द है —ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि इस छन्द की संख्या नाटक में सबसे अधिक (२३) है।

कहीं कहीं नाटक-कर्त्री ने लोक में प्रसिद्ध उक्तियों को भी नाटक में

ग्रहण किया है यद्यपि ये अधिक नहीं हैं किन्तु लोकोक्ति सम्बन्धी भाव इस प्रकार चित्रित किये गये हैं —

(१) कुर्वन्ति भृत्या वचनं प्रभूणां, प्रयोजनोद्देशमलक्षयन्तः ।
भृत्यर्थमार्याः फलमस्तु मा वा, स्वधर्म इत्येव समाचरन्ति ॥[1]

(२) गुणविप्लवशङ्किधिया नीतिः समुपनतसाहसावसरा ।
भृशतरमाकुलयति मारिषमिव रङ्गोन्मुखी वाक्शी ॥[2]

(३) कालार्थे सपिकत भङ्गुरत्वात् प्रक्षीणसंस्कारभुवां स्मृतीनाम् ।
स्फुरन्ति मे शैशवचेष्टितानि जातिस्मरस्येव भवान्तराणि ॥[3]

<u>कौमुदीमहोत्सव और कालिदास</u> —

`कौमुदीमहोत्सव` नाटक पर महाकवि कालिदास की काव्यकला की छाप स्पष्ट है । अनेक स्थलों पर तो भाव साम्य और पदसाम्य इतना अधिक है कि एक क्षण के लिए पाठक भ्रमग्रस्त हो उठता है । `कौमुदीमहोत्सव की रचयित्री कालिदास की वैदर्भी रीति से अत्यन्त प्रभावित हुयी है । चूंकि कालिदास ने भी अपनी रचनाओं की कथा को पुराणों या महाभारत आदि से ग्रहण किया है अतः उन्हीं के आधार पर ही 'कौमुदी-महोत्सव' की रचना का प्रयत्न किया गया है । कालिदास रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम्` और कौमुदी-

---

१. कौमुदीमहोत्सव ४।५

२. कौमुदीमहोत्सव, ४।८

३. कौमुदीमहोत्सव, ४।१२

महोत्सव एक दूसरे के अधिक समीप हैं।[१]

'कौमुदी महोत्सव' माधवीलता (आश्रयति माधवी चैदाश्रमपादपस्कन्धं स्वार्थक्रीतां लभते निर्वृतिमारण्यको वर्ग:) के सम्बन्ध में कही हुयी बात को पढ़कर अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अङ्क में अनसूया और शकुन्तला के बीच हुयी नवमालिका ज्योत्स्ना का स्मरण हो जाता है। कीर्तिमती के मुक्ताहार के खो जाने और पुन: उसके मिल जाने की कथा का निर्माण सम्भवत: शाकुन्तल तृतीय अङ्क में शकुन्तला के मृणालवलय की कथा के आधार पर किया गया मालूम पड़ती है। 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के अतिरिक्त 'कौमुदीमहोत्सव और कुम

१अ (निमित्तं सूचयित्वा) किं नु खलु स्फुरति दक्षिणो मे बाहु:' कौमुदी-महोत्सव, प्रथम अङ्क, पृ० १०

निमित्तं सूचयन्) शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहु: कुत: फलमिहास्य, अभिज्ञानशाकुन्तल १।१४, बनारस १९५३।

(ब) एदिणा पच्चादिट्ठा दाणिं पमक्खण पावपाणं समिद्धी—कौमुदी महो० प्रथम अङ्क

दूरीकृता खलु गुणैरुद्यानलतावनलताभि:— अभिज्ञानशाकुन्तल—चतुर्थअङ्क

(स) तत:प्रविशति काम्यमानावस्थ:कुमार:—कौमुदीमहोत्सव,तृतीय अङ्क

(तत: प्रविशति काम्यमानावस्थो राजा—अभिज्ञानशाकुन्तल तृतीय अङ्क

(द) रम्यद्वेषनिबन्धनो मनसि मे वियोगोचितसंताप:—कौमुदीमहोत्सव,तृतीयअङ्क

रम्यद्वेष्टि यथा पुरा प्रकृतिभिर्नप्रत्यहं सेव्यते ।। अभिज्ञानशाकुन्तल ६।५

(ध) इदं किलाविष्कृतकान्तिविप्लवं तुषारवातातपदर्शनेष्वपि ।
शरीरमुद्याननिरीक्षपेलवं तपोवनक्लेशसहं भविष्यति ।। कौमुदीमहोत्सव,१।
इदं किलाव्याजमनोहरं वपुं तप: क्षमं साधयितुं य इच्छति ।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।। अ०शा०।१।१

(न) सन्नद्धकवची शरासनधरस्तातो लता प्रोषितो,
जाता धौत कपोलपत्रलतिका वाष्पाम्बुभिर्मातर: ।
एकाकी चलमङ्गलपताविभवा नीतोऽस्म्यहं तापसं-
मिथ्यैव प्रतिभाति शैशवकथा स्वप्नो नु माया नु मे
—कौमुदीमहोत्सव,१।१०

स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु क्लिष्टं नु तावत्फलमेव पुण्यम् ।
असंनिवृत्त्यै तदतीतमेते मनोरथानामतटप्रपाता: । अ०शा० ६।१०

सम्भव ' के एक स्थल में भी सादृश्य विद्यमान है।[1] 'प्रस्तुत नाटक' और मालविकाग्निमित्रम् दोनों का ही मङ्गलाचरण भगवान् शिव की वन्दना से होता है।

यद्यपि कौमुदीमहोत्सव एवं महाकवि कालिदास की रचनाओं में साम्य दिखायी पड़ता है किन्तु हम उसे कालिदास का अनुकरण मात्र नहीं कह सकते। नारी मनोवृत्ति तथा सौन्दर्य चित्रण दोनों ने ही किया है[2] किन्तु दोनों की मौलिकता स्वतः सुरक्षित है। काव्य में कुछ भावनाओं तथा उद्गारों की प्रधानता रहती है, प्रायः प्रत्येक कवि के चित्रण का उससे सम्बन्ध रहता है किन्तु भावव्यञ्जना और शैली प्रत्येक की पृथक् पृथक् होती है।[3] उदाहरणार्थ पुरुषोचित तेज के वर्णन से सम्बन्धित पद्यमें कौमुदी-

---

१. कथमेषा वक्त्रामोदप्रसक्तं मधुकर युवानं—
 लीलारविन्देन निवारयन्ती हन्त अन्तर्हिता तरुसङ्कटे—कौमुदी०,प्रथमाङ्क
 सुगन्धिनिश्वासविवृद्धतृष्णां बिम्बाधरासन्नचरं द्विरेफम्।
 प्रतिक्षणं सम्भ्रमलोलदृष्टिर्लीलारविन्देन निवारयन्ती ।। कुमारसं०,३।५६

२. आशावेशान्तधूमैरिव गगनतलं व्याप्तमासीत्तमोभि-
 र्धूमव्याजेन दीपास्तिमिरमिव मुहुः पीतमेते वमन्ति।
 किं चान्यत् प्रस्थितानां प्रियतमवसतिं नक्तमेकाकिनीनां
 श्रूयन्ते राजमार्गेष्वलमुखरा मेखलाः सुन्दरीणाम् ।। कौमुदीम०४।१०
 भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
 पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
 धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या,
 स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ।। मेघदूत १।३७

३. या रात्रिर्विरहाभिषङ्गविषमा द्राघीयसी वर्तते,
 या वा सङ्गममहोत्सवप्रणयिनी क्षिप्रं क्षमा क्षीयते।
 व्यत्यासेन यदि त्वयैवमुभयं धातः कृतं तावता,
 लब्धाश्वासमुपप्लवेऽपि मिथुनं न त्वामुपक्रोशति ।। कौमुदीम०,५।२
 कार्यान्तरितोत्कण्ठं दिनं मया नीतमनतिकृच्छ्रेण।
 अविनोददीर्घयामा कथं नु रात्रिर्गमयितव्या ।। विक्रमोर्वशीयम् ३।४

महोत्सव और मालविकाग्निमित्र दोनों में ही मिलते हैं[1] दोनों की भाषा भी आलङ्कारिक है किन्तु हम दोनों को एक नहीं कह सकते हैं -- क्योंकि दोनों की पद संघटना और भावगाम्भीर्य में अन्तर है। सूक्ति सङ्ग्रह सम्बन्धी ग्रन्थों में इस प्रकार के अनेक पद्य उपलब्ध होते हैं अत: उन्हें एक दूसरे का अनुकरण नहीं माना जा सकता। सभी नाटककार, महाकाव्यकार तथा चम्पूकाव्य के रचयिताओं ने प्राय: अपने कथानकों को वेदों, रामायण, महाभारत अथवा पुराणों आदि से लिया है किन्तु उस कथा में सभी ने कुछ काल्पनिक अंश भी जोड़ दिये हैं अत: प्रत्येक रचना में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है।

'कौमुदीमहोत्सव' की रचयित्री ने भी कालिदास की भांति उपमा अलङ्कार का प्रयोग अधिक किया है। उन्होंने मधुरपदावली के द्वारा वैदर्भी रीति में रचना की है --इसी कारण नाटक सहृदय के लिए सरस और आकर्षक भी बन गया है।

महाकवि कालिदास के अतिरिक्त कुछ अन्य कृतियों का भी प्रभाव 'कौमुदीमहोत्सव' पर पड़ा है। उनमें से नागानन्द, जो राजा हर्षवर्द्धन (६०६-६४७ ई०) की रचना मानी जाती है, के साथ ही प्रस्तुतनाटक की कुछ घटनाओं तथा वर्णन सम्बन्धी समानता है।[2] कौमुदीमहोत्सव तथा नागानन्द दोनों में ही नायक और नायिका का प्रथम मिलन एक ही रूप में चित्रित किया

---

१. दर्पणमिव सवितु: पक्ष्मान्तरचितं महानुभावस्य।
प्रतिबिम्बमिव प्रतिमुखपतितं प्रतिहन्ति मे दृष्टिम्॥ कौ०म० २।७

द्वारे नियुक्तपुरुषाभिमतप्रवेश: सिंहासनान्तिकचरेण सहोपसर्पन्।
तेजोभिरस्य विनिवर्तितदृष्टिपातैर्वाक्यादृते पुनरिव प्रतिवारितोऽस्मि॥
--मालविकाग्निमित्र १।१२

२. इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टरली, खण्ड १४, १९३८ ई०

गया है। नागानन्द में जीमूतवाहन मलय पर्वत पर जाता है और वहीं गौरी के मन्दिर में उसे मलयवती मिलती है। जहाँ दोनों का एक दूसरे के प्रति आकर्षण हो जाता है। उसी समय किसी ऋषि द्वारा पुकारे जाने पर वह जीमूतवाहन पर दृष्टि डालती हुयी वहाँ से चली जाती है। इसी प्रकार कौमुदीमहोत्सव में भी कीर्तिमती देवी विंध्यवासिनी की उपासना हेतु जाती है और मन्दिर के बाहर ही उसे कल्याणवर्मन् का दर्शन होता है, उस समय भी नागानन्द की भाँति दोनों परस्पर प्रेम पाश में बंध जाते हैं। उसी समय कीर्तिमती की सेविका उसे विश्रामस्थल पर मिल जाने की सूचना देती है। कीर्तिमती यद्यपि उस स्थान को छोड़ने में समर्थ नहीं होती है किन्तु वह प्रयास करके कुमार कल्याणवर्मन् को देखती हुयी वहाँ से प्रस्थान करती है। दोनों कृतियों में नायिकाओं की समान स्थिति है यहाँ तक कि कौमुदीमहोत्सव के एक पद्य के पूर्वार्ध और नागानन्द के एक पद्य के उत्तरार्ध भाव एक ही प्रतीत होते हैं।[1]

इसके अतिरिक्त नागानन्द (प्रथम अङ्क) में देवी 'गौरी' स्वप्न में नायिका को नायक के साथ उसके विवाह की बात बताती है और कौमुदी महोत्सव में परिव्राजिका योगसिद्धि मथुरा के कीर्तिषेण को असत्य सूचना देती है कि चण्डी ने स्वप्न में उनसे कीर्तिमती और कल्याणवर्मन् के विवाह के लिए कहा है। (कौमुदी महोत्सव पञ्चम अङ्क)

नागानन्द[2] में नायक और नायिका का द्वितीय मिलन दिखाया गया है। जीमूतवाहन के कथन को सुनकर मलयवती को यह भ्रम हो जाता है कि वह

---

१. याता नितम्बगुर्वीयावधावन्मृगेक्षणा दूरम्।
विम्बितगात्रीवान्तस्तावत्तावदवगाढा मे ।। कौमुदीमहोत्सव । १।२६

अन्या जघनाभोगभरमन्थरया तया ।
अन्यतोऽपि व्रजन्त्या मे हृदये निहितं पदम् ।। नागानन्द १।१६

२. नागानन्द द्वितीय अङ्क -चौखम्भा संस्करण, १६४७

अन्य किसी के प्रति आसक्त है अत: वह आत्महत्या करने को तत्पर हो जाती है। जीमूतवाहन उसके जीवन की रक्षा करके उसे वास्तविकता का परिचय देता है कि वह स्वयं मलयवती ही है जिसके विषय में उसने पहले कहा था। इसके तुरन्त बाद ही दोनों का विवाह सम्पन्न हो जाता है। कौमुदीमहोत्सव में नायक-नायिका प्रथम मिलन के बाद नहीं मिलते है। कल्याणवर्मन् के द्वारा मग राज्य प्राप्त कर लेने के बाद ही कीर्तिषेण अपनी पुत्री को विवाह हेतु प्रेषित करता है। इस कार्य में कीर्तिमती और कल्याणवर्मन् का संयुक्त चित्र उनकी सहायता करता है। जब कीर्तिमती उस चित्र को देखती है तो उसमें अन्य कन्या का भ्रम हो जाने के कारण वह चित्र को उठाकर फेंक देती है किन्तु अपनी परिचारिका निपुणिका द्वारा यथार्थ परिचय मिलने पर वह प्रसन्न हो जाती है।

इसी प्रकार नागानन्द की समकालीन रचना बाण भट्ट के हर्षचरित का भी प्रभाव नाटक पर पड़ा है। कल्याणवर्मन् के पुष्पपुर के सुगाड्०ग प्रासाद में प्रतिष्ठित हो जाने पर, मथुरा के राजा कीर्तिषेण ने एक गजमुक्त का रत्न-हार, अपनी पुत्री सहित भेजा था। इस हार का सम्बन्ध महाभारत के युद्ध से बताया गया है।[१] इससे ऐसा लगता है कि कवयित्री हर्षचरित को दो घटनाओं से प्रभावित हुयी है क्योंकि हर्षचरित[२] में भी कामरूप के राजा भास्करवर्मन द्वारा हर्षवर्द्धन के साथ राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर, भास्करवर्मन् ने एक पौराणिक कथा के आधार पर छाते का उपहार हर्षवर्द्धन को भेजा था। इसके अतिरिक्त पौराणिक उद्भव से पूर्ण एक बहुमूल्य मौक्तिक हार का भी

---

१. कौमुदी महोत्सव - पञ्चम अड्०क, पृ० १०४, एवम् १०६, जननी कार्यालय, संस्करण।

२. हर्षचरित- सप्तम उच्छ्वास - निर्णय सागर प्रेस, संस्करण, १९३७ ई०।

उल्लेख मिलता है, जो कि पहले ऐतिहासिक नागार्जुन के पास था। नागार्जुन ने उसे अपने मित्र राजा सातवाहन को दिया और बाद में जो शिष्य परम्परा के क्रम से बौद्ध गुरु दिवाकर मित्र को प्राप्त हुआ। दिवाकर मित्र ने राज्यश्री के बन्धन मुक्त हो जाने पर उसे हर्षवर्द्धन को प्रदान किया।[१]

---

१. हर्षचरित—अष्टम उच्छ्वास, निर्णयसागर, संस्करण, १९३७ ई०

बीन-बाई और उनका द्वारकापत्तलम्

बीन-बाई द्वारा रचित द्वारकापत्तलम्[1] को श्री जतीन्द्र विमल चौधरी महोदय ने परिचयात्मक टिप्पणी सहित प्रकाशित किया है।

'द्वारकापत्तलम्' का कथासार-

'द्वारकापत्तलम्' चार भागों में विभक्त है। रचना के प्रारम्भ में रचयित्री ने कुछ व्यक्तिगत सूचनायें प्रस्तुत की हैं। प्रथम अध्याय में स्कन्द-पुराण में प्राप्त होने वाले द्वारका-माहात्म्य के उद्धरण दिये गये हैं। इसी में द्वारका जाने वाले तीर्थयात्रियों के धार्मिक गुणों तथा उनके सहायक मनुष्यों के वैशिष्ट्य का प्रदर्शन किया गया है।

द्वितीय अध्याय में द्वारका जाते हुए, मार्ग में मिलने वाले विभिन्न देवताओं की नमस्कार क्रिया की विधि स्पष्ट की गयी है। द्वारका पहुँच कर, तीर्थसेवी गणेश, बलराम और कृष्ण के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति प्रगट करता है तत्पश्चात् वह गोमती नदी की ओर जाता है। वहाँ स्नान करके वह चक्रतीर्थ, द्वारका गङ्गा, रुक्मिणी सरोवर, शङ्खोद्धार आदि तीर्थों में स्नान करता है, जिससे उनके अपने पूर्व जन्मों में किये गये समस्त पापों का नाश हो जाय।

तृतीय अध्याय का सम्बन्ध मुख्यत: अक्षत, दूर्वा, पुष्प, फल तथा जल आदि से युक्त पूजाविधि अथवा अर्घ स्नानविवेक से है। देवता समक्ष किञ्चित् मात्र भी समर्पण करते समय अथवा स्नानादि में उचित ढङ्ग से तथा वैधानिक निर्देशों के अनुकूल रीति को स्वीकार किया जाय।

---

१. द्वारकापत्तलम् --बीनबाई, कलकत्ता, १९५०

गोमती के तट पर पहुंचकर, तीर्थयात्री उनको (गोमती) को नमन करता है, अपने हाथों तथा पैरों को धोकर, अपने दोनों हाथों से कुश ग्रहण करके, शुभ फल तथा अक्षतों से समन्वित होकर, पूर्वदिशा की ओर उन्मुख होक विधिपूर्वक अर्ध प्रदान करता है। इसी प्रकार मुक्ति की कामना तथा कायिक, वाचिक और मानसिक सभी पापों के नष्ट करने की अभिलाषा से वह चक्रतीर्थ में भी स्नान करता है। क्रमश: तीर्थ सेवी विष्णु तथा गङ्गाब्धि की पूजा के लिए भी उपर्युक्त विधि का आश्रय लेता है। तृतीय अध्याय में भी चक्रतीर्थ, रुक्मिणीहृद, मय सरोवर, गोपिका सरोवर, वरदान तथा शङ्खोद्धार आदि तीर्थों के स्नान की वैधानिक क्रियाओं का स्पष्टत: उल्लेख किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भगवान् कृष्ण के पूजन का वर्णन प्राप्त होता है। इस पूजन में कर्पूर, कस्तुरिका, चन्दन, धूप, कुङ्कुम आदि की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त कृष्ण को दीप, नैवेद्य तथा ताम्बूल आदि भी समर्पित किया जाता है। प्रदक्षिणा के उपरान्त कृष्ण के सम्मुख पुस्तक वाचन, कृष्णोत्तीर्ण-तुलसीदल माला धारण आदि भी मुख्य क्रिया है। इसी अध्याय में पुराणों में बताये गये भी मुख्य क्रिया है। इसी अध्याय में पुराणों में बताये गये विविध दानों की रीतियों का ज्ञान कराया गया है — इसके अन्तर्गत गो, हिरण्य, वृषभ, अश्वदान आते हैं। रचयित्री ने शिव-पुराण विष्णुधर्म पुराण, के निर्देशों को भी बताया है — तथा रजत, बहुरत्न, धान्य कार्पासिक वस्त्र यतिसंप्रदानक भोजन दोनों के साथ साथ श्राद्ध प्रयोगों के भी नियमों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया है। द्वारकापत्तलम् में अन्त में विष्णु की पूजा के लिए, उनके स्नान, वस्त्र दान तथा आभूषण दान आदि की विधि निरूपित की है। यद्यपि पुस्तक इसी स्थल पर समाप्त हो जाती है किन्तु अन्त में प्राप्त तीन पद्यों में प्राप्त `कवि प्रशस्ति` किसी अन्य की रचना प्रतीत होती है। इनमें रानी (बीनबाई) के गुणों का चित्रण किया गया है।

द्वारकापत्तलम् के प्रारम्भ में ही बीनबाई ने स्पष्ट लिख दिया है कि

यह रामानुज मत का ग्रन्थ[१] है किन्तु अन्यत्र कहीं भी किसी दार्शनिक सिद्धान्त व विवेचन नहीं किया गया है ।[२] वस्तुत: यह एक पौराणिक कृति है जिसमें विभिन्न देवताओं एवं तीर्थों के पूजनादि की विधियों तथा नियमों का निर्देश किया गया है । रचयित्री ने स्कन्दपुराण में प्राप्त द्वारकामाहात्म्य के आधार पर ही द्वारिकापत्तलम् की रचना की , किन्तु कुछ विधानों में उसने नवीनता का समावेश कराके , उसे रुचिकर बना दिया है । यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ एक लघु रचना है किन्तु फिर भी इसमें द्वारका-माहात्म्य में दी गयी सभी सूचनाओं को सूक्ष्म-रूप से ग्रहण कर लिया गया है ।

बीनबाई ने अपनी कृति में गद्य और पद्य दोनों का ही आश्रय लिया है यही कारण है कि नीरस और शुष्क विषय के रहते हुए, भी, काव्य कला के प्रभाव के कारण, द्वारकापत्तलम् आकर्षक हो गया है[३]।

धर्म की ओर भारतीय नारियां सदैव से अग्रसर रही है जैसा कि प्रथम अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है किन्तु किसी धार्मिक एवं पौराणिक ग्रन्थ की रचना के लिए नारी द्वारा प्रयास करना सराहनीय है । रचयित्री द्वारा

---

१. द्वारका पत्तलम् - रामानुजमतस्यायं ग्रन्थ: ।
श्यामं रामानुजं कान्तं कृतान्तं दैव-विद्विषाम् ।
नमामि व्रज गोपाल-वेष प्रत्यूह-शान्तये ।।
—द्वारकापत्तलम् १।१

२. द्वारकापत्तलम् —परिचय, पृ० ८

३. नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च ।
वृंदा पृथिवी च सुभगा विश्वकाया शिवासिता ।।
विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोक-प्रदायिनी ।
क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्ति-प्रदायिनी ।।
— वही, तृतीय अध्याय, पृ० २३

बताये गये सभी वैधानिक क्रियायें औचित्यपूर्ण है जिनकी पुष्टि पुराणों के द्वारा भी होती है।

बीनबाई की भाषा अत्यन्त स्पष्ट है।[१] उन्होंने दीर्घपदावली, तथ क्लिष्ट समासों को ग्रहण नहीं किया है। उनकी कृति लघु होने पर भी पौरा- णिक विवेचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। बीनबाई राजपरिवार, सुख एवं ऐश् में निमग्न होने पर भी धार्मिक कृति की ओर आकृष्ट हुयी है - अत: वे प्रशंसा की पात्र हैं।

---

१. यस्या चित्तं चिरार्थं कर-कमल-युगं विष्णु-पूजादि सार्थं
चित्तं ध्यानैर्मुरारेः श्रवण-युगममूत्तत्-कथा-वर्णनेन ।
स्तुत्यं स्तुत्यै च नैत्रे प्रतिदिनमधकृद्रूप-संदर्शनेन ,
स्तुत्या स्तोत्र-प्रपाठैरजनि रसनिकाऽ गण्य-पुण्योदयायाः ।।

— द्वारकापत्तलम् १।५

विश्वासदेवी और उनकी कृति गङ्गावाक्यावली

गङ्गावाक्यावली की विषय सामग्री —

विश्वासदेवी द्वारा रचित गङ्गावाक्यावली स्मृति पर सुन्दर निबन्ध है। इसमें पवित्र नदी गङ्गा की पूजा से सम्बन्धित विधियों को स्पष्ट किया गया है। लेखिका ने गङ्गावाक्यावली में गङ्गा के विषय में कहे गये, पुराणों एवं स्मृतियों के उद्धरणों के साथ, अपने भी मत को समन्वित कर दिया है।

गङ्गावाक्यावली के अन्तर्गत २६ प्रकरण (अध्याय) हैं। वे इस प्रकार हैं — (१) स्मरण प्रकरण, (२) कीर्तन प्रकरण (३) यात्रा प्रकरण (४) श्रवण प्रकरण (५) गति प्रकरण (६) वीक्षण प्रकरण, (७) नमस्कार प्रकरण, (८) स्पर्शन प्रकरण (९) सर्वतीर्थ प्राप्ति श्राद्ध (१०) अभय (११) सर्वबन्धु प्रतिकृति-स्थापना प्रकरण (१२) क्षेत्र प्रकरण, (१३) अवगाहन प्रकरण (१४) स्नान प्रकरण — इसमें अनेक भाग हैं — आचमन, स्नानाङ्ग, तर्पण, स्नान कर्म, गङ्गा स्नान, युगाद्या, स्नान, मन्वादिस्नान, दिनक्षय स्नान,
~~नक्षत्र स्नान योग स्नान, दशहरा स्नान, संक्रान्ति स्नान, माघ स्नान, माघ-~~
फाल्गुनस्नान, ग्रहणस्नान, मध्याह्न स्नान, वारुण्यादि स्नान, महाज्येष्ठी स्नान, शिवसन्निहित गङ्गास्नान, पश्चिमवाहिनी गङ्गा स्नान (१५) तर्पण प्रकरण (१६) मृत्तिका प्रकरण (१७) जप प्रकरण (१८) विविध प्रकार के — दान व्रत, श्राद्ध इत्यादि (१९) पिण्ड-प्रकरण, (२०) जल प्रकरण (२१) तोयदा

प्रकरण (२२) श्राश्रय प्रकरण (२३) प्रायश्चित प्रकरण (२४) कृतकृत्य प्रकरण, (२५) मृत्यु प्रकरण (२६) अस्थि-स्थिति प्रकरण (२७) गङ्गासागर सङ्गम स्नान - प्रयाग स्नान, प्रयागावच्छिन्न-गङ्गा स्नान, माघादि-करणक-सामान्य तीर्थ स्नान, प्रकीर्णक स्नान, प्रयाग-मुण्डन, प्रयाग-मरण-प्रकरण, (२८)विघ्न प्रकरण, (२९) प्रतिसिद्ध प्रकरण ।

विश्वास देवी की गङ्गावाक्यावली[1] को श्री जतीन्द्र विमल चौधरी महोदय ने आलोचनात्मक टिप्पणी सहित प्रकाशित किया है ।

प्रथम अध्याय में गङ्गा के कीर्तन तथा द्वितीय अध्याय में विश्वासदेवी का कथन है कि गङ्गा के प्रति प्रस्थान करने वाले, यात्री को भक्ति एवं श्रद्धा के भाव से पूरित होना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा ही इच्छित कर्म में वृद्धि और कल्याण की संभावना की जाती है ।[2] गङ्गा की महिमा अलौकिक है क्योंकि उनके दर्शन, स्पर्श तथा पान करने के अतिरिक्त गङ्गा नाम के कहने से तथा स्मरण मात्र से तत्क्षण ही पापों से मुक्त (प्राणी) हो जाता है ।[3]

तत्पश्चात् यात्रा प्रकरण के अन्तर्गत, यात्री की धार्मिक योग्यताओं के सम्बन्ध में विविध पुराणों भविष्य, स्कन्द, एवं महाभारत आदि से उद्धरण प्रस्तुत किये

---

१. गङ्गावाक्यावली - विश्वासदेवी, कलकत्ता १९४०

२. तत्र भक्ति श्रद्धा पुर:सरमेव सर्व कर्म विशेषमापादयति । अतो भक्ति-श्रद्धे अवश्यमेव कर्तव्ये कर्मणि कर्तव्ये । तथा च यम: -

" भक्ति-श्रद्धे हि काम्यानां वृद्धि-क्षेम-करे हिते"
काम्यानां काम्यकर्मणाम् । शास्त्रार्थे तथेति प्रत्यय: श्रद्धा ।
उपास्यतानिश्चयो भक्ति: क्वचिदुपासनाप्युच्यते ।

-गङ्गावाक्यावली, प्रथम अध्याय, १०८

३. दर्शनात् स्पर्शनात् पानात् तथा गङ्गेति कीर्तनात् ।
स्मरणादेव गङ्गाया: सद्य: पापात् प्रमुच्यते ।।

-गङ्गावाक्यावली प्रथम अध्याय, १०८

गये हैं। कलयुग में तो गङ्गा का महत्त्व और भी बढ़कर है। जैसा कि भविष्य पुराण में कहा गया है कि -' जो व्यक्ति कलयुग में गङ्गा की ओर नहीं जाता उसका कुल, विद्या, यज्ञ, तप और दानादि सभी व्यर्थ हैं।'[१]

वस्तुत: तीर्थ यात्रा का अधिकारी वही व्यक्ति होता है, जो कि अपने ऊपर आश्रित हो, प्रसिद्ध एवं विद्वान् हो, किसी दिये दान को न ग्रहण करता हो, दूषित मस्तिष्क से शून्य दम्भरहित सत्यवादी तथा सबके प्रति दयालु हो। इसके विपरीत विश्वास-हीन , पापी, सन्देह से पूर्ण, विकृत - स्वभाव वाले, नास्तिक मनुष्य को तीर्थ यात्रा के लिए उचित नहीं माना जाता।

विश्वासदेवी ने तीर्थ यात्रा प्रारम्भ करते वाले मनुष्य के लिए वैधानिक निर्देशों का विधिवत् स्पष्टीकरण किया है। इस प्रकरण में भी लेखिका ने वायु,मत्स्य तथा मार्कण्डेय पुराणों के उद्धरणों के साथ साथ अपने मत को भी प्रदर्शित किया है। यात्री को अपनी यात्रा आरम्भ करते समय किसी के घर में भोजन नहीं करना चाहिए और न किसी के साथ ही भोजन करना चाहिए। प्रात:काल स्नान करके, गङ्गा का ध्यान और जप करते हुए दैनिक कृत्यों को करके धीरे धीरे गमन करना तीर्थसेवी के लिए श्रेयस्कर है।

श्रवण प्रकरण में भी गङ्गा के माहात्म्य[२] का वर्णन मिलता है।

दीनदु:खी सभी प्राणियों के लिए गङ्गा ही गति (शरण) है। गंगा सभी पापों का संहार करने वाली दु:ख विनाशिनी, सुखदायिनी तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है ।

---

१. वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञो वृथा तप: ।
वृथा दानादि तस्येह कलौ गङ्गां न याति य: ।।

—गङ्गावाक्यावली, पृ० ११२

२. श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता ।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने ।

—वही, पृ० १२३

गड्०गा के वीक्षण से सांसारिक प्राणी उसी प्रकार पापों से मुक्त हो जाते हैं जैसे गरुड़ को देख कर सर्प विषहीन हो जाते हैं। गड्०गा के द्वारा वर्तमान, अतीत में ज्ञान और अज्ञान द्वारा किये गये अशुभ कर्मों का विनाश सम्भव है। सम्पूर्ण तीर्थों के दर्शन से भी बढ़कर गड्०गादर्शन है। गड्०गा ही शिव का जीवन और शिव की आत्मा है -वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की आधार परा प्रकृति है।

जो व्यक्ति प्रात:काल उठाकर गड्०गा को प्रणाम (नमस्कार प्रकरण) करता है वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त करता है।

स्पर्शन प्रकरण मैथिलिका का कथन है कि महापापी भी गड्०गा के स्पर्श से पवित्र हो जाता है।

अन्यत्र श्राद्ध प्रकरण में श्राद्धविधि निरूपित की गयी है। श्राद्ध के सम्बन्ध में भी विश्वासदेवी ने देवी पुराण, स्कन्दपुराण, महाभारत आदि पौराणिक कृतियों के पद्य उद्धृत किये हैं।

अवगाहन प्रकरण का आरम्भ महाभारत के वनपर्व के एक पद्य से होता है - " सैकड़ों बुरे कार्य करके गड्०गा में अवगाहन करना चाहिए। उन सबको गड्०गाजल अग्नि में पड़ी हुई रूई की राशि की भांति भस्म कर देता है।" गड्०गा में केवल एक बार अवगाहन करने से ही स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

यदि कोई महापापी भक्ति के बिना भी गड्०गा स्नान करे, तो भी वह पवित्र हो जाता है -अत: विश्वास देवी का कथन है कि भक्ति शून्य भावना से जो गड्०गा का स्पर्शादि कर्म से, बड़े बड़े पापों के विनाश रूपी फल की प्राप्ति कही गयी है वह तो सामान्य है, भक्ति द्वारा विशेष फल लाभ होता है।[2]

---

१. अवगाहन प्रकरण, पृ० १३७

२. यदा गड्०गाया अभक्त्यापि स्पर्शनादि कर्मण: सर्वमहापातकादिनाश:फलमित्युक्तं यत्तु सामान्यं, भक्त्या तु विशेष:-गड्०गावाक्यावली, पृ० १३६

गङ्गा स्नान के पूर्व 'नारायण' का स्मरण करना उचित है। इसीप्रकरण में स्नान क्रिया के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य, गोभिल, देवल आदि स्मृतियों के उद्धरण रूप में रखा है। इसी में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियों की स्नान विधि भी बतायी गयी है। समस्त प्रकरणों में स्नान प्रकरण ही सबसे दीर्घकाय है क्योंकि इसमें स्नान विधि के अतिरिक्त विविध पर्वों (पुण्य काल स्नान) माघ सप्तमी, नन्दादि, युगाद्या, मन्वादि, दिनक्षय, नक्षत्र, योग, दशहरा, सङ्क्रान्ति, मास, माघफाल्गुन, ग्रहण, मध्याह्न, वारुण्यादि महाज्येष्ठी, शिवसन्निहित गङ्गा, पश्चिमवाहिनी गङ्गा आदि के स्नानों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

पवित्र स्थान में पहुँचकर, श्राद्ध सम्पन्न करना, अर्थात् तर्पण द्वारा पूर्वजों के प्रति श्रद्धान्जलि अर्पित करना, तीर्थसेवी के लिए उचित और कल्याणकारी है। तर्पण की सामग्री, उससे सम्बद्ध समय और दिन का निर्धारण भी विविध स्मृतियों में किया गया है। अतः विश्वास देवी ने उन सबको ग्रहण करते हुए, तर्पण प्रकरण में अपने को भी पुष्ट किया है।

मृत्तिका प्रकरण में गङ्गा की तटवर्ती मृत्तिका का महत्त्व बताया गया है। गङ्गा की मिट्टी को भक्ति पूर्वक लेप करने से, सुदूर स्थित, पाप करने वाला, मानव भी स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

स्नान और मृत्तिका प्रकरण के उपरान्त जप प्रकरण उल्लेखनीय है। विश्वासदेवी ने इसमें याज्ञवल्क्य, नरसिंह, शङ्ख , बौधायन, व्यास, वशिष्ठ, स्कन्द, गरुड, भविष्य, मनु, बृहस्पति, कात्यायन, दक्ष आदि ऋषियों के अतिरिक्त स्कन्द, गरुड, भविष्य आदि पुराणों में प्राप्त उद्धरणों को ग्रहण किया है।

अन्य प्रकरण में दान, व्रत तथा श्राद्ध सम्बन्धी विषयों को भेदों सहित प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि पिण्डदान की व्यवस्था को श्राद्ध प्रकरण में लिखा जा चुका था किन्तु उसका पृथक् उल्लेख भी विश्वास देवी ने एक प्रकरण में किया है। गङ्गा में पिण्डदान देने से नरकस्थ पितृगण स्वर्ग को जाते हैं तथा स्वर्गस्थ (पितृगण) मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

जल प्रकरण में गङ्गाजल की अद्भुत शक्ति के चमत्कार का चित्रण किया गया है। गङ्गाजल द्वारा मनुष्य ब्रह्महत्या, गोवध, स्तेयकर्म, गुरुतल्प गमन से उत्पन्न पापों का भी नाश हो जाता है।

गङ्गा के जल का पान करना (तोय पान, प्रकरणम्) तो और भी अधिक श्रेष्ठ है। कन्यादान , भूमिदान, अश्वदान, गोदान, स्वर्णदान, रथ, अश्व और गज दानों से जो लाभ होता है उससे सौ गुणा अधिक लाभ गङ्गा-जल के पान से प्राप्त होता है।[1]

शिव और गङ्गा को पृथक् पृथक् मान कर जो व्यक्ति गङ्गा की उपासना करता है वह मोक्ष का पात्र नहीं होता।[2] गङ्गा की कृपा से अन्धे , नपुंसक, मूर्ख, विकृतअङ्गों वाले, पतित, रोगी और क्रूर व्यक्ति भी देवताओं के तुल्य हो जाते हैं। ब्रह्म ज्ञान का कारण, अष्टाङ्ग योग, तप और यज्ञादि न होकर --गङ्गा के तट पर निवास करना ही है। कलयुग में तो गङ्गा का आश्रय लेकर ही ब्रह्म प्राप्ति की जा सकती है।

परवर्ती प्रकरण[3] प्रायश्चित से सम्बन्धित है। इसमें विभिन्न पापों के परिष्कार के लिए प्रायश्चित के भेद और विधि स्पष्ट की गयी है।

---

१. गङ्गावाक्यावली--तोयपान प्रकरण, पृ० २५७

२. ,, आश्रय प्रकरण, पृ० २५८-५६

३. ,, प्रायश्चित्त प्रकरण, पृ० २६१

शिव अ... के धर्मशास्त्र के प्रायश्चित प्रकरण में प्रायश्चित के समय के लिए लघु नाम का उच्चारण करना बताया गया है। प्रायश्चितों गुरु और मह...मं का विधान नहीं किया गया है। गङ्गा तो स्वयं है। एक बार ग...सम्पन्न है अत: उनके जल में शक्ति होना स्वाभाविक पापों की राशि ...स्नान करके, गङ्गाजल से पवित्र किया गया, मानव, भी गङ्गा में स्नान ...पर भी नरक को नहीं जाता है। वृत्रहन्ता इन्द्र

मुक्त हो गया था।

एक मात्र गङ्गा...

व्यक्ति कृतकृत्य;[1] मुक्त अथवा...ण करके जो व्यक्ति ...स्थित रहता है, वह

...त होता है।

गङ्गा में मरने से मु... ...जाती है क्योंकि यह गङ्गा परब्रह्म स्वरूपिणी है।[2] ज्ञान से मुक्ति प्र...ना और गङ्गा में मरने से मुक्ति प्राप्त होना--यह दोनों अविरोधी प... । कलयुग में विशेष रूप से गङ्गा ही ब्रह्मादिदेव लोकों की प्राप्ति का का... । जो योग से पूर्ण योगी मनुष्यों की होती है वही गङ्गा में मरे ...पक्ति की भी होती है। ज्ञान अथवा अज्ञान से, इच्छा अथवा अनिच्छा से ग... में मृत सांसारिक प्राणी मोक्ष और स्वर्ग का लाभ करता है।

मृत्यु के उपरान्त, जीव की अस्थियों ... स्थिति के सम्बन्ध में विश्वास देवी ने कुछ विवेचना प्रस्तुत किया है।[3] जिस समय मनुष्य की अस्थियाँ गङ्गा में विसर्जित की जाती हैं उसी समय से उसकी स्वर्ग

---

१. कृतकृत्य प्रकरण--गङ्गावाक्यावली, पृ० २६७

२. मृत्यु प्रकरण, वही, पृ० २६७

३. अस्थि स्थिति प्रकरण, वही, पृ० २७२- २७४

में स्थिति हो जाती है।

सभी तीर्थों, सभी दानों, सभी देवताओं की पूजा, यज्ञ कर्म की तपस्या, सभी पवित्र आश्रमों से जो पुण्य उत्पन्न होता है, वही पुण्य मनुष्य को गङ्गासागर सङ्गम के दर्शन, स्पर्श, पान, स्नान तथा अवगाहन से प्राप्त होता है। गङ्गासागर-सङ्गम स्नान प्रकरण[1] के अन्तर्गत ही प्रयाग स्नान, प्रयागावच्छिन्न गङ्गा स्नान , माघादिकरणक सामान्य तीर्थ स्नान, प्रकीर्णक स्नान, प्रयाग मुण्डन, प्रयाग-मरण-प्रकरण आदि विषयों को भी सूक्ष्म रूप से ग्रहण किया गया है।

तत्पश्चात् विघ्न-प्रकरण में विघ्नों तथा प्रतिषिद्ध प्रकरण में गङ्गा के लिए निषिद्ध कर्मों की गणना करायी गयी है।

विश्वास देवी का पुराण एवं स्मृति विषयक ज्ञान अत्यन्त विस्तृत है। गङ्गावाक्यावली में प्राय: सभी पुराणों एवं स्मृतियों के उद्धरण दिये गये हैं --इस कार्य के लिए वे प्रमुख हिन्दी कवि विद्यापति की भी आभारी है।[2]

विश्वास देवी की विशेषता यह है कि उन्होंने अन्य कृतियों के उदाहरणों को भली भाँति अवगत करके, अपने तर्कों सहित उद्धृत किया है। उन्होंने श्राद्धों के सम्बन्ध में तथा प्रयाग में किये जाने वाले मुण्डन के विषय में विशेष रूप से अपना मत प्रदर्शित किया है। विषय सामग्री की दृष्टि से यह एक विशालकाय ग्रन्थ है — जिसकी तुलना अन्य ग्रन्थों से करना उचित नहीं लगता। प्रसिद्ध स्मृतिकार रघुनन्दन ने भी गङ्गावाक्यावली के गुणों और प्रसिद्धि का उल्लेख किया है।

---

१. गङ्गावाक्यावली, पृ० २७४

२. कियन्निबन्धमालोक्य श्रीविद्यापतिसूरिणा।
गङ्गावाक्यावली देव्या प्रमाणैर्विमलीकृता।।
यह पद्य प्रत्येक हस्तलिखित प्रति में उपलब्ध होता है।

विश्वासदेवी कृत गङ्गावाक्यावली ही एक मात्र स्मृति सम्बन्धी रचना है जो कि नारी द्वारा निर्मित है। गङ्गावाक्यावली में यद्यपि जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों, विधि-विधान सम्बन्धी निर्देशों का ही वर्णन किया गया है किन्तु फिर भी प्रस्तुत ग्रन्थ में शुष्कता का पूर्णरूपेण अभाव है । लेखिका ने अपनी बुद्धि के चमत्कार द्वारा उच्चकोटि के विचारों का समन्वय कराया है। एक नारी के रूप में विश्वास देवी पुरुषों की शक्तिशाली नेता है, एक विदुषी के रूप में, उन्होंने उपनिषद्कालीन गार्गी वाचक्नवी की भाँति, अपने समय में अनेक याज्ञवल्क्य ऋषियों को पराजित करने में समर्थ थीं ।[१]

---

१. गङ्गावाक्यावली परिचय, पृ० १०६

षष्ठ-अध्याय

'क्षमाराव एक आधुनिक कवयित्री'

पण्डिता क्षमराव ने महाराष्ट्र के महान् प्राचीन सन्तों केजीवनचरितों को अपनी लेखनी द्वारा प्रस्तुत किया है। उनमें श्रीरामदासचरितम्,श्री तुकाराम चरितम्, श्री ज्ञानेश्वर चरितम् प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'मीरालहरी' में कृष्ण की अनन्य उपासिका मीराबाई के जीवन का भी सूक्ष्म चित्रण किया है।

श्रीतुकारामचरितम् -कथानक —

आज से ३०० वर्ष पूर्व, महाराष्ट्र के शूद्र परिवार में पूज्य चरित्र वाले, सन्त तुकाराम का जन्म हुआ था। महाराष्ट्र सन्त ज्ञानेश्वर आदि अनेक सन्तों का पवित्र जन्मस्थान रहा है। यहाँ पर इन्द्रायणी नदी के किनारे देहू में तुकाराम जी के योगी विश्वम्भर नामक वंशज निवास करते थे। अपनी माता की आज्ञानुसार पण्ढरपुर की यात्रा करके उन्होंने वहाँ पाण्डुरङ्ग का निरन्तर ध्यान किया। ग्रामीणजनों के मिथ्या विवाद की ओर ध्यान न देकर जब आप ध्यान में लीन रहे, तो पाण्डुरङ्ग ने प्रगट होकर कहा, "मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ अत: अब यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है, ग्राम में रह कर ही मेरी पूजा करो।"

वहाँ से वापस लौटकर माता सहित हरि के अन्वेषण के लिए उन्होंने वन्य प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। वहाँ पर भूमि खोदते खोदते उन्हें रुक्मिणी-माधव की सुन्दर प्रतिमा उपलब्ध हुयी। बाद में मन्दिर में उसकी स्थापना करके वहीं हरिकीर्तन में मग्न रहकर विश्वम्भर की मृत्यु हो गयी। उनकी मृत्यु

से उनकी पत्नी आभा भी सांसारिक ऐश्वर्य को छोड़ कर भगवद् भजन की ओर अग्रसर हो गयी। किन्तु उनके दोनों पुत्र हरि एवं मुकुन्द अपने पिता से पूर्णत: विपरीत बुद्धि वाले होने के कारण ऐहिक जीवन एवं भोग में लिप्त रहते थे। बिना किसी सैनिक शिक्षा को प्राप्त किये हुए भी अपने प्रान्तीय शासक द्वारा उनको सेनापति का पद तथा सम्मान प्रदान कर दिया गया।

पुत्र वात्सल्य से व्याकुल आभा को स्वप्न में पाण्डुरङ्ग जी ने ईश्वर भक्ति का आदेश दिया जिसे आभा ने अपने दोनों पुत्रों को सुनाया। अपने आदेश का कोई प्रभाव न देखकर पुन: पाण्डुरङ्ग ने कहा - "संसार के प्रति आसक्ति ही नाश का कारण है।" अचानक युद्ध की घोषणा हो जाने से उसके दोनों पुत्र युद्धस्थल में मारे गये। दु:खी माता के देखते देखते उसकी एक पुत्रवधू ने पति की चिता में अपने जीवन की आहुति दे दी एवं दूसरी गर्भवती ने अपने पितृगृह की ओर प्रस्थान कर दिया। अन्त में वृद्धा आभा पुन: पाण्डुरङ्ग की शरण में आकर शीघ्र ही अपने पति के समीप चली गयीं। अपनी श्वश्रू की मृत्यु का समाचार सुनकर पुत्रवधू भी अपने मायके से वापस लौट आयी।

अनेक वर्षों के बाद विश्वम्भर के पौत्र के पौत्र एवम् उदार कीर्तियुक्त योगी तुकाराम की उत्पत्ति हुयी। इनकी माता का नाम कनाकी तथा पिता बोलाजिनाम से प्रसिद्ध थे। जन्म के बारहवें दिन श्री पाण्डुरङ्ग के मन्दिर में नामकरण हेतु याचना की जाने पर आकाशवाणी द्वारा तुकाराम ऐसा उच्चारण किया गया। पहले पिता ने ग्राम में स्थित किसी कन्या से तुकाराम का पाणि-ग्रहण संस्कार सम्पन्न कराया, किन्तु श्वास से पीड़िता वह कभी भी सांसारिक सुख का उपभोग न कर सकी अत: आवलि नामकी कुमारी के साथ पुन: इनका विवाह किया गया। इनके बड़े भाई ने अपनी पत्नी के देहावसान के कारण सन्यास ले लिया अत: पिता के निधन के पश्चात् तुकाराम के ऊपर ही सम्पूर्ण परिवार का भार आ पड़ा। इसके कुछ ही दिनों बाद पति मिलन के लिए उत्सुक माता का भी स्वर्ग गमन हो गया। तुकाराम की आर्थिक स्थिति हीन हो जाने से अनेक लोगों का उधार उनके ऊपर हो गया। किसी प्रकार से सब ओर से धन - याचना करके, उनकी दोनों पत्नियों ने बैलों के ऊपर धान्यादि लादकर वाणिज्य

यात्रा के लिए तुकाराम को भेजा । एक सप्ताह के उपरान्त जब एक बैल के साथ खाली हाथ तुकाराम गृह वापस लौटे तो उन्होंने मार्ग में आये तूफान तथा अपनी हानि एवं पाण्डुरङ्ग की सहायता की वार्ता बताकर नर्तन करना प्रारम्भ कर दिया । इधर जिन लोगों से तुकाराम ने ऋण लिया था, वे उन्हें घेरने लगे । किन्तु पाण्डुरङ्ग की श्रद्धा एवं भक्ति में लीन तुकाराम, क्षुधा से पीड़ित अपनी सन्तानों द्वारा मार्ग में बिखरे अन्न के दाने बीनकर खाने की ओर से भी उदासीन रहे ।

समय की गति के साथ ही तुकाराम एक प्रसिद्ध सन्त बने गये, जो आसक्ति रहित होकर भगवान् पाण्डुरङ्ग की भक्ति में तत्पर रहते थे । यद्यपि उनकी ज्येष्ठा पत्नी उन्हें गृहस्थ के धर्म का उपदेश निरन्तर देती थी किन्तु तुकाराम पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा । एक बार पुन: सब ओर से धन एकत्रित करके, उससे मिर्च खरीद कर, उसे बैलों पर लाद कर, उनकी दोनों पत्नियों ने उन्हें व्यापार करने के लिए भेजा । कोङ्कण प्रदेश में शिव मन्दिर के समीप पीपल के वृक्ष के नीचे उन्होंने समस्त सामग्री को रख दिया । सभी लोग स्वेच्छा से मूल्यबाद में दे देंगे ' ऐसा कह कर, 'ऐसा ही हो' इस प्रकार तुकाराम की अनुमति लेकर, सम्पूर्ण मिर्च उठाकर ले गये । किन्तु वहां पर उपस्थित एक व्यक्ति ने प्रत्येक के घर जाकर, उचित धन लेकर तुकाराम को दिया । उसके चले जाने पर जब उसके बारे में ग्रामीणों ने तुकाराम से पूछा तो उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया जिसे सुनकर पाण्डुरङ्ग की शक्ति के प्रति सभी को अद्भुत अनुभव हुआ । मार्ग में जाते हुए किसी शठ ने पीतल के आभूषण को स्वर्ण बताकर, तुकाराम से समस्त धन राशि ले ली । पुन: घर आने पर उनकी उस वार्ता को सुनकर उनकी दोनों पत्नियां अत्यन्त दु:खी हुयीं । एक दिन पुन: दो सौ रुपये का नमक खरीद कर उन्हें बैलों पर रखकर बाले घाट नामक नगर में जाकर बेंचने से मूल्य से अधिक ५०) रूपये तुकाराम को प्राप्त हुए, किन्तु मार्ग में राजा के दण्ड से पीड़ित किसी व्यक्ति को सम्पूर्ण धन देकर इस प्रकार पुन: घर आने पर सभी के द्वारा वे तिरस्कृत हुए ।

इसके बाद ही भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ जाने से उनकी ज्येष्ठा पत्नी

एवं पुत्र का अन्त हो गया । इस समय से तो सन्त तुकाराम पहले की अपेक्षा और भी अधिक ईश्वर भक्ति में लीन रहने लगे । उसी समय एक क्षेत्रपति ने उनसे अपने खेत की रक्षा करने को कहा । उसको मानकर भी, वन्यपक्षियों द्वारा सम्पूर्ण खेत का धान्य समाप्त कर देने पर भी तुकाराम ने दया के कारण नहीं रोका, किन्तु बाद में पाण्डुरङ्ग की कृपा से उसमें पहले से भी अधिक वृद्धि हो गयी । तुकाराम द्वारा किये गये अनेक उपकारों एवं दानों के कारण उनकी पत्नी आवलि उनसे बहुत क्रुद्ध हो जाया करती थी और भगवान् पाण्डु-रङ्ग तक को प्राय: अपशब्द कहा करती थी । एक दिन जब वह अपनी एक मात्र साड़ी को टांगकर स्नानगृह में गयी तो तुकाराम ने रुदन करती हुयी किसी जीर्ण वस्त्रवाली स्त्री को वह साड़ी दे दी । पत्नी ने बाहर आकर पति का अत्यधिक तिरस्कार किया एवं अपनी निर्धनता का कारण उसे ही बताया । उसी बीच में उसे स्वर्ण के समान उज्ज्वल एक वस्त्र प्राप्त हुआ, उसे धारण करके, वह विवाहोत्सव में गयी, जिसे देखकर वहां पर उपस्थित सभी जन चमत्कृत हो उठे ।

नदी के किनारे स्थित मन्दिर में रमा-माधव के कीर्तन में मग्न रहकर तुकाराम अपना समय व्यतीत किया करते थे । वहीं वन में रह कर, अपने परो-पकारी स्वभाव द्वारा पशुओं एवं वृद्धजनों की सहायता भी किया करते थे । तुकाराम के इस स्वभाव को देख कर जहां उनकी पत्नी क्रुद्ध होती थीं, वहीं अन्य हितैषी गण आशीर्वाद दिया करते थे ।

एक दिन पितरों की तिथि आने पर, ईश्वर की कृपा से पति-पत्नी दोनों ने साक्षात् उपस्थित पितरों को भोजनादि कराके, उनका सत्कार किया । बाद में तुकाराम की प्रार्थना पर, स्वयं हरि ने भी उनके साथ भोजन किया । पुन: एक दिन चिन्तामणि नाम के ब्राह्मण द्वारा भोजनार्थ निमन्त्रित किये जाने पर, तुकाराम ने हरि एवं गणेश दोनों को वहां उपस्थित कराया । साथ ही चिन्तामणि की श्रद्धा से भर कर, तुकाराम ने उन्हें ईश्वर शक्ति एवं भक्ति

का उपदेश सुन्दर शब्दों में किया ।

उसी समय स्वयं हरि ने, शास्त्रों में कुशल , देशपाण्डेय नामक एक ब्राह्मण को आलन्दी जाकर ईश्वरचिन्ता की आज्ञा दी । वहीं पर सन्त ज्ञानेश्वर की समाधि में बारह दिनों तक व्रत करने के बाद, उसे तुकाराम के समीप जाने का आदेश मिला । वहां तुकाराम द्वारा दी गयी, एकादश पर्वों की माला का तिरस्कार करके, देश पाण्डेय, आलन्दी आकर उग्रतर तप करने लगे । किन्तु आकाशवाणी द्वारा उन्हें तुकाराम की वास्तविकता का ज्ञान हो गया ।

वाघोलिपुर निवासी रामेश्वर नाम का एक ब्राह्मण तुकाराम के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु था । उसके कहने पर तुकाराम ने अपने सम्पूर्ण पर्वों को इन्द्रायणी में फेंक दिया । जिसके कारण दु:खी होकर, उन्होंने बिना अन्न जल ग्रहण किये अनेक दिनों तक ईश्वराधना की । पुन: हरि की कृपा से नदी के जल में सभी पत्र उतराने लगे, जिन्हें मुनि ने अपने हाथों से एकत्रित कर लिया ।

मुम्बा जी नाम के एक अन्य ब्राह्मण ने भी तुकाराम के प्रति ईर्ष्या प्रदर्शित की । उसने तुकाराम की भैंस अपने खेत में प्रविष्ट हो जाने के कारण कांटों द्वारा मन्दिर का मार्ग अवरुद्ध कर दिया । एकादशी की पुण्य तिथि को तुकाराम ने वहां के मार्ग को स्वच्छ कर दिया, अत: क्रुद्ध ब्राह्मण ने सन्त को निर्दयतापूर्वक ताडित किया । किन्तु हरिकीर्तन में तल्लीन तुकाराम जब दूसरे दिन उसके घर गये तो ब्राह्मण के शरीर में उत्पन्न हुए घावों तथा वेदना से व्यथित देखा, अन्त में कृपालु मुनि ने उपचार द्वारा स्वयं उसे स्वस्थ किया ।

उनकी कीर्ति प्रसर को सुनकर, प्रतापवान राष्ट्रपति शिवाजी ने अपने संदेशवाहक को उनके समीप भेजा किन्तु तुकाराम ने उन्हें उत्तर दिया कि वन्य प्रदेशीय निवासी एवं छत्रपति शिवाजी का सम्बन्ध उचित नहीं है । उनके इस वाक्य को सुनकर भी, दर्शन के लिए उत्सुक शिवाजि ने लोहपुर में आकर उन्हें सुवर्ण मुद्राओं से पूरित पात्र समर्पित किया, जिसे देखकर मुनि ने अपनी अनासक्ति भावना का प्रदर्शन किया । ऋषि के प्रति आकृष्ट होकर, शासक ने हरिकीर्तन

को सुनकर कुछ दिनों तक वहीं निवास किया । शिवाजि के राजधानी में न जाने के कारण दु:खी होकर, शिवाजि की माता ने स्वयं मुनि के निवास स्थान में पदार्पण किया । अत: सन्त तुकाराम ने उन्हें क्षत्रिय के धर्मों का उपदेश देकर, शिवाजि को उनकी पुरी में वापस भेजा ।

दिन प्रति दिन तुकाराम के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि होने लगी एवम् उसके शत्रु भी मित्र बनने लगे । एक बार एक विद्वान् ने अपनी रचना का पाठ तुकाराम जी के सम्मुख किया जिसे उन्होंने कम्बल ओढ़कर तथा कानों में उंगली लगाकर सुना । अन्त में ब्राह्मण द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने कहा — आत्मा और परमात्मा की बीच ऐक्य को सुनना मेरे लिए विष है । कोई भी व्यक्ति ईश्वर के स्वभाव को जान सकता है, किन्तु कभी भी उसकी शक्तियों को प्राप्त नहीं कर सकता है । " अपने शिष्यों के आग्रह पर, उन्होंने आशीष देकर, उन्हें सातों तीर्थों की यात्रा हेतु भेजा । वहां पर एक तुम्बी को भी स्नान कराने के लिए दिया बाद में उसी के टुकड़े करके सभी जनों के सामने रखते हुए मुनि ने कहा-- " आन्तरिक दोष बाह्य शुद्धि से कभी दूर नहीं होते हैं । "

एक दिन जब शिवाजी मुनि दर्शन के लिए गये थे , तो किसी गुप्त यवन के द्वारा सूचना मिल जाने के कारण, सैकड़ों यवन सैनिकों ने उस मन्दिर को घेर लिया । उस समय हरि के ध्यान से तुकाराम जी ने शिवाजी की सैकड़ों आकृतियां उत्पन्न कर दीं । अन्त में भय त्रस्त सेना वापस चली गयी तथा मुनि ने भी शिवाजि को वाजि और पुरीषपिण्ड का दान देकर उसकी पुरी की ओर भेज दिया ।

तुकाराम , जिन्होंने अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर ली थी, अब प्रति दिन कम से कम आहार करने लगे । एक दिन, स्वयं उपस्थित होकर हरि ने तुकाराम से वैकुण्ठ चलने का आग्रह किया । पांच दिनों तक ग्रामीणों ने इन्द्रायणी के तट पर पाण्डुरङ्ग का उत्सव मनाया । अन्त में पाण्डुरङ्ग के पुन: पुन: आग्रह करने पर तुकाराम ने अपनी पत्नी से भी वैकुण्ठ चलने को कहा । किन्तु ऐहिक सुखों में लीन आवलि ने इसे स्वीकार नहीं किया । अन्त में समस्त देवों तथा गन्धर्वों के गान से पूर्ण वैकुण्ठ की ओर तुकाराम चले गये । उसके जाने के बाद उनके मतानुयायी गण तीन दिन एवं तीन रात्रि तक बिना निद्रा के

निरन्तर बैठे रहे, किन्तु वे पुन: जगतीतल पर उस शक्ति को न देख सके ।

रामाराव : श्रीरामदासचरितम्- (कथानक)

आज से तीन सौ वर्ष पूर्व, जब भारत पर यवनों ने आक्रमण किया, उस समय सम्पूर्ण महाराष्ट्र प्रदेश में धार्मिक अशान्ति उत्पन्न होने पर, साक्षात् पवनपुत्र की भाँति पीड़ितों की रक्षा हेतु रामदास का अवतरण हुआ था ।

गोदावरी नदी के तट पर स्थित ' जाम्ब ' नामक पुर में दशरथ पन्त ठोसर के अनन्तर बीसवीं पीढ़ी में सूर्याजिपन्त का जन्म हुआ । अपने पूर्वजों की भाँति पुरोहित वृत्ति से जीवन निर्वाह करने वाले सूर्याजि पन्त, अपनी पत्नी रेणु-देवी सहित, ईश्वर की आराधना में निमग्न रहकर गृहस्थाश्रम धर्म पालन करते थे । समय बीतने पर सूर्याजि पन्त को, रेणु देवी से (१६०५ ई०) गङ्गाधर एवं रामजन्म के दिन अर्थात् चैत्र शुक्लपक्ष नवमी के दिन नारायण, दो पुत्रों की प्राप्ति हुयी, इन्हीं नारायण को बाद में रामदास की संज्ञा से संसार में प्रसिद्धि हुयी । एक दिन जब तीर्थ सेवी सूर्याजि पन्त अपने परिवार के लोगों के साथ मुनि एक-नाथ के दर्शन के लिए पैठण गये, तो नारायण को गोद में लेकर एकनाथ जी ने कहा ," यह प्रभावशाली पुरुष समस्त आर्तजनों के दु:खों को दूर करके, जाति एवं देश का कल्याण करेगा, जिस धर्माभ्युदय के कार्य को, मैंने प्रारम्भ किया है, उसे यह विस्तृत करेगा ।" ऐसा कहकर पूज्य एकनाथ जी अन्तर्धान हो गये ।

बाल्यावस्था से ही नारायण गोदावरी के तट पर स्थित वृक्षों के ऊपर हनुमान जी की भाँति शीघ्र चढ़ जाया करते थे । एक दिन माता-पिता के न देख पाने पर कुमार एक वन से वनान्तर में विचरण करते हुए अलक्षित हो गये । मार्ग में वानर द्वारा उठा कर ले गये किसी बालक को छुड़ा कर उसकी माता को प्रदान कर दिया । उससे प्राप्त एक रामनामाङ्कित पत्र को हस्तगत करके, नारायण एक क्षण के लिए विचलित हो उठे । इधर नारायण के माता-

पिता पुत्र वियोग के कारण अत्यन्त दु:खी हो गये, इधर वन में एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए नारायण एकान्त में चिन्तन कर रहे थे। प्रेमवश पिता ने पुत्र को तटस्थ एवं उदासीन देखकर अनुमान किया कि अवश्य ही यह किसी भूत, पिशाच या मृतात्मा द्वारा ग्रस्त है, किन्तु मुट्ठी में पकड़े हुए पत्र को पढ़ कर पिता को पुत्र की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया। तत्पश्चात् पुत्र की उपनयन विधि सम्पन्न करके उसे विद्याध्ययन के लिए पूज्य गुरु के समीप प्रेषित किया तथा पार्वती नाम की किसी कुलीना कुमारी के साथ गङ्गाधर का विवाह कर दिया। शीघ्र ही सूर्याजिपन्त का देहावसान हो जाने के कारण दोनों पुत्रों पर मातृसेवा एवं रक्षा का भार भी आ पड़ा।

उस समय भी अल्पायु बालक नारायण ने अपने सहपाठी बालकों को ही नहीं, अपितु अपने गुरुओं को भी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से परास्त कर दिया। अब गृह में निवास करके ही विद्या लाभ करते हुए नारायण ने अपने अग्रज गङ्गाधर से स्नान प्राप्ति के लिए प्रार्थना की। उसके बाद उत्कट ईश्वर भक्ति से प्रेरित हुए नारायण ने मारुति मन्दिर में जाकर रात्रि व्यतीत कर दी। निरन्तर अश्रुपात होने के कारण उनका, कण्ठ शुष्क हो गया, श्रम से खिन्न शरीर वाले नारायण, अन्धकार में पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। तत्क्षण किसी किसी उज्ज्वल ज्योति ने उनको मूर्च्छा की निद्रा से जागृत किया। जागने पर सम्मुख स्थित अञ्जनि पुत्र को देखकर, नारायण ने उन्हें स्फारित नेत्रों से प्रणाम किया। तब आञ्जनेय ने रघुवीर का प्रदर्शन कर उस शिशु को अतुलनीय विस्मय से पूर्ण कर दिया। रघुनन्दन ने अपने हस्ताम्बुज को नारायण के मस्तक पर रख कर कहा, " यह समस्त धरा म्लेच्छों द्वारा दूषित कर दी गयी है, एवम् अपने प्राणियों के सुख की अभिलाषा से मैं तुम्हें उपदेश देता हूँ। अपने हित को छोड़कर, कृष्णा नदी के किनारे पवित्र व्रत का पालन करो। मेरे प्रति गाढ़ निष्ठा एवं मेरी उपासना का नास्तिकों में प्रचार करो।" ऐसी गम्भीर वाणी को उच्चारित कर रघुपति स्वयं लुप्त हो गये।

उनके सहोदर ने जब हनुमान जी के मन्दिर में जाकर, नारायण को निमीलित नेत्रों से ध्यान मग्न देखा तो वह उन्हें पुन: घर वापस ले आये। इस

अपूर्व घटना को प्रौढ़ होने पर नारायण ने अपनी वाणी (मराठी) में अभङ्ग पद में वर्णित किया है। जब उनकी माता ने अपने नौ वर्ष की आयु वाले पुत्र का विवाह करने की अभिलाषा व्यक्त की तो पुरोहितों ने भी एक स्वर से माता के मत का समर्थन किया। एक दिन दु:खी चित्त से, घर से बाहर कुयें के समीप में ही स्थित वृक्ष पर चढ़कर, नारायण दो तीन दिनों तक विवाह के बन्धन से बचने का उपाय सोचने लगे। अचानक बालकों के समूह द्वारा उत्तेजित होकर वे कुयें में कूद पड़े। पुन: वृद्धमाता एवं ज्येष्ठ भ्राता के आने पर कुयें से निकल कर, गृह में फिर से निवास करने लगे।

पूर्व प्रसङ्ग से व्यग्र-चित्तयुक्त गङ्गाधर ने माता को परामर्श किया कि वह नारायण से पुन: विवाह से सम्बन्धित वार्ता न करे जिसको सुनकर कुमार नारायण अत्यन्त प्रसन्न मुद्रा से रहने लगे। रात्रि में भी स्वप्नावस्था में उनके सामने रामायण में वर्णित भगवान् राम के जीवन के विविध चित्र उपस्थित होते थे। एक दिन फिर से माता द्वारा, उनके भाई मानाजि पन्त की पुत्री के साथ, नारायण का विवाह फाल्गुन मास की शुभ तिथि में निश्चित हो गया। वर यात्रा पहुँच जाने पर जैसे ही वैवाहिक क्रियायें सम्पन्न होने लगीं। वर नारायण, उस स्थल से साक्षात् मरुत की भाँति वेग से भागकर अश्वत्थ वृक्ष के कोटर में दो तीन दिनों तक छिपकर पञ्चवटी चले गये। अत्यधिक खोजने पर भी जब नारायण न मिले तो कर्तव्यमूढ़ा जननी अति व्याकुल हो उठी और उस कन्या का विवाह किसी और के साथ सम्पन्न कर दिया गया। अन्त में नारायण की माता एवं ज्येष्ठ भ्राता अपनी पुरी को वापस चले गये।

गोदावरी नदी के शीतल जल में स्नान कर, एवं पञ्चवटी के रमणीय दृश्यों को देखकर मुग्ध हुए नारायण ने मन्दिर में सीतापति का दर्शन किया। वहीं पर वैवाहिक वस्त्र को छोड़कर, उन्होंने बारह वर्षों तक तपस्या करने का दृढ़ निश्चय किया। गोदावरी के जल में एक पैर से खड़े रहकर, नेत्र बन्द करके, पहले राम के मन्त्र का जप करते, तत्पश्चात् हजार बार गायत्री मन्त्र का

जाप करते थे। अपूर्वदर्शी उन महात्मा का भिक्षाटन के समय सभी पुरवासी सत्कार करते थे। चौदहों विद्याओं में निष्णात वे रात्रि में राममन्दिर में ईश्वर-कथा को सुनाते थे। इस प्रकार वहाँ रह कर, इनके तीन वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार भगवान् राम ने प्रगट होकर उन्हें `रामदास` की संज्ञा से विभूषित किया। और बाद में शिवाजी के मिलने पर ये `समर्थ गुरु` के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

कभी सन्तानहीना, किसी ब्राह्मणी के पति का देहान्त हो जाने से, कुङ्कुम एवं सौभाग्य युक्ता, उसने भी पति की चिता में अपनी जीवन लीला समाप्त करने से पूर्व मुनि रामदास को प्रणाम किया। रामदास मुनि उसे `सौभाग्यवती हो तथा आठपुत्रों वाली हो` ऐसा आशीर्वाद प्रदान कर दिया। बाद में ईश्वर की स्तुति द्वारा, अपनी वाणी की सफलता के लिए उस मृत ब्राह्मण को जीवित कर दिया। पुन: घर जाने पर जब उन दम्पति को प्रथम पुत्र लाभ हुआ, तो वे उसको ऋषि की शरण में दे गये। फिर उन्हें अन्य नौ पुत्रों की प्राप्ति हुयी। मुनि ने उस पुत्र का यज्ञोपवीत करके उसका नाम उद्धव रक्खा।

फिर रघुपति ने प्रकट होकर रामदास जी को दक्षिण की ओर प्रस्थान करने का आदेश प्रदान किया। तत्पश्चात् भगवान् राम के जन्म दिन के उत्सव पर बालरूपधारी पवनपुत्र एवं रामदास जी के मध्य वादविवाद होने लगा। पुन: रघुपति ने हनुमान के सहित उपस्थित होकर रामदास जी को संसार की यात्रा करने का आदेश दिया। रामदास जी ने कौपीन एवं गोफणा को धारण करके पृथ्वी पर उन सभी मन्दिरों का भ्रमण किया, जिनकी स्वर्ण प्रतिमाओं एवं बहुमूल्य रत्नों को अधर्मी यवनों ने चुरा लिया था। वृद्धों की पुकार एवं दीन-दु:खी बच्चों तथा अबलाओं की चीत्कार को सुनकर, मुनि रामदास ने पुन: धर्म स्थापना का निश्चय किया। शिवमन्दिर में किसी म्लेच्छ या विदेशी के भ्रम से, कर्मचारी द्वारा मुनि का प्रवेश निषिद्ध कर देने से, वहाँ पर स्थित शिवलिङ्ग अन्तर्धान हो गया। फिर से स्तुति किये जाने पर, जब मुनि मन्दिर में प्रविष्ट हुए, तो पुन: वो मूर्ति दिखाई पड़ने लगी। हनुमान घाट में उन्होंने मारुति की प्रतिमा स्थापित की। मथुरा, प्रभास, विन्दार्क एवं वृन्दावन आदि तीर्थों की

यात्रा कर, वहां पर मठों की स्थापना की । तत्पश्चात् कश्मीर जाने पर समर्थ की एक सिद्ध योगी के साथ वेदान्त विषयक वार्ता हुयी । उसके बाद उन्होंने केदार, बद्रीनारायण, मनसा झील, एवं जगन्नाथ आदि तीर्थों का अटन किया । इन सभी स्थानों में उन्होंने अनेक व्यक्तियों को धर्मदीक्षा प्रदान की । और समुद्र तट की ओर रामेश्वर, वेंकटेशाद्रि, किष्किन्धपुर, पम्पासर, ऋष्यमूक पर्वत आदि सुन्दर तीर्थों को घूमकर , वहां पर अनेक शिष्य बना लिये । सह्याद्रि की ओर जाकर, बारहवर्षों के पश्चात् पञ्चवटी वापस लौटे । पुन: भगवान् राम ने उन्हें कृष्णानदी के किनारे पर जाकर, उनका कार्य करने का उपदेश दिया, वहां उनको मातृभूमि एवं माता के दर्शन की अनुमति भी प्राप्त हो गयी ।

इधर रामदास मुनि ने पैठण की यात्रा की, उधर उनकी माता पुत्रवियोग के कारण रुदन करते करते नेत्रहीना हो गयीं थीं । ज्येष्ठ पुत्र के समझाने पर भी उनके मन में नारायण की याद सदैव रहती थी । पैठण में भी मुनि एकनाथ की समाधि के समीप रामदास जी हरिकीर्तन एवं अनेक विचित्र चमत्कार प्रदर्शन किया करते थे, जिनके द्वारा वहां के निवासियों को उनकी अलौकिक शक्ति का ज्ञान हो गया था तथा सभी जन उनके प्रति ईश्वर के सदृश श्रद्धा करने लगे । वहीं एक ब्राह्मण ने रामदास को पहचान कर उनकी माता की अस्वस्थता की सूचना दी जिसे सुनकर रामदास जी शीघ्र ही मातृदर्शन के लिए गये । उन्होंने अपनी शक्ति से माता को नेत्र प्रदान किये, एवं माता के सम्मुख ईश्वरीय सत्ता तथा ज्ञान का भी स्पष्टीकरण किया । माता एवं भाई के साथ एक मास तक निवास करके रामदास जी ने अपनी मां से कहा कि जब कभी भी वह उन्हें याद करेंगी, वह पुन: आ जायेंगे । ऐसा कह कर उन्होंने अपनी माता को कपिलगीता का पाठ सुनाया एवं वहां से पुन: पञ्चवटी की ओर चले गये ।

मुनि के आने पर, रघुपति ने उन्हें शिवाजि से मिलने का आदेश दिया । उद्धव के ऊपर आश्रम का भार छोड़कर, कृष्णा के किनारे, मुनि ने धर्मोपदेश द्वारा अनेक युवकों और विद्यार्थियों को अपना शिष्य बना लिया ।

सह्याद्रि में निवास करते हुए, उनकी भेंट सन्त तुकाराम से हुयी । दोनों में परस्पर भ्रातृ सम्बन्ध स्थापित हो गया । एक दिन समर्थ ने, सन्त तुकाराम जी से उनका जीवनचरित, तथा संन्यास की वार्ता एवं पाण्डुरङ्ग की दया सम्बन्धी बातें सुनी और अपने जीवन की अनेक घटनाओं का चित्रण भी किया । एक दिन मुनि ने सती नाम की एक स्त्री तथा उसके सम्पूर्ण परिवार को यवनों के अत्याचार से बचा लिया जिससे उस परिवार के सभी लोग उनके अनुयायी बन गये । वहीं पर एक दिन राम-सीता एवं हनुमान की प्रतिमा, तथा शिव पार्वती की मूर्ति प्राप्त करके, राम के जन्मदिन के अवसर पर उनकी स्थापना की । उनकी प्रतिमाओं को ग्रामीणों ने वहां से हटाने का प्रयास किया, किन्तु वे उन्हें ले जाने में असमर्थ हो गये ।

अपनी पारिवारिक देवी भवानी के आदेश से शिवाजि ने रामदास जी को अपना गुरु बनाने के निमित्त एक पत्र भेजा जिसका उत्तर उन्हें अत्यन्त प्रेमपूर्वक लिखा हुआ मिला । तत्पश्चात् शिवाजि, 'दशबोध' (रचना) की रचना करते हुए, वृक्ष के नीचे स्थित मुनि के समीप गये । शिवाजि द्वारा पूजित मुनि ने, शिवाजि के अमूल्य आभूषणों को दूर फेंक दिया । पुन: तेरह मन्त्रों को सुनाकर, ऋषि ने वास्तविक ईश्वर ज्ञान का उपदेश दिया । शिवाजि के आग्रह पर उनको क्षत्रिय के कर्तव्य भी बताये गये । मुनि ने शिवाजि को अश्म, मृद् एवं पुरीष से युक्त घोड़ा प्रदान किया जो विशाल पृथ्वी, महलों एवं शक्ति का प्रतीक था । उन सभी को ग्रहण करके शिवाजि अपने राज्य को वापस लौट गये ।

तब से शिवाजि प्राय: अपने गुरु के समीप जाया करते थे । जब यवनों ने चारों ओर से भारत को आक्रान्त कर लिया, तब दीर्घकाल तक उनको गुरु-दर्शनलाभ न हो सका । ऐसे समय में रामदास जी ने स्वयं राजसभा में जाकर कहा-- "जिस समय तुम कष्ट में हो उस समय अपने परिवार की देवी के आदेश का पालन किया करो ।" उनके आदेश से शिवाजि ने शत्रु पर विजय प्राप्त की और अपने दो हजार शिष्यों सहित पर्वतीय प्रदेश में गुरुदर्शनार्थ गये । उस समय अपनी सामर्थ्य से समर्थ ने उन सभी को स्वर्ण पात्रों में भोजन कराया । इसी प्रकार अनेक स्थलों पर गुरु ने गर्वयुक्त शिवाजि का मार्ग प्रदर्शित किया ।

शिवाजि की निरन्तर विजय से यवन शासक भयभीत हो उठे । इधर शिवाजि निरन्तर गुरुभक्ति में लीन थे । एक दिन पेट में दर्द का बहाना करके गुरु ने शिवाजि से शेरनी का दूध लाने को कहा । तत्क्षण ही अपने प्राणों को देने में तत्पर शिवाजि ने गुरु आज्ञा का पालन किया । इस प्रकार प्रतिक्षण सबको सन्तुष्ट करते हुए एक दिन 'राम राम' का उच्चारण करके, शिवाजि ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी । महाराष्ट्र के वीर पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर समर्थ ने कहा " ईश्वर की इच्छा सबसे शक्तिशाली होती है ।" उसके छ: महीने बाद प्रसिद्ध सन्त रामदास भी अपनी काव्यात्मक रचनाओं को छोड़कर, शिवाजि सहित, देश में स्वराज्य की स्थापना करके, राम एवं मारुति की शरण में चले गये ।

ज्ञानेश्वरचरितम् — (कथानक)

आज से ६०० वर्ष पूर्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए, श्री ज्ञानेश्वर महाराज पूर्व वैठण से आठ कोस की दूरी पर , दक्षिण में गोदावरी नदी के किनारे आपे गांव के रहने वाले थे, जहां वे लोग कुलकर्णि या पटवारी का नाम करते थे । ज्ञानेश्वर जी के पिता का नाम विट्ठल पन्त और दादा का नाम गोविन्द पन्त था । विट्ठल पन्त को बाल्यावस्था में ही अपने मामा जी से वेदों और शास्त्रों की अच्छी शिक्षा मिली थी । अत: वे ज्ञानी और ईश्वर भक्त थे । विद्याध्ययन के पश्चात् माता-पिता की अनुमति लेकर उन्होंने द्वारका , पिण्डारक तथा सुदामा-पुरी आदि तीर्थों की यात्रा प्रारम्भ कर दी । इस प्रकार जब वे अनेक तीर्थों की यात्रा करके पूना के पास इन्द्रायणीनदी के तट पर स्थित आलन्दिपुरी नामक ग्राम में पहुंचे तब वहां के कुलकर्णि सिधो पन्त से उनकी भेंट हुयी । वहां पर विट्ठल पन्त एक मन्दिर में ठहरे हुए थे । वे अत्यन्त प्रतिभाशाली एवं उम्पन्न थे, साथ ही उनकी वृत्ति भी बहुत निर्मल थी और उनका आचरण भी बहुत पवित्र था अत: सिधो पन्त और उनकी पत्नी उमा ने अपनी कन्या का विवाह विट्ठल पन्त से

करना चाहा किन्तु उन्होंने उन्हें कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया । परन्तु ऐसा कहते हैं कि उसी दिन रात्रि में विट्ठल पन्त को ऐसा स्वप्न हुआ कि उनसे किसी ने कहा , " तुम इस कन्या से विवाह कर लो क्योंकि इसके द्वारा उत्पन्न हुयी सन्तानें तुम्हारे कुल को उन्नतिशील बनायेंगी ।" अत: इसको ईश्वरीय इच्छा मानकर विट्ठल पन्त ने सिधो पन्त की कन्या रुक्मिणी बाई के साथ गृहस्था-श्रम स्वीकार कर लिया ।

यद्यपि विट्ठल पन्त ने स्वप्न में कहीं हुयी बात को मान लिया किन्तु फिर भी उनका मन गृहस्थाश्रम में नहीं लगा । वे प्राय: ईश्वर भक्ति में लीन रहकर गृहस्थी से उदासीन रहते थे । विवाहोपरान्त अपने सास ससुर की अनुमति लेकर विट्ठलपन्त ने पत्नी सहित अपने माता-पिता के पास आपे गांव पहुंचे । किन्तु गोविन्द पन्त और उनकी पत्नी के भाग्य में पुत्र और वधू का सुख नहीं था अत: विट्ठल पन्त के वहां पहुंचने से पूर्व ही उनके माता पिता का देहावसान हो गया ।

अब विट्ठल पन्त का वैराग्य और ईश्वर चिन्तन और भी अधिक बढ़ गया , यहां तक कि गृहस्थाश्रम का चलना भी दुर्लभ हो गया । अन्त में रुक्मिणी ने यह समाचार अपने माता-पिता को लिख भेजा । अत: सिधो पन्त अपनी कन्या और जामाता को आलन्दी ले गये । किन्तु उनकी मनोवृत्ति पूर्व-वत् ही रही और उनकी विरक्ति बढ़ती ही गयी । एक दिन गृह कार्य में मग्न अपनी पत्नी से गङ्गा स्नान का बहाना करके काशी चले गये । वहां श्री रामानन्द स्वामी से अपने को एकाकी बताकर दीक्षित हो गये और संन्यास ले लिया ।

पहले तो पति के अचानक चले जाने से विट्ठल पन्त की पत्नी रुक्मिणी बाई बहुत दु:खी हुयी किन्तु बाद में लोगों के द्वारा पति के

सन्यासी होने के समाचार को सुनकर, वे अत्यन्त नियम पूर्वक जीवन व्यतीत करने लगी। वे आठ प्रहर में एक बार भोजन कर पीपल की प्रदक्षिणा करती थी। इसी प्रकार के उग्र तप को वे बारह वर्ष तक निरन्तर करती रहीं। यद्यपि उनका यह कठोर व्रत और उग्र अनुष्ठान निष्काम था किन्तु फिर भी ईश्वर ने उनकी सुन ली।

एक बार संयोग से स्वामी रामानन्द अपने पचास तीर्थसेवी शिष्यों के साथ रामेश्वर की यात्रा के लिए जा रहे थे। मार्ग में आलन्दी ग्राम में विश्राम हेतु वे रुक गये। वे आलन्दी में जिस मारुति मन्दिर में ठहरे हुए थे, वहां पर रुक्मिणी बाई हनुमान जी के दर्शन हेतु जाया करती थी। वहां रामानन्द जी को प्रणाम करने पर उन्होंने रुक्मिणी बाई को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया। इस पर रुक्मिणी बाई ने उत्तर दिया आपकी वाणी निष्फल होगी क्योंकि मेरे पति ने काशी में संन्यास ले लिया है। उन्होंने रुक्मिणी बाई से उनके रूप, आकृति आदि के बारे में पूछ कर अपने मन में विचार किया कि अवश्य बारह वर्ष पूर्व सन्यासी होने वाला चैतन्य-विश्राम ही रुक्मिणी का पति होगा।

उन्होंने यह भी सोचा कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी को छोड़ कर सन्यास ग्रहण करता है शास्त्रों की दृष्टि में वह स्वयं दोषी होता है और उसे दीक्षा देने वाला गुरु भी दोष का भागी होता है अत: उन्होंने रामेश्वर यात्रा का विचार छोड़ दिया एवं रुक्मिणी बाई तथा उनके माता-पिता को साथ लेकर काशी लौट आये। यहां चैतन्याश्रम से सब हाल पूछने पर वे गुरु को नकारात्मक उत्तर न दे सके। इस पर गुरु की आज्ञा से चैतन्याश्रम अपनी पत्नी सहित गृहस्थाश्रम में निवास करने के लिए आलन्दी चले गये।

अब विट्ठल पन्त और रुक्मिणी बाई पर दूसरी विपत्ति आई कि समाज के व्यक्ति उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दे रहे थे। लोग समझते थे कि इससे सन्यासाश्रम का अपमान होता है तथा गृहस्थाश्रम पर भी कलङ्क लगता है। अत: लोग इन्हें नाना प्रकार के कष्ट पहुंचाने लगे। यहीं

ब्राह्मणों ने उन्हें अपनी जाति और समाज से बहिष्कृत कर दिया । किन्तु ज्यों ज्यों लोक-निन्दा बढ़ती जाती थी त्यों त्यों विठ्ठल पन्त की शान्ति, गम्भीरता और अध्ययन की मात्रा भी बढ़ती जाती थी । वे अपना सारा समय शास्त्रों के अध्ययन , आत्म चिन्तन और ईश्वर भजन में व्यतीत करते थे और लोक निन्दा की और लेश मात्र भी ध्यान नहीं देते थे । रुक्मिणी बाई भी अपने पति की सेवा करके ही बहुत प्रसन्न रहती थी । किन्तु इस बार गृहस्थाश्रम स्वीकार करने पर उनके बहुत शीघ्र सन्तानें उत्पन्न होने लगी । ६ वर्ष में ही उनके तीन पुत्र निवृत्ति, ज्ञानेश्वर एवं सोपानदेव तथा मुक्ता नाम की एक कन्या उत्पन्न हो गयी ।

अपने श्वसुर के देहान्त हो जाने से विठ्ठल पन्त की दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी उन्हें कहीं भिक्षा न मिलने पर प्राय: फल फूल तथा जलपान कर के विश्राम करना पड़ता था । सौभाग्यवश उनके तीनों पुत्र कुशाग्र बुद्धि के थे चूंकि वे स्वयं अनेक शास्त्रों के पण्डित थे अत: उनकी शिक्षा सन्तोषजनक हो रही थी । समय बीतने पर जब उनका बड़ा पुत्र निवृत्तिनाथ उपनयन योग्य हुआ तो उन्होंने उसके उपनयन के लिए ब्राह्मणों से अनुमति मांगी किन्तु फिर भी वे जाति में नहीं मिलाये गये ।

सब ओर से निराश होकरविठ्ठल पन्त अपनी पत्नी एवं पुत्रों से सहित त्र्यम्बकेश्वर चले गये वहां पर वे नित्य रात्रि में उठकर पत्नी सहित ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करते थे । इस प्रकार अनुष्ठान को करते हुए छ: मास बीतने पर एक दिन एक विलक्षण घटना हुयी । जिस समय वे अपने बच्चों सहित ब्रह्मगिरि की परिक्रमा कर रहे थे, एक भीषण सिंह कूदता हुआ उपस्थित हो गया । भयग्रस्त विठ्ठल पन्त ने जैसे ही अपने बच्चों की रक्षा के लिए प्रयास किया वैसे ही अपने परिवार से अलग हुए निवृत्ति नाथ भागकर अजनि पर्वत की एक गुफा में जा छिपे उस समय वहां पर नाथ सम्प्रदाय के आचार्य गहिनी नाथ जब ~~गहिनी~~ अपने शिष्यों सहित तपस्या कर रहे थे एवं निवृत्ति नाथ जब गहिनीनाथ के चरणों पर गिर पड़े तो उनकी उन पर कृपा दृष्टि हो गयी और उन्होंने निवृत्ति नाथ को ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया । सात दिन तक गुफा में निवास करके निवृत्तिनाथ

पुन: अपने माता-पिता से मिल गये ।

विट्ठल पन्त पूर्ववत् अपना समय बिताने लगे किन्तु अपने पुत्रों का उपनयन न कर पाने की उन्हें बड़ी चिन्ता थी । किन्तु ब्राह्मणों ने कहा कि तुमने एक बार सन्यास धर्म को स्वीकार कर पुन: गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है और इसका प्रायश्चित देह दण्ड के सिवा और कुछ नहीं है । इस पर विट्ठल पन्त इतने दु:खी हुए कि उन्होंने रात्रि में अपने बच्चों को निद्रावस्था में छोड़कर श्रीकृष्ण गीताको ज्ञानेश्वर की शय्या पर रखकर प्रयाग में पत्नी सहित जल-समाधि ले ली ।

प्रात:काल उठने पर बच्चों ने अपने माता-पिता को विविध स्थलों पर खोजने का प्रयास किया किन्तु कहीं भी वे उन्हें न प्राप्त कर सके । तत्पश्चात् वे आपे गांव की ओर गये जहां कि उनके घर को भी कुटम्बियों ने आत्मसात् कर लिया था । अब सब बालक अनाथ और असहाय होकर भिक्षा आदि से जीवन निर्वाह करने लगे । निराश्रित चारों बालक पुन: आलन्दी वापस लौट आए, जिस समय दोनों बड़े भाई भिक्षाटन के लिए जाते थे, उस समय छोटा भाई सोपानदेव बहन मुक्ताबाई के पास रहता था । ज्ञानेश्वर ने अपने तथा भाइयों के उपनयन के लिए अनेक बार ब्राह्मणों से याचना की किन्तु अभी तक उनकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया गया । इसी समय श्रीमद्भागवद्गीता के रहस्य की व्याख्या करने वाली ज्ञानेश्वरी नामक श्रेष्ठ रचना को भी उन्होंने सम्पन्न किया । इस विषय पर तीनों भाइयों में अत्यन्त विनोदात्मक वाद-विवाद हुआ जिसको महीपति और माधव नामक विद्वानों ने अपने प्रबन्धों में वर्णित किया है ।

तत्पश्चात् आलन्दी से आकर उन चारों भाई बहनों ने अपने मामा के घर में पैठण में विश्राम लिया । वहां पर देवमन्दिर में विप्रमण्डली के मिलने पर पुन: उन लोगों की शुद्धि के प्रश्न को रखा गया । सभापति ने जो निर्णय किया उसका निरन्जन कवि ने सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है —

" आप लोगों की उपनयन क्रिया के विषय में श्रुति में अनुमति नहीं दी गयी है, पिता के दोष के कारण सन्तान दण्डित की जाती है । यह शोचनीय है । तुम लोग ईश्वर पर अपनी अनन्य भक्ति रखो और केवल उस सुख

धाम पर निष्ठा करो । तुम लोग अखण्ड जितेन्द्रिय होकर रहो, विवाह एवं सन्तान के बन्धन में न पड़ो । अपना शरीर विराग और योग में ही रखो ।"

तब निवृत्ति-नाथ, ज्ञानदेव आदि ने उनके निर्णय को स्वीकार कर लिया । सभा के अन्त में किसी ब्राह्मण ने इन बच्चों से इनके नाम पूछे तो निवृत्ति-नाथ ने कहा कि -" मैं निवृत्ति हूँ इस संसार से पूर्णत: मुक्त या निवृत्त हूँ मेरा प्रवृत्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है ।" ज्ञानदेव ने कहा -"मैं समस्त वेदों का वेत्ता हूँ इसी कारण पिता ने मुझे ज्ञानदेव ऐसा था ।" सोपान देव ने कहा -" मैं सोपान हूँ, सबको भगवान् के भजन में लगाना और भक्तों को स्वर्ग प्राप्त कराना ही मेरा काम है ।" मुक्ता बाई ने कहा -" मैं मुक्ति का द्वार खोलती हूँ ।"

इन छोटे बालकों के मुख से यह बड़ी बड़ी बातें सुनकर लोग हंस पड़े । उसी समय सभा मण्डप के बाहर एक भैंसा दिखाई पड़ा किसी ने कहा नाम से क्या होता है । इस मार्ग पर जाने वाले भैंसे का भी नाम ज्ञानदेव है ।" इस पर ज्ञानदेव ने कहा -"हाँ ठीक है । इसमें और मुझमें कोई भेद नहीं है । इसमें भी मेरी आत्मा है ।" इस पर उस व्यक्ति ने भैंसे की पीठ पर प्रहार किया । उस समय ज्ञानेश्वर महाराज की सर्वात्म भाव वाली नीति का यह चमत्कार हुआ कि उनकी पीठ से रक्त प्रवाहित होने लगा ।

इसी प्रकार एक बार आपे ग्राम जाते समय जब ज्ञानेश्वर जी गोदावरी के तट पर बैठे थे उस समय किसी ने ज्ञानेश्वर जी से कहा -" यदि तुम अपना कुल पवित्र कराना चाहते हो तो इस भैंसे के मुख से वेद की ऋचायें कहलाओ ।" यह कहकर उन्होंने उस भैंसे के मुख से ऊपर मस्तक पर अपना हाथ रक्खा । तत्काल उस भैंसे के मुख से चारोंवेदों की ऋचायें अस्खलित रूप से निकलने लगी । उसको सुनकर वहां पर उपस्थित समस्त ब्राह्मण वर्ग लज्जित हो गया ।

पैठण में एक बार एक ब्राह्मण को अपने पितरों का श्राद्ध करना था । जब श्राद्ध की सब तैयारी हो चुकी, तो ज्ञानेश्वर जी की आज्ञा से पितरों के

लिए आसन बिछाये गये । ज्ञानेश्वर जी ने उन पितरों का ध्यान करके —' आगम्य-तामु' ऐसा कहा । उस समय इनकी वाणी का ऐसा प्रभाव हुआ कि सब पितृ-गण अपने अपने आसन पर आकर बैठ गये । ज्ञानेश्वर जी की इस योग शक्ति को देखकर वहां पर स्थित बाल वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी चमत्कृत हो उठे ।

इसी प्रकार एक बार जब ज्ञानेश्वर जी नेवासे नामक स्थान की ओर प्रस्थान कर रहे थे, उसी समय उन्होंने किसी स्त्री को अपने मृत पति के शव को गोद में रख कर , रोते हुए देखा । बाल योगी ज्ञानेश्वर ने स्त्री से पति का नाम पूछा । उसके द्वारा सच्चिदानन्द ऐसा बताने पर, ज्ञानेश्वर जी ने कहा कि जो सच्चिदानन्द है उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है । तत्क्षण ज्ञानेश्वर जी के द्वारा उसके शरीर को स्पर्श करते ही वह व्यक्ति जीवित हो उठा । बाद में इन्हीं सच्चिदानन्द मुनि ने मराठी भाषा में ज्ञानेश्वर जी का चरित्र लिखा ।

उनके अनेक कृत्यों के कारण विसोबा नामक ब्राह्मण उनके प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु था । एक बार जब निवृत्तिनाथ ने बहन से मिष्ठपूप (मीठे पुये) बनाने को कहा तो उनकी बहन मुक्ताबाई पात्र खरीदने के लिए कुम्हार की दुकान पर गयीं किन्तु विसोबा (द्विज) ने उसे कहीं से भी पात्र न लेने दिया । इस पर हताश एवं रोती हुयी मुक्ताबाई ने अपने भाई ज्ञानेश्वर से निवेदन किया । परि-णामत: ज्ञानेश्वर जी ने अपने शरीर में प्रचण्ड अग्नि उत्पन्न करके अपनी पीठ पर पुये बनाने की आज्ञा दी ।' जिसे देखकर द्वेषी विसोबा अत्यधिक लज्जित हुआ और अन्य लोगों की भांति वह भी उन्हें साक्षात् विष्णु का अवतार मानने लगा ।

तत्पश्चात् तीन वर्ष के अन्दर उन्होंने अपनी ज्ञानेश्वरी नामक कृति को समाप्त कर दिया ।

कुछ दिनों के उपरान्त तीर्थाटन करने की अभिलाषा वाले, महर्षि नामदेव से ज्ञानदेव जी का मिलन पण्ढरपुर जाते हुए हुआ । प्रयाग होते हुए उज्ज-यिनी नगरी में जाने पर, श्री मुद्गलाचार्य नामक तपस्वी के यहां एक महायज्ञ

सम्पन्न हो रहा था। वहाँ पर विद्वानों में कौन सबसे अधिक पूज्य है इस विषय पर वाद-विवाद हो रही था, तब एक हस्तिनी के हाथ में पुष्पमाला देकर, वहाँ पर उपस्थित विद्वज्जनों ने यह निश्चय किया कि जिसके गले में वह माला पड़ जायगी वही सर्वश्रेष्ठ माना जायगा। उस हस्तिनी ने जहाँ पर यज्ञ देखने की इच्छा वाले तपस्वी गण उपस्थित थे वहाँ जाकर ज्ञानेश्वर जी को माला पहना दी। अतः सम्पूर्ण यज्ञ विधि को करने वाले लोगों ने उन्हें सम्मानित किया।

ज्ञानेश्वर जी ने श्रीकृष्ण गीता के भाष्य रूप में अपने महाप्रबन्ध 'ज्ञानेश्वरी' की रचना की। दुर्मुख नामक वर्ष की कार्तिक कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी एवं बुधवार को पण्ढरपुर में इन्द्रायणी के तट पर ज्ञानेश्वर जी ने समाधि ग्रहण कर ली। आज से ६०० वर्ष पहले जहाँ पर ज्ञानेश्वर जी ने अपनी शरीर को त्याग किया था वहाँ आज भी आलन्दी में आषाढ़ मास में शुक्ल पक्ष की एकादशी को उत्सव मनाया जाता है। ज्ञानेश्वर जी के एक वर्ष पश्चात् उनके दो भाइयों तथा बहन मुक्ता बाई ने भी स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया।

रामाराव--मीरालहरी (कथानक)----

मालव देश में कुर्की, नामक अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी एवं प्रसिद्ध नगरीथी, जिसको क्षत्रियवंश में उत्पन्न हुयी मीरा नाम की कन्या ने अपने जन्म से पवित्र किया था। मीरा के पिता रत्नसिंह क्षत्रिय नीति के मर्मज्ञ एवं प्रजा-पालन में तत्पर एवं वैभव से परिपूर्ण थे। एक दिन मङ्गलवाद्यों से युक्त, तथा नवीन वधू एवं वर के सहित वर यात्रा के निकलने पर मीरा ने माता से अपने पति के बारे में पूछा। माता द्वारा 'गिरधर गोपाल' को मीरा के पति बताये जाने के दिन से ही मीरा प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण जी की मूर्ति के सम्मुख पूजन आदि क्रियाओं को क्रमशः करने लगी। एक दिन राजरमणी मीरा की माता ने भवन में जाकर यदुनन्दन के सामने चित्रस्थ-सी अपनी पुत्री को देखकर विचार किया कि जो पहले

क्रीडा में लगी रहती थी, एवं पशु पक्षियों की सेवा में लीन रहती थी, वही मीरा अब साहित्यादि कलाओं में विद्वानों द्वारा शिक्षित कर दी गयी। सत्काव्य की रचना द्वारा उसी ने अब प्राचीन कवियों को तिरस्कृत कर दिया एवं शीघ्र ही वह नर्तन में भी पटु हो गयी। भोगैश्वर्य से पूर्ण होने पर भी वह राज दुहिता प्रात:काल उठ कर स्नानादि से निवृत्त होकर स्वयं कलश धारण करके गृह की ओर जाती थी।

तत्पश्चात् वह श्रीकृष्ण को स्नान, अर्चन, एवं कीर्तन द्वारा तुष्ट करती थी। शैशवावस्था में ही मीरा की इस प्रकार की श्रद्धा एवं भक्ति को देखकर वहां के निवासी सभी लोग आश्चर्यचकित हो उठे। राजपरिवार के सुख में पली हुयी मीरा स्वेच्छा से भूमि पर शयन करती थी। मीरा की भक्ति को देखकर लोगों को यशोदा, रुक्मिणी एवं गोप-गोपिकाओं का प्रेम एक क्षण के लिए उत्पन्न हो जाता था। सभी ओर से अपनी कन्या के स्वभाव परिवर्तन के समाचार को सुनकर एक दिन राजा रत्न सिंह ने भी श्रीकृष्ण का प्रशान्त मन से ध्यान करती हुयी, तथा अश्रुपूर्ण नेत्रों वाली, मङ्गलगीत लास्यादि क्रिया क्रियाओं को सम्पन्न करती हुयी अपनी पुत्री को देखा। कन्या भी इस स्थिति को देखकर विचलित हुए रत्नसिंह ने दु:खी चित्त से विचार किया कि सम्भवत: उनकी कन्या वैताल भूतादि कों के द्वारा ग्रस्त कर ली गयी है। तब राजा एवं रानी दोनों ने ही इसका उपचार विवाह मात्र सोचकर के अपने विश्वसनीय ब बान्धवों को अपना निश्चय बताया कि वे मीरा के लिए उचित वर खोजें। समय बीतने पर चित्तौड़ नगर के क्षत्रिय चूडामणि खड्ग के पुत्र भोजराज के साथ वसन्त के मङ्गल दिन में मीरा का विवाह संस्कार निष्पन्न हुआ। दाम्पत्य सम्बन्ध से अभिज्ञ मीरा को जब पति गृह में जाने के लिए कहा गया तो उसने भगवान् की मूर्ति को भी ले जाने की अभिलाषा व्यक्त की। जब मीरा भगवान् कृष्ण की प्रतिमा सहित श्वसुर के भवन में पहुंची तो वहां पर अनेक उत्सव एवं माङ्गलिक क्रियायें हुयीं श्वश्रू द्वारा क्षत्रियों की देवी दुर्गा की पूजा का उपदेश पाकर मीरा ने एक मात्र श्रीकृष्ण की उपासना करने का उत्तर दिया जिसे सुनकर क्षात्रवृत्त का उल्लङ्घन करने वाली मीरा को राज्ञी ने अपशब्द भी कहे, ऊदा

नामकी मीरा की ननद ने भी उसके कृत्यों की भर्त्सना की किन्तु ईश्वरभक्ति में स्थिर मीरा को कोई भी विचलित न कर सका । समस्त माङ्गलिक विधियों के पश्चात् एकान्त में भगवान् की स्थापना करके मीरा ध्यान मग्न हो गयीं । सूर्योदय से पूर्व ही उठकर वह पुष्पचयन, पूजन एवं भजन आदि को समाप्त करके गुरुजनों की वन्दना करती थीं । त्रयोदशवर्ष की आयु हो जाने पर एक दिन मीरा का गर्भाधान संस्कार की व्यवस्था की गयी । समस्त भवन एवं मीरा को सुगन्धित सामग्री द्वारा सज्जित किया गया । बन्धुवर्ग एवं सम्बन्धियों के द्वारा सज्जित किया गया । बन्धु वर्ग एवं सम्बन्धियों के चले जाने पर जब भोजराज शयनागार में मीरा के समीप गये तो वहां पर शून्यता देखकर, देवालय के समीप गये तो वहां पर श्रीकृष्ण के सम्मुख भूतल पर शयन करती हुयी मीरा के प्रति वे आकृष्ट हो गये । पति के स्पर्श से जगी मीरा ने चरणस्पर्श करके उनसे कहा " आप मुझे क्षमा करें । बाल्यकाल से ही कृष्ण के अतिरिक्त मेरा कोई पति नहीं है ।" मीरा के इस व्यवहार की सम्पूर्ण राजपरिवार में निन्दा हुयी, और चरित्र पर भी दोष लगाने लगे । यहां तक कि उनके पति ने उनको मार डालने का निश्चय किया । एक दिन रात्रि के समय भोजराज एवं उनकी भगिनी ने मीरा के कक्ष में किसी के स्वर को सुनकर उसके दुश्चरित्र की आशङ्का की । पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह श्रीकृष्ण जी के साथ संलाप कर रही थी । समय बीतने पर मीरा को देवालय में ही निवास करने का आदेश मिला । अतः दूर-दूर से साधु लोग मीरा के नाम को सुनकर, पूजन के समय आने लगे । उन्हीं सैकड़ों लोगों में एक दिन तानसेन के साथ अकबर ने मीरा के समीप जाकर , उसकी भक्ति को देखकर मोतियों की माला प्रदान की । उस बहुमूल्य हार को पहले तो मीरा ने ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया किन्तु देवता को अर्पण की गयी है यह वचन सुनकर मीरा ने उसे भगवान् श्रीकृष्ण के कण्ठ में पहना दी । यवन शासक के आगमन को सुनकर भोजराज ने मीरा की अत्यन्त भर्त्सना की और उससे नदी में डूब जाने को कहा । आत्महत्या के लिए दृढ़ निश्चय वाली मीरा जब नदी के तट पर ईश्वर कीर्तन करती हुयी गयी, तो वहां से मन्दिर के घण्टा-नाद को सुन वह पुनः अकस्मात् किसी अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से वापस आ गयी ।

तत्पश्चात् आकाशवाणी द्वारा वृन्दावन जाने की आज्ञा पाने पर मीरा ने वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया। वहाँ पर मीरा की भक्ति से बाल, वृद्ध एवं स्त्रियाँ सभी प्रभावित हो उठीं। श्रीकृष्ण के गवेषण में मीरा ने अनेक स्थलों पर विचरण किया और वहाँ के रमणीय दृश्यों को भी देखा। वहाँ जाकर मीरा के पाणिग्रहणकर्ता भोजराज ने चित्तौड़ चलने का आग्रह किया। वहाँ उन्हें सभी कार्यों की स्वतन्त्रता दे दी गयी। चित्तौड़ आने के कुछ दिनों पश्चात् भोजराज का देहावसान हो गया। देवर के द्वारा दिये गये विष का भी पान उन्होंनेकिया, किन्तु वह तो ईश्वर की कृपा के कारण मीरा के लिए अमृत बन गया। बाद में मध्य में काँटों से पूर्ण छिन्न बाकर से रुचिकर शय्या भी मीरा के देवर ने भेजी किन्तु तब भी मीरा के लिए पुष्पों के तल्प के सदृश बन गयी। देवर के द्वारा पूजा विधि में भी विप्लव किये जाने पर, अपने कर्तव्य को पूर्ण करने में असमर्थ मीरा ने पूज्य तुलसीदास जी के समीप पत्र भेजा। जिसके उत्तर में तुलसीदास जी ने प्रह्लाद, भरत, एवं विभीषण आदि का उदाहरण देकर देश कालोचित बुद्धि के अनुसार कार्य करने का परामर्श दिया अत: मीरा ने पुन: पुण्य स्थान वृन्दावन में निवास करना उचित समझा। वहाँ आकर उसने भगवद्भक्ति में लीन रह कर ब्रह्मानन्द का अनुभव किया।

दीपाराधन के मङ्गलोत्सव के दिन वृन्दावन की उस भूमि में, देवताओं की पूजा के अवसान पर, गन्धर्वों के गान से पूर्ण तथा देवताओं द्वारा स्तुत की गयी, शुभ्र शरीर वाली मीरा विष्णु के चरणों की ओर आकाश में अन्तर्धान हो गयी।

क्षमाराव-शङ्करजीवनाख्यानम् (कथानक)—

"शङ्करजीवनाख्यानम्" नामक प्रबन्ध काव्य की रचयित्री पण्डिता सौ० क्षमाराव है। यह ग्रन्थ सप्तदश सर्गों या उल्लासों से पूर्ण है। इसमें क्षमा राव ने अपने पिता शङ्करपाण्डुरङ्ग पण्डित के जीवन की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं।

कोङ्कण प्रान्त के बाम्बोली नामक ग्राम में श्रेष्ठ गुणों से युक्त

नारायण का जन्म हुआ । लेख में निपुण होने के कारण वे पत्र लेखन या खेतीसे अपना जीवन निर्वाह करते थे । उनकी पत्नी, श्रीरघुलोद्भवा थी, जिनके पांच पुत्र और तीन कन्यायें हुयी । नारायण के भाई पाण्डुरङ्ग सन्तान रहित थे । पाण्डुरङ्ग का स्वर्गवास हो जाने पर घर के लड़के प्राय: रुग्ण रहा करते थे । नारायण को यह सन्देह हुआ कि मृत पाण्डुरङ्ग ही प्रेतरूप में रोग उत्पन्न कर रहे हैं । अत: नारायण ने शङ्कर का हाथ पकड़ कर कहा कि तुम्हारे वंश के लिए इस बालक को अर्पित कर रहा हूं, अन्य शेष मेरे बालकों को कष्ट न देना । उन्हीं को बाद में पाण्डुरङ्ग की पत्नी ने दत्तक रूप में स्वीकार कर लिया । उपनीत होने के पश्चात् विवाह के लिए पिता ने निश्चय किया । इसे सुनकर शङ्कर दो दिनों तक झाड़ी में छिपे रहे । उनके एक भाई द्वारा खोज कर लाये जाने पर विवाह संस्कार सम्पन्न किया गया ।

अठारह वर्ष की अवस्था तक मातृभाषा पढ़ कर लेखनकार्य की जीविका अपने लिए चुनी । एक दिन ग्राम कार्यालय में कुर्सी-मेज पर बैठे लेखकों को देख इनकी भी इच्छा हुयी कि मैं भी ऐसी योग्यता कर इसी प्रकार कुर्सी-मेज पर आसीन होकर लेखनकार्य करूं । दिन भर वे कार्य करते थे एवं रात्रि में अध्ययन करते थे । उस ग्राम में कोई शिक्षित वैश्य बालक उन्हें पढ़ने के लिए पुस्तकें दिया करता था । इस प्रकार कुटुम्ब का भरण करते हुए तन्मयता से विद्याध्ययन प्रारम्भ किया । धीरे धीरे इन्हें आङ्ग्लभाषा का ज्ञान बढ़ने लगा । इनका बड़ा भाई भास्कर अपने पिता के अर्थाभाव को देख उनकी सहायता करने की इच्छा से वेणु-ग्राम में दो वर्ष रहा । यहां शङ्कर लेखक की नौकरी के लिए किसी अंग्रेज के पास आये, वहां अपमानित होकर लौट आये । किसी कार्यवश भास्कर के घर आने पर, शङ्कर की स्थिति देखकर के वेणुग्राम की प्रशंसा करने के उपरान्त , भास्कर शङ्कर को वेणु ग्राम ले गये ।

भास्कर किसी बढ़ई के घर में रहकर, बालकों के अध्यापन का कार्य कर दो रुपये प्राप्त करके जीवन निर्वाह करते थे । अपने भोजन में से आधा भोजन शङ्कर को दिया करते थे । शङ्कर परिश्रमी होने के कारण स्वयं विद्याध्ययन करते थे । एक किसी विद्यालय के बाहर खड़े होकर पाठ सुना लिया करते थे ।

तेल खरीदने में असमर्थ होने के कारण काष्ठ के टुकड़ों को जलाकर उसी के प्रकाश में पढ़ते थे। अपनी शिखा को रस्सी में बांध देते थे कि रात में निद्रा न आवे।

कुछ महीने बाद भास्कर के कराची चले जाने से शङ्कर को दु:सह क्लेश हुआ। वेणु ग्राम निवासी वासुदेव नामक एक ब्राह्मण ने शङ्कर से कहा कि तुम मेरे घर में आकर निवास करो मैं तुम्हारा सम्पूर्ण व्यय वहन करूंगा। वहां रह कर तीन वर्षों तक विद्याध्ययन के पश्चात् उच्च विद्यालय में छात्रवृत्ति सहित पढ़ने लगे। कृतज्ञता प्रकट करते हुए वासुदेव से प्रार्थनाकी और उनकी आज्ञा लेकर बम्बई चले गये।

बम्बई में एलफिंस्टन नामक महाविद्यालय में प्रविष्ट होकर दो वर्ष बाद परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर वहां के प्रधानाचार्य ने सहायकाध्यापक के लिए निर्देश किया। गुरु की आज्ञा से शङ्कर ने सप्ताह में तीन बार बिना वेतन के ही अध्यापन करना स्वीकार किया। ऐसा करने पर वे लैटिन (अंग्रेजी) स्वयं पढ़ते थे, और पढ़ाते थे। छ: वर्ष में वे विज्ञायन में निपुण हो गये। उस समय भाण्डारकर वंश में रामकृष्ण नाम के ब्राह्मण संस्कृत के प्रौढ़ विद्वान् थे। बी०ए० परीक्षा उत्तीर्ण करने पर किसी महाविद्यालय में शङ्कर अध्यापक पद पर नियुक्त हो गये। एक दिन शङ्कर द्वारा रामकृष्ण के समीप जाने पर रामकृष्ण ने शङ्कर से कहा कि ब्राह्मण होकर तुमने अंग्रेजी का अध्ययन किया और संस्कृत नहीं पढ़ी। स्वमाता का त्यागकर परमाता की रक्षा करना कहां तक उचित है। उनके कथनानुसार प्रतिज्ञा करके शङ्कर ने छ: महीने में महाविद्यालय की एक परीक्षा संस्कृत में उत्तीर्ण की, एवं बाद में संस्कृत में ही एम०ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। वहीं विद्यालय में माधव रानडे से इनका परिचय हुआ तथा समानशील होने के कारण दोनों में घनिष्ठ मैत्री हो गयी। वे अपने अपने अध्यापन के लिए दिन में पृथक् रहते थे। रात परस्पर वार्तालाप करते हुए व्यतीत हो जाती थी। शङ्कर महाविद्यालय में संस्कृत विभाग के प्रधान पद के अभिलाषी थे। तीन वर्ष के बाद उनका यह मनोरथ पूर्ण हो गया। किसी कार्यवश रेल-

यात्रा में एक अंग्रेज इन्हें मिला जो इन्हें संस्कृत का विद्वान् समझता था । परस्पर वार्तालाप से उसे ज्ञात हुआ कि ये लैटिन के भी ज्ञाता हैं । इन्होंने उस अंग्रेज को लैटिन में अपने पूर्ण अधिकार का परिचय दिया । वे सदा वामन इत्यादि के काव्यों का अध्ययन किया करते थे । मोरो पन्त के काव्यों की सरलता देख उसे मुद्रित करने की इनकी इच्छा हुई । अपनी मातृभाषा में एक काव्य का परिशीलन कर वर्वे नामक विद्वान् से उसका संशोधन करा के भाऊ जी को अर्पित किया । इस प्रकार मोरो पन्त के काव्यों का सभी ने आस्वादन किया तत्पश्चात् विष्णु शास्त्री की सहायता से सन्त तुकाराम के ग्रन्थों का अन्वेषण एवं संशोधन कर उनकी गाथावली का संग्रह किया । इससे आपामर प्रसन्न हुए । ज्ञानेश्वर, तुकाराम, मुकुन्द आदि कविवरों की कृतियों द्वारा जन समुदाय आनन्दित हुआ ।

२६ वर्ष की आयु में शङ्कर ने संस्कृत ग्रन्थों का शोधन किया । महाकवि कालिदास की कृतियों से प्रभावित होकर सर्वप्रथम रघुवंश पर लैटिन भाषा में अपनी टिप्पणी लिखकर छ: सर्गों तक प्रकाशित किया । उसके बाद विक्रमोर्वशीय, कुमारसम्भव, मालविकाग्निमित्र, का विशद विवेचन किया । विलसन महोदय ने कठपुतली के नाच को देखकर अपना यह मत प्रगट किया कि मालविकाग्निमित्र कालिदास की कृति नहीं है । दशम शतक में इसे किसी अन्य ने बनाया न तो इसमें रस है, न माधुर्य है, जो कि इनकी अन्य दो रचनाओं (नाटकों) में पाया जाता है । इस कथन का शङ्कर ने विद्वतापूर्ण ढङ्ग से खण्डन किया है ।

उनके दोनों नाटकों के उद्धरणों द्वारा मालविकाग्निमित्र में समता स्थापित कर यह सिद्ध कर दिया कि यह कालिदास की ही कृति है । दशम शताब्दी की कृति नहीं है नवीं शताब्दी के अप्रसिद्ध विक्रमादित्य की सभी में कालिदास नहीं रहे, किन्तु अष्टम शतक के पूर्व प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य की राजसभा के यह रत्न थे इसे अत्यन्त तर्क सङ्गत युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया है । मेघदूत, कुमारसम्भव, दो कालिदास के काव्यमणि है । रघुवंश के समान ही यह प्रतीत होते हैं । रघुवंश पर विचार करते हुए शङ्कर ने इसे सिद्ध किया है । इसके ब

थोड़े ही दिनों बाद वेवर् मोक्षमूलर आदि लन्दन के विद्वानों ने प्राच्य भाषा के विचार पर लन्दन में एक सभा का आयोजन किया । जिसमें भारत से प्रतिनिधि रूप में शङ्कर लन्दन गये । वहां पर प्राच्य संस्कृति से प्रसन्न होकर, विद्वानों ने इनका बड़ा सत्कार किया । एक दिन वस्तु प्रदर्शन गृह में एक महिला कवि से इनका परिचय हुआ । किन्तु पूर्ण परिचय न हो सका तभी वहां से यह भारत लौट आये किन्तु दोनों का स्नेह पूर्ण था अतः महिला इन्हें भूल न सकी । तीन वर्ष के बाद शङ्कर पुनः वामन जब लन्दन गये तो उस महिला ने स्वयं अपने मित्र के पुत्र को पहचान लिया ।

अपनी विद्वता के कारण ये अध्यापक पद से हटाकर किसी बड़े राज पद पर स्थापित किये गये । रात दिन राज कार्य में तल्लीन रहने के कारण शङ्कर संस्कृत की सेवा न कर सके । फिर भी विश्राम के दिन अवश्य संस्कृत सेवा किया करते थे । कालिदास के प्रबन्धों के पश्चात् उन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन प्रारम्भ किया जिससे इनकी अत्यन्त ख्याति हुयी । ढाई वर्ष के अन्दर श्रुति के सम्पूर्ण अष्टक को सरल वाक्यों में परिवर्तित किया एवं महाराष्ट्रीभाषा में इसका प्रणयन किया । सम्पूर्ण संहिता को देश भाषा में लिखा । इस प्रकार सैकड़ों सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद करके विदेश भेजते थे । काथवटे नामक अपने सहपाठी की सहायता से 'वेदार्थयत्न' नामक पत्रिका का सम्पादन किया । उसके प्रथम पृष्ठ पर लिखा, कि पाश्चात्य वेदार्थ को ग्रहण करने को लालायित हैं पर भारतीय इससे विमुख हैं । वेदार्थ भारतीयों के लिए जितना सुगम है उतना ही विदेशियों के लिए नहीं । प्राचीन और अर्वाचीन भारतीयों में शुद्ध संस्कृति की दृष्टि से आर्यों में भेद नहीं है । लेकिन देश भेद से प्राच्य और प्रतीच्य देश में बहुत भेद है इसीलिए पाश्चात्य जनों ने वेद के विषय में अनेक ग्रन्थ लिखे, फिर भी वेद के सूक्ष्म तत्त्व को न समझ सके । तीनों वेद, ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान ज्ञान प्रदान कर हृदगत तम को दूर करते हैं । वेदों के परिशीलन से जैसे मुझे आनन्द प्राप्त है वैसे ही मेरे अन्य बन्धुगण आनन्द प्राप्त करें इसलिए अपनी मातृभाषा में अथर्ववेद का भी व्याख्यान किया ।

ईश्वरेच्छा से एक स्थान से स्थानान्तर में राजकार्यवश भ्रमण करते करते

पदोन्नति प्राप्त की । लगभग तीन वर्ष की अवस्था वाली कृष्णा नाम की कन्या को छोड़ शङ्कर की पत्नी दुर्गा ने परमपद प्राप्त किया । उस कन्या को राजदुर्ग में रहने वाले अपने भाई सीताराम की स्त्री के समीप शङ्कर ने भेज दिया । शङ्कर अपने मित्रों के परामर्श से विधवा विवाह के लिए प्रेरित किये गये किन्तु अपने कुलाचार के कारण विधवोद्वाह न कर सके । सोलापुर निवासी रामचन्द्र की कुमारी कन्या गोजरा से अपना विवाह करके, प्रसन्न चित्त होकर गोजरा का नाम ऊषा रख दिया । १३ वर्ष की उषा सहित शङ्कर अपने भाई के समीप राजदुर्ग आये । शान्त स्वभाववाली ऊषा अपने परिवार से विनम्र व्यवहार करती थी एवं सपत्नी की कन्या कृष्णा से परम स्नेह करती थी । कृष्णा यद्यपि कृष्ण-वर्णा थी किन्तु उसका विचार व्यवहार उज्ज्व था । दो वर्ष पश्चात् ऊषाके पुत्र होने पर, कृष्णा उसकी रक्षा मातृवत् करती थी । एक दिन शङ्कर के पास माधव का पत्र आया कि माधव हैजे से पीड़ित है । माधव के समीप जाना अत्यावश्यक जान कर ऊषा को समझाकर , शङ्कर माधव के पास पुण्यपुर गये । रोगमुक्त माधव के यहाँ भी शङ्कर ने कुछ दिन निवास किया । अचानक समाचार मिला कि आयकर पद पर द्विगुण वेतन वृद्धि सहित शङ्कर की नियुक्ति हो गयी है । माधव की स्त्री रमा ने प्रसन्न मुख से कहा कि सौभाग्यवश द्विगुण वेतन से पदोन्नति हो गयी । शङ्कर ने कहा कि सौभाग्यशाली तो मैं हूं, जिसने आप दोनों जैसे मित्रों को पाया है । ऐसा कहकर शङ्कर बम्बई आये और अपने भाई को सूचना दी कि उषा एवं कृष्णा को मेरे पास भेज दो । वहाँ पर शङ्कर ने गृहस्थाश्रम का उपभोग करते हुए छः सर्गों से अवशिष्ट रघुवंश के व्याख्यान की पूर्ति की ।

एक समय बीजापुर में स्थित शङ्कर ने ताम्रलेख पत्र की बात सुनी । तिलगुण्डी में खेत जोतते हुए किसी किसान ने उसे पाया था । वह गांव दस कोस पर स्थित था जहाँ हाथों हाथ वह लेख था । वह कृषक उस ताम्रपत्र को लेकर दूसरे गांव गया । उसने उसे स्वर्ण तुल्य समझ कर बेचना चाहा किन्तु उस पर विश्वास न होने के कारण उसे गिरवी रख दिया । ऋण न दे सकने के कारण वह न्यास उत्तमर्णों के यहाँ रह गया । उसे प्राप्त करके शङ्कर को बहुत प्रसन्नता हुयी । यह विक्रम लेख था । चालुक्य वंशी मुख्य राजा ने वैवड नामक कारण संज्ञा

वाले सामन्त को कुछ ग्राम दिये यह वृत्तान्त उसमें लिखा था जो कि अट्ठाइस सम्वत में लिखा गया था । यह लेख इतिहास में सम्बद्ध था । शङ्कर ने बर्लिन एकाडमी नामक त्रैमासिकी पत्रिका में इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया । देश में जैस्लमीराख्य नामक संस्था में हजारों हस्तलेख सुरक्षित थे । उन सबको पाश्चात्य चुरा ले गये, इसे भली भांति जानकर रानडे त्रैमासिक पत्रिका में इस व चना के विषय में शङ्कर ने प्रकाश डाला । एवं लेख में अधिकारियों को चेतावनी दी कि भारतीय हस्तलिखित प्राचीन भारत की विभूति सुरक्षित है । पाश्चात्य इसे चुराने न पावें । मैंने सुना है कि हाग नामक व्यक्ति थोड़े से पैसे का लालच देकर ऐसे लेख चुरा कर ले गये । उनके मरने के बाद उनकी स्त्री ने म्यूनिकपुर में बेचकर इससे लाखों रुपया प्राप्त किया । शङ्कर ने उसमें कृत्यों की अत्यधिक निन्दा की ।

एक समय जब शङ्कर खान देश में थे । वर्षाकाल में अतिवृष्टि के कारण एक नदी ऐसी बढ़ी कि आस पास के गांव जलपूरित हो गये । समाचार पाते ही शङ्कर ने नावों का प्रबन्धकर वहां के जलप्लावित जनों की सहायता स्वयं की । अनेक डूबते बाल-वृद्धों को स्वयं जल में कूदकर उन्हें नाव द्वारा सुरक्षित किया । अपने राज्याधिकार से द्रव्य प्राप्त कर नष्ट भ्रष्ट कोसंबी गांव को पुन: बसाया । प्रसन्न होकर वहां की जनता ने कोसंबी की जगह उस ग्राम को शङ्करपेठ कर दिया । आज वह ग्राम जन समूह से पूरित है । इसी प्रकार एक समय जब ये बीजापुर में थे वहां अनावृष्टि के कारण जनसमूह क्षुधा से पीड़ित था । शङ्कर ने स्वयं धनिकों से द्रव्य मांग कर पीड़ितों की अन्न-वस्त्र द्वारा सहायता की । उनकी सहायता द्वारा सुरक्षित जनों ने उन्हें कोटि आशीर्वाद दिया । एक समय वैस्त्राप नाम के अंग्रेज इनकी ख्याति सुनकर इनसे मिलने को आये । इन्हीं सज्जन ने १८ वर्ष पूर्व शङ्कर को अपने दफ्तर से डांटकर निकाला था । वही आज हाथ जोड़ कर शङ्कर से क्षमा याचना करने लगे । शङ्कर ने उनसे कहा कि आपने मेरा अनादर कर मेरा उपकार किया । आपके अनादर के कारण ही अंग्रेजी का अध्ययन कर आज मैं इस पद पर हूं और शङ्कर ने उनसे मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया ।

तत्पश्चात् भण्डारकर आदि तैलङ्ग विद्वान् प्राचीन लेख-शोधन में उद्यत हुए । शङ्कर की प्रेरणा से इन लोगों ने खोज खोज कर लेख शोधन किया ।

कुछ वर्षों तक परिश्रम करके शङ्कर अनेक भाषाओं के ज्ञाता हो गये । चौदह भाषाओं के मर्मज्ञ ये बम्बई में प्राच्य भाषा परिवर्तक के रूप में नियुक्त हो गये । यह निर्भीक थे अतः देश कल्याण के लिए हूँण अफसरों को भी डाँट देते थे एवं न्यायोचित कार्य करते थे । इनका भाई घनश्याम विश्वविद्यालय में पढ़ता था, जिसे यह समयाभाव के कारण स्नान के समय पढ़ाया करते थे । पुत्रोत्पत्ति के पूर्व तक ऊषा को भी विद्यालय भेजते थे । कृष्णा को विवाह योग्य समझ कर एक कुलीन विज्ञ छात्र के साथ पाणिग्रहण कर दिया । थोड़े दिनों के बाद ही वहाँ रानडे, भाण्डारकर, शङ्कर इत्यादि ने आर्य धर्म प्रचार के लिए प्रार्थना समाज की स्थापना की । इसके पहले राजा राममोहन राय ने बङ्गाल में ब्रह्मसमाज की स्थापना की थी । जिनका लक्ष्य मूर्तिपूजा का खण्डन और सबसे भ्रातृभाव स्थापित करना था । श्वेतवस्त्र धारण कर प्रति सप्ताह वहाँ एक दिन सब उपस्थित होते थे । प्राचीन संस्कृति से सम्पन्न कुछ लोगों ने इसका विरोध किया किन्तु शङ्कर ने उन लोगों की युक्तियों का अपनी वाक्पटुता से उत्तर दिया कि प्राचीन नियम के अनुसार एकेश्वर पूजा सम्मिलित स्त्री पुरुष करते हैं, मैं प्राचीन नियम के विरुद्ध नहीं हूँ । इस प्रकार उस संस्था का संचालन किया ।

कन्या पाठशालाओं के न होने के कारण स्त्रियाँ अंग्रेजी नहीं पढ़ पाती थीं । उस समय बम्बई में केवल एक ही कन्या विद्यालय था । शङ्कर ने वेडवर नामक अंग्रेज अधिकारी से कन्या विद्यालय के लिए प्रार्थना की । भारतप्रिय उसने दश हजार की धनराशि देना स्वीकार की । तीन हजार रूपये स्वयं शङ्कर ने दिये । डेढ़ लाख चन्दे से मिला । हुडुंबाग में विद्याभवन निर्मित हुआ । १८८४ शताब्दीईसवी के नवम मास में इस विद्यालय का उद्घाटन हुआ । इसके संचालन के लिए एक समिति बनाई गई । बहुमत से शङ्कर इसके सञ्चालक नियुक्त हुए । बालिकाओं के प्रोत्साहन के निमित्त पारितोषिक प्रदान करने हेतु एक सभा की गयी । जिसमें सयाजी राजा सभापति पद के लिए आहूत थे । उसी समय शिक्षा विभाग के प्रधान अधिकारी अंग्रेज सज्जन वहाँ आ गये । जिनका नाम वार्नल था , जो कि भारतीयों के प्रति द्वेष से पूर्ण थे । उन्होंने कहा कि आप

लोगों ने राष्ट्रगीत को अपने सूचना पत्र में नहीं दिया है जो कि अनुचित है। यदि आप लोग राष्ट्रगीत न गायेंगे तो मैं जाऊंगा। शङ्कर ने उत्तर दिया कि जनसमूह राष्ट्रगीत न समझेगा और उसके गान के समय उठेगा भी नहीं, अतः मैंने उसे सूचना पत्र में स्थान नहीं दिया है। उसने कहा कि राष्ट्रगीत को देश भाषा में करके गाना था। शङ्कर ने कहा कि फिर उसे अंग्रेज कैसे समझेंगे। बहुत कहने पर भी दोषारोपण कर वह स्वयं गाने लगा। इससे वहां के अधिकारी क्रुद्ध हो गये। कर्नल महोदय ने शङ्कर की निन्दा पत्रिकाओं में प्रकाशित की तथा राजद्रोही घोषित कर उन्हें पदच्युत कर दिया।

इस अपवाद के प्रतिकार में अनेक लेख प्रकाशित किये गये किन्तु राज्याधिकारियों ने उस पर ध्यान न दिया। रानडे ने सन्धि करने के निमित्त शङ्कर को सलाह दी लेकिन शङ्कर ने अपने आत्माभिमान का मूल्य अधिक समझा। ऊषा ने उन्हें सान्त्वना प्रदान करके समझाया कि पदोन्नति अंग्रेज ले सकते हैं किन्तु अपनी विद्वता तो अक्षुण्ण है। आप पद का शोक न करें। इससे शङ्कर को शान्ति मिली। शङ्कर को यही चिन्ता रहती थी कि उपयुक्त धन न होने से यदि मैं न रहा तो ऊषा कैसे गृहभार संभालेगी और ऊषा से यह भी कहा कि जो अनिवार्य है उसे तो सहना ही पड़ेगा। उसी समय उन्हें एक छोटा पद राज्य की ओर से प्रदान किया गया किन्तु शङ्कर ने लघुता के कारण उसे स्वीकार नहीं किया।

ऊषा अपने पति की खिन्नता को दूर करती हुयी अपने अन्दर चिन्तित रहते रहते रुग्ण हो गयी। रानडे ने शङ्कर को शिमला चलने का परामर्श दिया अतः शङ्कर ने अपनी पत्नी को पितृगृह में प्रेषित कर शिमला प्रस्थान किया। रानडे अपने कार्यहेतु जाने से पूर्व कुछ लिखने पढ़ने का कार्य शङ्कर को दे जाते थे और घर आने पर उस कार्य के विषय में उनसे पूंछते थे। उसके बाद फ्रेन्च भाषा के अध्ययन के लिए शङ्कर को ~~प्रसन्नता~~ रानाडे ने सुझाव दिया फ्रेन्च भाषा के अध्ययन से शङ्कर को प्रसन्नता हुयी। इससे रमादेवी को भी हर्ष हुआ। इसी प्रकार परस्पर साथ रहते हुए माधव जिस कार्य से शिमला गये थे, उसके समाप्त हो जाने पर वे सब वहां से वापस लौट आये।

बम्बई आने पर शङ्कर अथर्ववेद के शोध कार्य में संलग्न हो गये । महाराष्ट्र भाषा के उद्धार के कारण सभी नगर-निवासी समूह इन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे । इनके व्याख्यान से अतृप्त जन समूह ने व्याख्यान-माला नामकी एक संस्था स्थापित की जिसमें अपना व्याख्यान देते थे । एक समय इनके मित्र माधव वहां आ गये । उन्होंने उस संस्था में व्याख्यान देते हुए शङ्कर की अत्यन्त प्रशंसा की । शङ्कर ने वेदों के विषय में जनता को समझाया और उसकी महत्ता दिखलाई जिज्ञासु जनों के आग्रह से यज्ञोपवीत का भी माहात्म्य बतलाया । एवं पाश्चात्य जन के आचरण से तुष्ट जनता को समझाया कि समस्त उदात्त गुण यहां की जनता में विद्यमान थे । कालवश वे लुप्त हो गये और अपने शास्त्रों को न देख कर भारतीय पाश्चात्य लोगों के विचारों को ही उत्तम स्वीकार करते हैं । जितने सद्गुण प्राप्त हैं वे भारतीयों के ही अन्य लोगों को मिलते हैं । उपनिषद् के उत्तिष्ठजागृत अंश की विशद व्याख्या सुनाकर भारतीयों के प्रमाद को दूर करने तथा ज्ञान, वान-। कर्मशील बनने की प्रेरणा दी ।

उसी पुर में यज्ञेश्वर नाम के किन्हीं सज्जन ने शङ्कर को अपना मित्र बनाया । उन्होंने शङ्कर के आकार के विषय में लिखा है कि वे कृशाङ्ग थे तथा न छोटे थे न बड़े थे । विद्वत्ता से पूर्ण मुख पर तेज विराजमान था । वे दृढ़ सङ्कल्प थे । न तो बहुवक्तृता थी और न ऊंचा स्वर था । फिर भी युक्ति-युक्त वचनों से सभी को अपने वश में कर दिया था । वे सामाजिक उत्थान चाहते थे । विरोधियों के विचारों का खण्डन कर समाज का परिष्कार करना चाहते थे । उनका कहना था कि सुधारकों को चाहिए कि वे जनापवाद का भय न करके अपने श्रेय को देखें । एक समय एक कन्या का विवाह वृद्ध के साथ करने के लिए विचार करने के लिए इनके पास कोई आया । इन्होंने उसे अपनी अनुमति नहीं दी और कहा कि प्राचीन परिपाटी में चलने वाला आपका नगर है उसे उत्तम सदाचार की रक्षा करनी चाहिए । मैं देखता हूं कि होली में कितना अश्लील व्यवहार चला आ रहा है । इसके साथ ही उस दिन भोजन एवं शास्त्र श्रवणादि उत्तम ढंग से

करना चाहिए । इनकी बातों को सभी ने स्वीकार किया । बुरे मार्ग पर चलने वाले बच्चों को उत्तम मार्ग की ओर प्रेरित किया । ग्राम के बाहर स्थित अन्त्यज पाठशाला के प्रधानाचार्य से कहकर शङ्कर ने सप्ताह में एक दिन वहां पर अध्यापन करना प्रारम्भ किया ।

अहमदाबाद में दो वर्ष रहने पर राज प्रतिनिधि का एक नियुक्ति पद पत्र प्राप्त हुआ । पोरबन्दर के राजा के राजच्युत होने के समय उनका पुत्र भाव सिंह बालक था । उस राज्य का भार इन्हें सौंपा गया । आज तक इस पद पर अंग्रेज रहते थे । यह प्रथम भारतीय की नियुक्ति थी । शङ्कर ने रोग ग्रस्त राष्ट्र को सम्पन्न करने के सम्पूर्ण प्रयत्न कर, कृषि के लिए जल का प्रबन्ध किया । दो कन्या विद्यालयों की स्थापना की । डाकतार का प्रबन्ध किया । विवेकानन्द इत्यादि से सत्सङ्ग था । विवेकानन्द जब इनके घर के अन्दर भोजन के लिए गये थे शङ्कर के दो लड़कों, माधव एवं वामन ने उनकी पूजा की । तारा, वामा, भद्रा (पुत्रियां) स्वामी जी को देख प्रसन्न थीं । शङ्कर ने उन्हें अन्य दर्शनीय स्थान भी दिखाये । स्वामी जी ने दोनों बालकों को कुछ तैरना भी सिखाया । ऊषा को भोजन निर्माण में निपुणता प्रदान की । एक पुल बनाने की इच्छा से शङ्कर ने एक अंग्रेज की नियुक्ति की । उसने बहुत सी सामग्री चुरा ली । शङ्कर द्वारा दण्डित किये जाने पर सभी अंग्रेज अधिकारी इनसे रुष्ट हो गये । शङ्कर ने उसे न्यायालय में उपस्थित किया किन्तु वह छूट गया । पुन: आग्रह (अपील) करने पर वह दण्डित होकर पद च्युत कर दिया गया । इसके बाद ही रानडे बम्बई में उच्च न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त हो गये । कार्यमग्न रहने एवं समयाभाव के कारण शङ्कर अपने बच्चों को स्नान के समय पढ़ाते थे । अध्यापक गणेश से बालकों के विषय में पूछने पर उत्तर मिला कि माधव पढ़ने में तीव्र है, वामन चित्र लेखन में निपुण है अत: गणेश वामन से विमुख हो गये । शङ्कर ने चिन्तित होकर वामन से कहा कि यदि तुम नहीं पढ़ोगे तो माधव के घर में नौकरी करोगे । इसी प्रकार कन्याओं को समझाया कि तारा विद्वान्-पति का लाभ करेगी, वामा मूर्ख पति पायेगी । इनके शब्दों ने कुछ दिनों बाद वामा को अध्ययन की ओर प्रेरित किया ।

राजकार्य के परिश्रम से श्रान्त शङ्कर रुग्ण हो गये। वैद्य की आज्ञा से अपने घर रहने का विचार कर पद त्याग करने के लिए प्रार्थना की। इनके पद पर एक अंग्रेज अधिकारी के आने पर उसके स्वागतार्थ स्टेशन गये। उसने गर्व के कारण उनकी ओर दृष्टिपात तक नहीं किया। किन्तु जब वह अंग्रेज राज-मुद्रा लेने इनके घर पर आया तो इन्होंने भी उनका अपमान कर, बातों से उसे लज्जित किया। किन्तु उसने भी अपना अपराध स्वीकार किया नहीं। किन्तु शङ्कर चार्ज देकर घर चले गये। थोड़े दिनों बाद पुन: पोरबन्दर आने पर जनता ने उनका स्वागत किया। दूसरे दिन बम्बई की यात्रा की। उस समय शङ्कर के तीन कन्यायें एवं चार पुत्र थे। इनके दो मित्रों, घनश्याम एवं महेश ने इन्हें बम्बई बुलाया था। इनके प्रथम मित्र घनश्याम विद्यालय के सह-पाठी थे। महेश की सेवा करने पर भी इनकी व्याधि बढ़ती गयी। एक दिन रामा को लड्डू खाते देखकर पैसे के विषय में प्रश्न किया। मिलने का समाचार सुन शङ्कर ने उपदेश दिया कि कभी किसी से याचना न करनी चाहिए। रानडे के पास रहने का विचार शङ्कर का था किन्तु मकान न मिलने से न रह सके। एक दिन रानडे स्वयं आकर शङ्कर को सपरिवार घर ले गये। सभी बड़े वैद्यों की चिकित्सा होने पर भी शङ्कर का स्वास्थ्य ठीक न हो सका। रानडे के घर कुछ अनाथ छात्र भोजनार्थ आते थे। एक दिन शङ्कर से रामा ने पूछा कि ये लोग यहां प्रति दिन भोजन करने क्यों आते हैं। शङ्कर ने विनोद के लिए कहा कि दामु के साथ तुम्हारा विवाह होगा -इसीलिए आते हैं। एक दिन उत्कट व्याधि ग्रस्त होने के कारण चिन्तायुक्त हो उमा से कहा कि मेरे बिना तुम क्या करोगी ? मैं बालकों को उत्तम दशा में देखना चाहता था और ये देश सेवक होते तो उत्तम होता। तुम अकेले किस प्रकार मेरे मनोरथ को पूर्ण करोगी। यदि कन्यायें शिक्षित हों, तो निश्चय सुयोग्य वर मिलेंगे। इनकी रक्षा का भार तुम्हीं पर है। रानडे पर कुटुम्ब की रक्षा का भार सौंप कर शङ्कर ने शङ्कर पद को प्राप्त किया।

सत्याग्रह गीता— कथानक—

साहित्य चन्द्रिका रमाराव ने अपने सत्याग्रह गीता में राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी के सत्याग्रह आन्दोलन का वर्णन किया है। सत्याग्रह गीता के अन्तर्गत अठारह अध्यायों में राष्ट्रीयता आन्दोलन एवं महात्मा गान्धी के जीवन से सम्बन्धित सभी घटनाओं का क्रमबद्ध एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

कथानक—

भारत से अनेक लोग व्यापार करने के लिए अफ्रीका जाते थे, उनके साथ वहां की रहने वाली जाति दुर्व्यवहार करती थी। गान्धी जी ने वहां परिश्रम करके उनको स्वतन्त्र बनाया। भारत के दक्षिण देश की निवासिनी किसी शूद्र स्त्री को अति मैले कपड़े पहने देखकर उसके वस्त्र की अस्वच्छता का कारण पूछा। उसने बताया कि निर्धनता के कारण उसके पास एक ही वस्त्र है, जल की भी न्यूनता है जब जल मिल जाता है तो आधा धोकर सूखने जाने पर उस ओर पहन कर दूसरी ओर धो लिया जाता है। एक ही वस्त्र है। गान्धी जी ने सूत कातने का उपदेश दिया, उनके उपदेश से अनेक चरखे भारत में चलने लगे। गान्धी जी ने भारत को स्वतन्त्र करने के लिए एक मात्र अहिंसाव्रत धारण किया। चम्पारन में आङ्गलजनों के व्यवहार से दु:खी जनता को सहायता देने के लिए गये। सभी लोगों के पास जाकर उन्हें कष्ट से मुक्त किया। इसके बाद कैरा जिले में जाकर करदान का आन्दोलन चलाकर अन्यायी राजा के सेवकों से भी विरोध करने का निश्चय किया। सम्पूर्ण जनता को समझा कर राजकर्मचारियों के विरुद्ध सत्याग्रह प्रारम्भ किया और सफल हुए। राजद्वारा अपहृत समस्त वस्तु प्रजा को लौटाई गयी जिससे सभी हर्षित हुए। गान्धी जी ने साबरमती नदी के पास सत्याग्रह आश्रम बनवाया। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असङ्ग्रह, स्वदेशी वस्तुओं में श्रद्धा, अभय,, संयम और हरिजनोद्धार ये नौ वस्तुयें भारतोद्धारक हैं ऐसा उन्होंने निश्चय किया। इसी समय पश्चिम देश में युद्ध छिड़ गया भारतीयों ने अङ्ग्रेजों के अनुकूल सेवा कार्य किया किन्तु युद्ध समाप्ति पर उन्होंने

स्वतन्त्रता देना स्वीकार नहीं किया । बहुत-सी प्रजा सत्याग्रह में मारी गयी । किचलू एवं सत्यपाल का देश निकाला हो गया । गान्धी जी दिल्ली जाते समय आधे मार्ग में रोक लिये गये । डायर नामक अंग्रेज ने सेनापतित्व स्वीकार करके आज्ञा दी कि बिना उसकी आज्ञा के कोई भी नगर के बाहर न जाय । फिर भी अमृतसर में सैकड़ों तीर्थसेवी एकत्र हो गये जलियान वाला बाग में गोली वर्षा की गयी । उस समय अंग्रेजों ने घोर अन्याय किया । गान्धी जी एवं रवीन्द्र बाबू आदि ने उससमय जो कीर्ति मुद्रायें प्राप्त की थीं, वे सभी लौटा दीं । महात्मा ने राजकर्मचारियों को धिक्कारना, विदेशी वस्तु बहिष्कार तथा कर न देना तीन व्रत धारण किये । तत्पश्चात् देश में युवराज के आगमन पर सभी द्वार बन्द रखे गये उनकी ओर किसीने दृष्टिपात तक नहीं किया । हिन्दू एवं मुसलमान लोगों ने मिलकर पारसियों को मारा जिसके कारण गान्धी जी ने उपवास किया । कुछ दिनों में मलबार में मोपला और हिन्दुओं में विरोध बढ़ गया जो कि पांच वर्षों तक चला अत: इससे गान्धी जी ने व्यग्र होकर सत्याग्रह का निषेध किया । चौरी चौरा के विप्लव से सभी को यह ज्ञात हो गया कि देशवासी भीरु नहीं है । गान्धी जी देश द्रोही ठहराये गये और बन्दीगृह में डाल दिये गये । इसी समय मोतीलाल नेहरू इत्यादि ने स्वराज्य पार्टी नामक संस्था की स्थापना की । कारागार से लौटने पर गान्धी जी को सभी सूचनायें मिलीं और वे अपने आश्रम में निवास करने लगे ।

महात्मा गान्धी ने देश की स्वतन्त्रता को हृदय में रखकर चार वर्ष बिताये एवम् अपने विचारों को लेख रूप में प्रसारित किया । साइमन की अध्यक्षता में इङ्गलैण्ड से एक संघ आया । जिसमें उदार दल के दो, उद्यमी दल के दो तथा स्थितिपाल के तीन सदस्य थे । बम्बई में इनका अनादर किया गया और इनका आगमन असफल हुआ । उसी समय कलकत्ते में एक सभा हुई जिसमें राजपक्षीय वायसराय का पत्र सुनाया गया कि भारतीयों को स्वराज्य प्राप्त होगा । अर्विन महोदय ने कहा कि वे सम्पूर्ण निर्णय चक्रगोष्ठी (गोलमेज) में प्रदान करेंगे । अन्तिम निर्णय के लिए महासभा लाहौर नगर में सन् १६३१ की प्रथम तिथि को हुयी । नेताओं ने निश्चय किया कि नियमों को तोड़ने

के लिए वे प्रजा को प्रेरित करते तथा स्वयं भी उसमें भाग लेते । गान्धी जी ने अङ्ग्रेजों से सन्धि करने के लिए एक पत्र लिखा कि भारतीयों की दरिद्रता दूर की जाय और क्रूर शासक हटाये जायं । नमक पर कर न लगाया जाय इस प्रकार ग्यारह पदों में गान्धी ने पत्र लिखा ।

इस पत्र का वाइसराय ने एक सप्ताह तक कोई उत्तर नहीं दिया अत: महात्मा जी अपने निश्चय के अनुसार नमक पर सत्याग्रह के लिए निकल पड़े । ग्राम रक्षकों ने सब नमक पहले ही नष्ट कर दिया था । नमक लेकर जब सत्याग्रही घर आये तो रक्षापुरुषों ने घुस कर उनके घर की सम्पूर्ण सामग्री अपहृत कर ली थी । धारसंन नामक गांव में जाते समय गान्धी जी मधुमास की पांचवीं तिथि को वाइसराय की आज्ञा से कराडी गांव में रात में पकड़े गये । उनको पकड़े जाने से, उनके निश्चय के अनुसार कार्य चलता रहा । बम्बई नगर में अधिकांश नर- नारियों ने नमक निर्माण करने एवम् विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के कार्य में सहयोग दिया । अनेक लोग जेल गये, मारे गये एवं राजकर्मचारियों द्वारा मर्म स्थानों पर भी आघात किये गये । घोर अत्याचार किये जाने पर भी सत्याग्रही मदिराबन्दी के निश्चय पर दृढ़ रहे । पेशावर में पुन: चौरी चौरा का स्मरण दिलाने वाला लोक क्षोभ उपस्थित हुआ । सभी नेताओं को बन्दी बनाकर अंग्रेजी सेना ने घोर अत्याचार किया । मोटर से कुचलने तथा अग्न्यास्त्रों के फेंकने से सैकड़ों निरीह एवं निर्दोष मनुष्यों की जीवन लीला समाप्त हो गयी । इस देश के कुछ सिपाही घोर अनर्थ को न देख सके । जब उन लोगों को आग्नेयास्त्र (तोप) चलाने की आज्ञा दी गयी तो उन्होंने बन्धुओं को मारना स्वीकार नहीं किया । अत: अनेक सिपाहियों को प्राणदण्ड एवं कुछ को देश से निष्कासित कर दिया गया । फिर भी ईसाई धर्म की सम्पूर्ण मान्यताओं का यहां लोप सा प्रतीत होता था । पेशावर की दशा दयनीय होने पर भी सत्याग्रही जन धैर्यपूर्वक स्थिर रहे ।

'स्वराज्यविजय' का कथानक—

पण्डिता क्षमाराव ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत अनेक कृतियों की रचना की, उनमें से 'उत्तरसत्याग्रहगीता' अथवा 'स्वराज्यविजय' भी एक है। इसमें उन्होंने महात्मा गान्धी के जीवन-चरित के साथ साथ तत्कालीन प्रमुख राजनैतिक घटनाओं का भी समावेश किया है। भारतीय स्वतन्त्रता सङ्ग्राम के अमर सैनानी, सत्य और अहिंसा के उपासक महात्मा गान्धी के नाम से सभी परिचित हैं यही कारण है कि आज के युग में उन्हें ईश्वर के सदृश सम्मान प्रदान किया जाता है। 'स्वराज्यविजय' में ५४ अध्यायों के अन्तर्गत भारतीयों द्वारा शासनसत्ता प्राप्त करने की कथा का विस्तृत वर्णन किया गया है।

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने अनाहत पृथ्वी को आत्म पौरुष से उद्धार करने के लिए, कलयुग में साक्षात् ईश्वर मनुष्य रूप में अवतार ग्रहण किया। ऐसे लीला शरीर को धारण करने वाले, समदृष्टि रखने वाले, सेवा में तत्पर रहने वाले सत्य और अहिंसा के कारण पवित्र मन वाले महात्मा वन्दनीय हैं। प्राचीन काल से ही इतिहास और सुन्दर संस्कृति तथा अध्यात्म विषय में भारतवर्ष शान्तिप्रिय देश रहा है उसी परम्परा को दृष्टि में रख-कर १६४५ ई० में पवित्र नियम वाले गान्धी जी ने जन साधारण को सत्याग्रह का उपदेश किया। दासता से मुक्ति पर्यन्त और जब तक स्वतन्त्रता रूपी फल प्राप्त न हो जाय तब तक यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि जन्मभूमि हमें प्राण से भी प्रिय है। इससे पहले भी मान्य तिलक आदि महापुरुषों ने भी स्वतन्त्रता को जन्मसिद्ध अधिकार बताया था।

इसी समय छः वर्षों से निरन्तर चलने वाले द्वितीय महायुद्ध का भी अन्त हो गया। अपने देश की मुक्ति की अभिलाषा से ही भारतीयजनों ने पाश्चात्यों को युद्ध में सहयोग दिया जिसमें अनेक भारतीयों ने रणस्थल में अपने प्राण त्याग दिये। अतः यह घोषणा की गयी कि यदि अंग्रेज भारतीयों को स्वतन्त्रता न देंगे तो शीघ्र ही सत्याग्रह प्रारम्भ होगा। महात्मा गान्धी

ने शान्ति संदेश में कहा कि न्याय से शान्ति द्वारा शान्ति प्राप्त करना, यथार्थ शान्ति प्राप्त करना है, न कि प्रतिकार द्वारा या दण्ड द्वारा प्राप्त शान्ति शान्ति है। शान्ति रूपी फल को सम्पूर्ण देश में समान रूप से विभक्त करना चाहिए इससे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं।

सन् १९४५ ई० में ही लार्ड वेवैल, जो कि उस समय भारत के वायसराय पद पर नियुक्त थे, ने लन्दन के लिए प्रस्थान किया और कुछ दिनों में भारत वापस आये। लन्दन में उन्होंने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के मुख्य सदस्यों से वार्तालाप किया। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने एक योजना प्रकाशित की, जो वैवल योजना के नाम से प्रसिद्ध हुयी। इस योजना पर विचार विमर्श करने के लिए शिमला में एक सम्मेलन प्रारम्भ किया गया जिसमें वाइसराय की ओर से २२ नेता निमन्त्रित किये गये लेकिन शिमला सम्मेलन में कोई समझौता नहीं हो सका अत: वैवल ने इसकी असफलता की घोषणा कर दी। कार्यकारिणी समिति में मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति का प्रश्न इस असफलता का मुख्य कारण था। शिमला सम्मेलन की असफलता से देश में फिर असन्तोष छा गया। शिमला सभा समाप्त होने पर वैवल मन्त्रियों से परामर्श लेने के लिए पुन: इङ्गलैण्ड गये।

महात्मा गान्धी ने बङ्गाधिप के साथ भी वार्तालाप किया तत्पश्चात् १९४५ ई० के अन्तिम मास में राष्ट्र के नेताओं की एक समिति ने यह प्रकाशित किया कि अहिंसा रूपी अस्त्र के द्वारा ही विरोधियों को पराजित किया जा सकता है। महात्मा गान्धी ने अपने मित्र दीनबन्धु के स्मारक का शिलान्यास किया। दीनबन्धु के विषय में उगी लता देश-सेवा रूपी रस से सिञ्चित होने से निरन्तर बढ़ने लगी। १९४६ ई० में महात्मा गान्धी ने जो कार्य किया, वह छात्र सन्देश से सम्बन्धित है। उन्होंने कहा कि विद्यार्थियों को चाहिए कि वे गांव के बने खद्दर को धारण करें। वे विदेशी वस्त्रों तथा अन्य विदेशी वस्तुओं को कदापि न खरीदें। युद्ध समाप्त होने पर देश के उद्धार के लिए पाठशालायें उद्योगशालाओं के रूप में परिणत हो जायं। उन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर सर्व प्रथम अस्पृश्यता व्याधि को निर्मूल करने का उपदेश

दिया । इसके अतिरिक्त उन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए अत्यधिक प्रयास किया । वे उनकी उन्नति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते थे और जन साधारण के हृदय में उनके प्रति सहानुभूति की भावना भरने के लिए संलग्न रहते थे । उनके शब्दों में समाज में एक द्विज और अस्पृश्य (भंगी) का समान अस्तित्व है । विशाल वृक्ष की शाखाओं के समान हम सब मनुष्य कुल में उत्पन्न सहोदर के रूप में हैं । अंग्रेजी साम्राज्य के अनुरोध से १९४६ ई० में विश्व-युद्ध की समाप्ति के उपलक्ष में दिल्ली में एक उत्सव मनाया गया । दिल्ली जाते समय गान्धी जी ने अपने विचारों को हरिजन पत्रिका में लिखा । जहाँ एक ओर महात्मा गान्धी हिन्दू मुस्लिम एकता तथा उच्चनीच की भावना को समाप्त करने में लगे हुए थे, वहीं देश के विभिन्न प्रदेशों कलकत्ता और बम्बई आदि में विप्लव मचा हुआ था । १९४७ ई० में लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउंटबैटन भार त में आये और उन्होंने भी यही चाहा कि भारत की एकता बनी रहे और इसके लिए उन्होंने योजना बनाई । इसी वर्ष के आठवें महीने की पन्द्रहवीं तिथि को भारतीयों ने पूर्ण स्वराज्य हस्तगत किया । हिन्दू और मुसलमानों के एकता के अभाव के कारण देश का दो भागों में विभाजन हुआ एक पाकिस्तान और दूसरा संयुक्त भारत । सिन्ध, पश्चिम पंजाब, पूर्वी बंगाल, पश्चिम उत्तर के देश पाकिस्तान हुए, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि नगरों के प्रत्येक घर में तिरङ्गा झण्डा फहराया गया । गान्धी जी की जय का स्वर पूरे भारत में फैल गया और लोगों ने "वन्देमातरम्" इत्यादि गीतों का पाठ किया । देश के विभाजन से प जाब में प्रलयकाल के सदृश क्रान्ति मच गयी । हिन्दू और सिख हजारों की संख्या में पुत्र-स्त्री तथा अन्य बान्धवों के सहित एक ही रात्रि में मार डाले गये । अनेक व्यक्तियों ने अपने आभूषणों, बालकों तथा प्राणों की आहुति दे दी । देश के विभिन्न भागों में शरणार्थीजनों की भीड़ एकत्रित हो गयी अत: गान्धी जी के कलकत्ता जाने के पहले ही दिल्ली विप्लवग्रस्त हो उठी । लूटमार, बलात्कार आदि को देखकर जनता भावी अत्याचार से प्रतिक्षण कांपती थी । इस प्रकार की भयानकता और दयनीय स्थिति को देखकर महात्मा जी ने उपवास किया किन्तु वे नियमानुसार प्रार्थना सभा में भाषण देते थे । १९४८ ई० के जनवरी की

तीस तारीख ,शुक्रवार की शाम को जब वे बिड़ला भवन के प्राङ्गण में भाषण देने के लिए जा रहे थे, तभी नाथूराम नाम के एक नवयुवक ने दो बार उनके ऊपर गोली चलाई जिससे राम राम कहते हुए गान्धी जी की हृदयगतिरुक गयी । सूर्यास्त के समय उनका शरीर नष्ट हो गया तथापि उनका यश रूपी शरीर सदा स्थित है । दिव्य तेजस्वी गान्धी जी ने जो सत्य और अहिंसा का उपदेश दिया है, वही उनकी शाश्वत स्मृति है । इनकी दिव्य आभा ने धनिकों के महलों में प्रवेश नहीं किया है, दीनों से दीन आर्तों कीकुटियों में प्रवेश किया है । उन्होंने समाज में उच्च नीच की भिन्नता का अन्त करके `वसुधैवकुटुम्बकम्` की भावना का उपदेश दिया जो भारतीयों के लिए हितकर सिद्ध हुआ । उन्होंने सैकड़ों वर्षों से दासता की शृङ्खला में बंधे हुए भारत को बिना किसी रक्तपात के सत्य और अहिंसा के अस्त्र द्वारा तोड़ने का आग्रह किया और अन्त में वे सफल हुए । अन्धकार रूपी वस्त्र से आच्छादित जनों को उन्होंने दिव्य दृष्टि प्रदान की जिसके लिए आज हम सभी उनके आभारी हैं ।

ग्राम ज्योति— कथानक—

क्षमाराव रचित ` ग्रामज्योति` राष्ट्रीयता से प्रेरित एवं भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन काल की तीन कहानियाँ `रेवा` ,`कटुविपाक` एवं `वीरमा` का सङ्ग्रह है । इस आन्दोलन में पुरुषों के साथ स्त्रियों ने भी पूर्ण सहयोग दिया । उन्होंने अपने परिवार एवं लज्जा को त्याग प्रत्येक पग पर देश की रक्षा की ।

(१)`रेवा` -

बारडोली जिले में स्वर्णपुर में सत्याग्रह करने वाली रेवा नाम की स्त्री थी । राजकर्मचारियों के उपद्रव से दु:खी होकर, प्राय: आस पास के सभी लोग अपने अपने घरों को छोड़कर अन्य गांवों में जाकर रहने लगे थे । अक-स्मात सङ्कट के कारण रेवा घर न छोड़ सकी, वह स्वयं रोगिणी होने के कारण जाने में असमर्थ हो गयी । मालगुजारी न देने का आन्दोलन चल रहा था । रेवा ने गाड़ी पर अपना सामान रख कर सामान की रक्षा हेतु गाड़ीवान्

को आदेश दिया । गाड़ी के आगे चलने पर, रेवा ने वृहस्पति के प्रकाश में अपने घर की ओर दृष्टिपात करने, देशमुक्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की । उसने दिवाल पर पढ़ा कि मुक्ति उसकी होती है जिसका दृढ़ सङ्कल्प रहता है । रेवा ने अपने सेवक को समझाया कि तीन मास के लिए पर्याप्त अन्न सुरक्षित है । भारतीयों की विजय निश्चित है । उसने अपने पुत्र के साथ दूसरे दिन बाहर जाने का निश्चय किया था । अपनी पेटी को खोल सम्पूर्ण विदेशी वस्त्रों को नौकर को दिया । एक हस्तलिखित पुस्तक को हाथ में लेकर रख लिया और नौकर से बिस्तर लगाने को कहा जिससे थका पुत्र आकर विश्राम कर सके । इतने में शोरगुल सुनाई दिया । किसी ने आकर सूचना दी कि रेवा के पुत्र को जनपदाधिपति मार रहे हैं । ग्रामधिपति भी सरकार के अनुकूल कार्य करते थे । रेवा से बार बार राजकर्मचारी कर माँगते थे किन्तु रेवा ने कर देना अस्वीकार कर दिया । उसके घर में आग लगा दी गयी अन्य दुर्गति भी की गयी किन्तु रेवा अपने निश्चय पर दृढ़ रही ।

(२) कटुविपाक--

जलाल जिले के मणिपुर नाम के गाँव में ग्रामाधिपति राजपक्षीय था । उसके पुत्र पुत्री सभी सत्याग्रह के पक्ष में थे । उस समय कर न देना तथा मद्यनिषेध आन्दोलन चल रहा था । गाँव में अनेक ताड़ी के वृक्ष थे जिन्हें सत्याग्रहियों ने काट डाला । अनेक मारे गये तथा बहुत से कारागृह में बन्दी बना दिये गये । सत्याग्रह शिविर की सेवा ग्रामीण की कन्या करती थी , यह बात ग्रामीण स्त्री को ज्ञात न थी । एक दिन कर्मचारियों ने उसे भी मार दिया । कन्या की चोट का समाचार सुनकर माता मूर्च्छित हो गयी तथा ग्रामणी को भी कष्ट हुआ ।

(३) वीरमा--

स्त्रियों के आन्दोलन में जब नारी वर्ग दण्डित होने लगा तो वीरमा ने भी अपने परिवार सहित सत्याग्रह को पुष्ट करने का प्रयास किया । राजकर न देने के कारण वीरमा के पति मारे पीटे गये, वे चोट से व्यथित हो

रहे थे। राजकर्मचारी रात में उसकी गायें चुराकर ले गये। पुत्र सत्याग्रह में मार डाला गया किन्तु वीरमा अपने सङ्कल्प पर स्थिर रही। पति घर में न रहने पर चोर घर में घुस आये, वीरमा ने उन्हें अकेले ही मार भगाया। अपने पति को कराहते देख कर भी वीरमा ने अपने छोटे से पौत्र को फाँली बना कर पीठ पर लटका लिया और वीसँन राजकर्मचारी के मार पर झण्डे की रक्षा वीरतापूर्वक की। एक सिपाही ने वीरमा के उत्साह तथा बालक को कष्ट पूर्ण स्थिति में देखकर, फाँसी की डोरी काट कर, बालक को घर में पहुंचा दिया और प्रतिज्ञा की कि वह इस क्रूरकर्म को छोड़कर देश सेवा में तत्पर हो जायगा।

कथाप चक- कथानक—

पण्डिता क्षमाराव रचित कथापञ्चक मानव समाज की विविध परि-स्थितियों एवं समस्याओं से सम्बन्धित पांच कथाओं का सङ्ग्रह है। ये कथायें पद्य रूप में निबद्ध की गयी हैं। इन सभी कथाओं में नारी भावों का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है। कथापञ्चक में सङ्गृहीत कथाओं का सार इस प्रकार है —

(१) बालिकोद्वाहसङ्कटम्—

पार्वती नामकी कन्या बाल्यावस्था में ही पतिहीन हो अपने देवर के परिवार के लोगों की सेवा में मग्न रहकर रातदिन परिश्रम से समय बिताती थी। फिर भी उसकी देवरानी का व्यवहार उसके अनुकूल नहीं था। घर का एक छोटा बालक ही उससे प्रेम करता था। एक दिन जब पार्वती कुयें से जल का घड़ा लेकर चली तो एक स्थान पर घड़ा लेकर गिर पड़ी। एक अवसरवादी युवक ने उसकी सहायता की। पार्वती ने उसकी मनोवृत्ति पर ध्यान न देकर, केवल उसकी सहायता से प्रसन्न होकर, घर के अपमानों को न सह सकने के कारण उसकी बातों में आकर युवक के साथ घर से चली दी, किन्तु धर्मपूर्वक विवाह न होने के कारण पार्वती पुनः घर वापस लौट आयी। वहं द्विगुण अपमान

देख पार्वती पुन: युवक के साथ चली गयी, किन्तु उसके मन की तृप्ति न कर सकी ।
अत: नियमपूर्वक देशसेवा करती हुयी अपना जीवन व्यतीत करने लगी ।

(२) गिरिजाया: प्रतिज्ञा—

गिरिजा नाम की वृद्धा स्त्री के पुत्र को किसी मनुष्य ने मार डाला था । गिरिजा उससे बदला लेने के लिए निश्चितमति थी । बहुत दिनों तक वह एकान्त में अपना समय बिता रही थी कि एक शरणार्थी व्यक्ति उसके समीप आया । गिरिजा ने दया से पूर्ण होकर उसे अपने घर के कूप में छिपा दिया । राज्य के सिपाहियों ने पीछा किया और गिरिजा के घर जाकर उस बन्दी के बारे में जिज्ञासा की । किन्तु गिरिजा ने उन्हें नकारात्मक उत्तर दिया । सिपाहियों से वार्तालाप करने से गिरिजा को यह ज्ञात हो गया कि वह उसके पुत्र का वधिक है किन्तु भारतीय नारी होने के कारण उसने शरणागत की रक्षा की । सिपाहियों के चले जाने पर उसे कूप से निकाला । वह बन्दी गिरिजा के चरणों पर गिर पड़ा । अत्यन्त दु:खी होकर गिरिजा ने प्राणों को त्याग दिया किन्तु कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं हुयी ।

(३) हरिसिंह—

हरिसिंह सौराष्ट्र प्रान्त के कमलापुर के समीप एक ग्राम में निवास करते थे । मानसिंह वहाँ के राजा थे । प्रजा के दु:खी रहने पर भी उन्होंने प्रजा की ओर कभी कोई ध्यान नहीं दिया अपितु सदैव क्रूरता का व्यवहार किया करते थे । हरिसिंह,रूपसिंह तथा उनके दो अन्य मित्रों ने प्रजा के दु:ख से दु:खी होकर परस्पर एक उद्यान में बैठकर मानसिंह को मार डालने की प्रतिज्ञा की । निश्चय करके जब हरिसिंह घर आये तो अपनी माता के सन्दूक में गोली खोजते हुए एक उनका चित्र उन्हें मिला, जिस पर एक ओर मानसिंह का नाम लिखा था । उसी प्रकार एक प्रणययुक्त लेख भी उनको मिला जो हरिसिंह की माता को युवावस्था में मानसिंह ने लिखा था, उसे पढ़कर हरिसिंह अपनी माता से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर कुछ चिन्तित हुए, किन्तु उन्होंने अपने निश्चय पर दृढ़ रहकर मानसिंह की हत्या कर दी और जीवन से विरक्त हो गये ।

(४) दन्तकेयूरम्—

गणु नाम के एक मत्स्यजीवी की स्त्री राधा अपने कर्त्तव्यों में

रत होकर गार्हस्थ्य सुख का उपभोग करती थी । पितृ-परम्परा से प्राप्त केयूर राधा बहुत प्रेम से धारण करती थी । होलिकोत्सव के समय प्राचीन पगड़ी (शिरोवेष्टन) को देख गणू ने राधा से कहा कि यह अति जीर्ण है । राधा ने अपने पति के साफे के लिए अपना केयूर गिरवी रखकर एक नया साफा मंगाया । यह बात गणू को ज्ञात नहीं थी । गणू मद्यपान एवं द्यूत क्रीड़ा हेतु होली के दिन मदिरा पान करने वालों के साथ वार्तालाप करने लगा । जिस घर में द्यूत हो रहा था उसके गृहस्वामी ने अपने धन की प्रशंसा में केयूर दिखाया । केयूर के देखने से गणू को राधा के ऊपर संदेह हुआ । अत: घर आने पर, उसने मदिरा के नशे में राधा को क्रूरतापूर्वक पीटा जिससे राधा मर गयी किन्तु बाद में गणू को जब कुछ लेख और साफा बालकों से प्राप्त हुआ तो उसे राधा की सत्यता का बोध हुआ किन्तु अब तो पश्चात्ताप ही उसके हाथों शेष था ।

(५) अपुयिनी —

समुद्रतट पर वासन ग्राम में सुवर्ण नामक मत्स्यजीवी रहता था । उसकी धर्मपत्नी रेवा परम शान्त स्वभाव वाली, सभी से प्रेमकरने वाली एवं धार्मिक प्रकृति की थी । उसकी सन्तानें जीवित नहीं रहती थीं । इस कारण उसकी सास सदैव अपशब्दों में उसका तिरस्कार किया करती थी किन्तु रेवा सब कुछ सहन कर लेती थी । सास ने अपने पुत्र का दूसरा विवाह करने का निश्चय किया । रेवा ने अपने पति से पूछा और दु:खी भी हुयी । पति ने बहुत प्रार्थना करने भी पुनर्विवाह को अस्वीकार कर दिया । रेवा कथा में काली की प्रसन्नता के लिए नरबलि की कथा सुन चुकी थी । उसकी पड़ोसिन दुर्गा के कई बालक - बालिकाएं थीं । रेवा सदा प्रेम से उसके लड़कों को दूध तथा अन्य खाद्य वस्तु देती थी । एक दिन उसने दूध में धतूरा मिला कर दिया जिससे उसके दो बालक मर गये । अत: रेवा दु:खी हुयी ।

कथामुक्तावली — कथानक

साहित्य चन्द्रिका रामाराव द्वारा रचित कथामुक्तावली पन्द्रह लघु कथाओं का सङ्ग्रह है । इसके अन्तर्गत अनेक सामाजिक एवम् व्यक्ति समस्याओं

से सम्बन्धित विषयों को लिया गया है । प्रत्येक कथा का संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है ।

(१) प्रेमरारौद्रिक: —

इसमें किसी कश्मीरी परिवार का चित्रण है । श्रीनगर निवासी गग्लु नामक नाविक की स्त्री हामिदो थी । नाविक द्वारा अपनी स्त्री को वन्ध्या समझ कर, त्याग देने से, हामिदा ने दीन दु:खियों के आश्रयदाता किसी कृषक के घर शरणापायी । भेड़ पालने का व्यवसाय करने वाले उस परिवार में किसान, उसकी स्त्री और बालक , तीन ही सदस्य थे । छ: महीने बाद एक कन्या को जन्म देकर , उसके बारह दिनों के पश्चात् मरते समय हामिदा ने दम्पतिसे उस बालिका को कभी घर न भेजने की प्रार्थना की । अस्मा एक दिन बालक को भेड़ चराने से अवकाश देने के लिए गयीं, वहां सायंकाल हो जाने के कारण रात्रि में अकेली ही रह गयी । रात में किसी अज्ञात व्यक्ति की पदध्वनि को सुनकर अस्मा एक झाड़ी में छिप गयी । अज्ञात व्यक्ति ने जमीन खोदकर कुछ द्रव्य लिया और वहां से चल दिया । अस्मा उसका पीछा करती हुई एक जीर्ण मन्दिर के पास एक वृक्ष के कोटर में छिपकर बैठ गयी । कुछ समय पश्चात् अस्मा ने प्रकाश करके एक मनुष्य को खम्भे से बंधा हुआ मुंह में कपड़ा भरा हुआ देखा । अस्मा उसे बन्धन से छुड़ा कर किसी प्रकार घर ले आयी जहां वृद्ध दम्पति एवम् अस्मा ने उसकी सेवा की । गुग्लु के द्वारा स्वस्थ होने पर अपना वृत्तान्त बताने से ज्ञात हुआ कि ये अस्मा के पिता है । किन्तु अस्मा की माता की प्रार्थना का स्मरण करके वृद्ध दम्पति ने उसे अस्मा का परिचय तक नहीं दिया । गुग्लु ने उन लोगों को अपने स्थान पर ले जाने की प्रार्थना की । अन्त में जाते समय गुग्लु ने कहा कि यदि हामिदा गर्भिणी होती तो सम्भवतया अस्मा के समान शील स्वभाव सर्वगुण सम्पन्नकन्या उसके भी होती । दूसरे की वस्तु पर तृष्णा नहीं करनी चाहिए ।

(२) तापसस्य पारितोषिकम्—

कोकण देश के पर्वतीय महाबलेश्वर नामक ग्राम में विवाहिता उर्मिला के पति अतिरुग्ण थे। जब उर्मिला के पति स्वस्थ थे तो किसी समय उनके साथ टहलने जाने पर एक महापुरुष ने उन्हें एक तलवार देकर कहा था कि यह तलवार अभिमन्त्रित है —इसका स्मरण करने पर उन दोनों का कल्याण होगा।

उस रात अत्यन्त दुःखी होकर उर्मिला ने उस तलवार से आत्महत्या का विचार किया किन्तु पति के स्वस्थ हो जाने की सम्भावना से वह ऐसा नहीं कर सकी। तत्क्षण ही किसी व्यक्ति के पादचाप सुनकर उर्मिला ने उससे अपनी व्यथा कही। गृहागत ने उर्मिला को कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिए प्रेरित किया। उर्मिला ने मृत्यु सन्निकटस्थ के समान पति के पाण्डुवर्ण मुख को देखा। उसने बार बार गृहागत से अपने पति के प्राणों को छोड़ने की प्रार्थना की। भयभीत उर्मिला ने आत्महत्या करने का निश्चय किया। पति की स्थिति का दर्शन कर वह मूर्च्छित हो गयी। अचानक नेत्र खोलने पर उसे प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ। पति को स्वस्थ देखकर उर्मिला प्रसन्न चित्त हो गयी तत्पश्चात् उसने कृपाणिका का चुम्बन एवम् पूजन किया। उर्मिला के लिए कुछ क्षणों पूर्व जो संसार असार और दुःखद था, वही अब सम्पूर्ण सारपूरित आनन्दालय हो गया।

(३) परित्यक्ता—

कश्मीर की शोभा का निरीक्षण करने के लिए जाने वाले, किसी व्यक्ति ने २५ योजन तक भ्रमण करके वर्षाकालीन झंझावात से दुःखी होकर मार्गदर्शक से आगे न चलने का अनुरोध किया। समीप में स्थित धर्मशाला की ओर सङ्केत करके उसने बताया कि इस गृह के स्वामी कषायवस्त्रधारियों को इसमें प्रविष्ट नहीं होने देते। उसने बताया कि पञ्जाब निवासी किसी निःसन्तान सेठ की स्त्री के प्रयास करने भी सन्तानोत्पत्ति न हो सकी किन्तु किसी महात्मा द्वारा जल दिये जाने पर, अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए एक दिन सेठानी, सेठ के बाहर चले जाने पर, अपने गहने एवम्

प्रभूत धन लेकर, जङ्गल में संन्यासी के अज्ञात निवास स्थान में चली गयी । एक दिन किसी प्रकार वह दौवारिक को समझा बुझा कर अपने घर गयी, तो वहाँ उसे आश्रय न मिला । उसने आत्महत्या करने का प्रयत्न किया किन्तु स्वयं को गर्भिणी जान कर वह ऐसा न कर सकी । किसी गृहस्थ के घर में एक बालक को जन्म देकर, वह उसे घुमाया करती थी । उस दुर्दिन में आश्रय के लिए वह उसी धर्मशाला में पहुँची ।

इधर उसके पति ने विरक्त होकर सम्पूर्ण वैभव का त्याग कर दिया था । रात्रि में वहीं लड़के का प्राण निकल गया । तत्पश्चात् मार्ग दर्शन ने गृहस्वामी के कषायवस्त्र धारियों से द्वेष करने का कारण स्पष्ट किया ।

(४) मिथ्याग्रहणम् —

बम्बई नगर के पास गांव में किसी धनी व्यक्ति की कन्या का विवाह निश्चित था, विवाह मण्डप सज जाने पर, अमीना की सहचरी सरला ने अपरिचित वर के सम्बन्ध में उससे साथ वाद-विवाद प्रारम्भ किया । किन्तु अमीना माता-पिता द्वारा दिये गये विवाह सम्बन्ध को प्रेम विवाह की अपेक्षा उचित मानती थी । बाल्यावस्था से ही सख्य भाव रखने वाली इन दोनों कन्याओं में अमीना का पाणिग्रहण किसी धनाढ्य के साथ होने पर उसके दो सन्तानें हुयी इधर सरला का विवाह के साधारण युवक से हो जाने पर वह भी बम्बई में ही अमीना की कोठी के पास किराये का घर लेकर रहने लगी, एक दिन अमीना ने रात में अपने पति हमीद को सरला के घर से निकलते देखा । निरीक्षण करने पर उसे अपने पति और सरला के मध्य आन्तरिक सम्बन्ध का ज्ञान हो गया जिससे दोनों सखियों में भेद हो गया । अचानक रुग्ण होने के कुछ दिनों उपरान्त हमीद का देहान्त होने पर जब सरला आई तो अमीना ने कटु शब्दों द्वारा उसका तिरस्कार किया किन्तु जब अमीना, हमीद ने हमीद के शव के समीप किसी अज्ञात सुन्दरी को रुदन करते हुए देखा, तो उसकी बुद्धि स्वस्थ हुयी उसने सरला को सन्तुष्ट करके पूर्ववत्-सख्यभाव स्थापित किया ।

(५) हैमसमाधिः —

किष्टिवार नामक गांव में हिमालय की युवती उसकी माता रहती थी । अम्बुज जब एक मास के थे, तभी उनके पिता हिमालय की शोभा दर्शनार्थ अमरनाथ चले गये थे । पिता की खोज में अम्बुज भी अमरनाथ की ओर चल गये । पांच वर्ष के बाद विचारकर, हिमा भी अम्बुज की खोज में चल दी । साथ में वृद्धा माता भी थी । हिमालय के पास अधिक शीत के कारण वृद्धा माता लौट आयी किन्तु हिमा आगे ही बढ़ती गयी । अमरनाथ के पास एक महात्मा ने एक समाधि जो हिम से ढकी थी, खोलकर दिखायी जिससे हिमा ने समाधिस्थ अम्बुज का वृत्तान्त जब कहा तो अम्बुज अपने पिता को जानकर वहां गये और पिता को प्राप्त किया ।

इस कथा से यह सारांश निकलता है कि वस्तुत पिता ही पुत्र के रूप में स्थित होता है । प्रथम समाधिस्थ हिम के अधस्तल में स्थित अम्बुज को निर्जीव समझकर हिमा ने अपने आप को वैधव्य समझ कर मङ्गल सूत्र दूर कर दिया किन्तु जब सम्मुख आते अम्बुज को देखा तो पुनः मङ्गलसूत्र धारण किया ।

(६) मायाजालम् —

मुग्धा, मन्दा, मोहिनी, दया, चार स्त्रियों ने अपने अपने प्रेमियों की स्थिति का ज्ञान करने के लिए एक महात्मा ज्योतिषी से पुष्प द्वारा प्रश्न किया । उत्तर में दैवज्ञ ने निम्नलिखित पद्य लिखा —

पतङ्गी रसमास्वाद्य चतुः सुमनसां पृथक् ।
मायाजाले गृहीतः सन् विमुक्तोऽपि तिरोऽभवत् ।।

इस कथानक का सार यह है कि भिन्न रूप धारण करके एक ही जीव (पुरुष) चारों स्त्रियों से मिला । चारों अपनी रुचि के अनुसार उसे अपने अपने पति के रूप में देखती हैं । वस्तुतः वह एक ही है चार नहीं । केवल वे सभी उसे अविवेक के कारण चार समझ रही हैं । आध्यात्मिक दृष्टि से

वास्तविक आत्मा एक ही है । भिन्न भिन्न संस्कारों के कारण भिन्न भिन्न दिखलायी पड़ता है । यद्यपि वह एक है किन्तु माया के कारण ही भिन्नता दृष्टिगोचर होती है ।

(७) धार्मिक आमोद —

[illegible] , रूपपुरी नगरी की यात्रा करने वाले किसी पथिक से एक वृद्ध ने बताया कि किसी समय राजा कर्ण सिंह के शासन काल में पांच वर्षों तक अनावृष्टि के कारण प्रजा के व्याकुल होने पर किसी महात्मा ने भगवद्भजन द्वारा वर्षा करके प्रजा का कल्याण किया । जिससे कर्णसिंह की कन्या भारती ने महात्मा के साथ परिणय की प्रतिज्ञा कर ली । कर्णसिंह ने कन्या भारती ~~ने-महात्मा-के-साथ-परिणय-की~~ का किसी राजकुमार के साथ विवाह करना चाहा । किसी मैनपाल की सहायता से भारती महात्मा की शरण में गयी । महात्मा मणिमय मूर्ति के रूप में थे । गुहा में प्रविष्ट होकर कर्ण सिंह ने भारती को तलवार से मारना चाहा किन्तु मणिमूर्ति से रूखे शब्द सुनकर कर्णसिंह ने अपनी कन्या को धन्य माना मार्ग प्रदर्शक द्वारा प्रणाम किये जाने पर उसका भी कल्याण हुआ ।

(८) नजमदिलैल: —

काश्मीर में कासिम एक विमोहन विद्या द्वारा मनुष्यों को विमोहित करते थे — ऐसी प्रसिद्धि थी । वे हीरे के प्रेमी थे अत: विभिन्न देशों से अनेक हीरे एकत्रित किये थे । किसी समय कासिम बम्बई में नजमदिलैल नामक हीरा रखने वाले शेख अब्दुल रहमान से मिले और हीरे को देखा । कासिम के चले जाने पर अकस्मात् शेख साहब की मृत्यु हो गयी । चिकित्सकों कोपरीक्षण करने पर मालूम हुआ कि उनकी मृत्यु विष से नहीं हुयी है । राजकर्मचारियों ने उस दिन शेख के घर यात्रा करने वाले सभी जनों को बुलवाया उसमें कासिम भी गये । अधिकारियों को कासिम के ऊपर पूर्ण सन्देह था किन्तु उसी समय शेख के बगीचे का माली केसुल और हीरा लेकर सभा में पहुंचा जिससे सभी को विश्वास हुआ कि उन्हें सर्प ने काट लिया है ।

(९) विधवोद्वाहसङ्कटम् —

इस कथानक में पार्वती नामक विधवा कन्या की दयनीय दशा का चित्र अङ्कित किया गया है। रात दिन कुँयें से जल लाना, भोजन बनाना, वस्त्र धोना आदि प्रत्येक सेवा कार्य करने पर भी उसे देवर का एक मात्र अबोध बालक ही प्रिय है। घर के दुर्व्यवहार से पीड़ित होकर पार्वती, एक आधुनिक व्यवहार कुशल, दुख में सहयोगदायी युव के साथ रात्रि में घर से बाहर भाग गयी।

पार्वती अपने अर्जित पूर्व संस्कारों के द्वारा युवक के कहने से शास्त्रीय पुनर्विवाह करने को तत्पर हो गयी। किन्तु विवाह कार्य के लिए कोई भी तैयार नहीं हुयी। युवक ने एकान्तस्थल में ले जाकर पार्वती को स्वानुकूल करना चाहा किन्तु अपने निश्चय पर दृढ़ पार्वती शास्त्रीय नियमों का उल्लङ्घन नहीं करना चाहती थी। एक मात्र देवर के नन्हें बालक के स्नेह से आकृष्ट होकर घर जाने पर उसका त्रिगुणा अपमान हुआ। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर वह पुनः अज्ञात स्थान की ओर चल पड़ी। युवक अपनी अभिलाषा पूरित समझ कर पार्वती से पुनः मिला किन्तु पार्वती अपने सङ्कल्प पर अडिग रही। उसने अनाथालय में जन सेवा करके अपना जीवन व्यतीत कर दिया किन्तु अशास्त्रीय आचरण कभी श्रेष्ठ नहीं समझा।

(१०) क्षणिक विभ्रमः —

पुण्यपुर के समीप किसी ग्राम में निवास करने वाली सुनीति नाम की १३ वर्षीया कन्या का विवाह हरि नामक किसी पढ़े लिखे व्यक्ति से हो गया। परिश्रमी एवं उदार हरि के द्वारा एक पाठशाला खोले जाने पर सब धन व्यय हो गया। यहाँ तक कि स्त्री के आभूषण भी समाप्त हो गये। एक दिन रेल यात्रा करते समय किसी मृत व्यक्ति को हिलाते समय उसकी जेब से ३०० रुपये गिरे। हरि ने अपना पता और रुपये पुनः उसकी जेब में डाल दिए और उसका पता और वस्त्र स्वयं ले लिया। रेल कर्मचारियों ने हरि को गिरफ्तार करके तीन सौ रुपये उसके घर भेज दिया और हरि को मृतक का घातक मानकर २० वर्ष के लिए बन्दीगृह में भेज दिया और समाचार पत्रों में हरि की मृत्यु और उसके घातक के केस की सूचना निकाल दी। इधर सुनीति ने,

एक बालक को जन्म दिया । किसी प्रकार सिलाई आदि करके उसका पालन पोषण किया । एक हलवाई की दुकान में नौकरी करने पर दस रुपये की चोरी के प्रमाद में बालक भी कारागृह में डाल दिया गया । जेल में हरि बालक को अत्यन्त स्नेह पूर्वक देखते थे । सुनीति भी बच्चों को देखने प्राय: जाया करती थी । बालक कोयह नहीं ज्ञात था कि वे उसके पिता हैं । कुछ दिन बाद जेल से छूटने पर स्नेह के कारण बालक हरि को अपने घर ले आया । बीस वर्ष के बाद मिलने के कारण तीनों अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

(११)वृत्तशंसिकृत्रम् —

रथ्या ग्राम में यौवनावस्था में प्राप्त वैधव्य, इन्दिरा अपने २८ वर्षीय दामाद एवं मीरा कन्या के साथ रहती थी । दामाद का स्नेह इन्दिरा में अधिक है ऐसा अनूप के मुख से सुनकर इन्दिरा अपनी पुत्री के भविष्य को सोचकर चिन्तित हो उठी । अनूप अपने विचारों पर लज्जित होकर, सरोवर के किनारे पर अपने चिह्न छोड़कर, जन समुदाय में सरोवर के अन्दर डूब जाने का भय उत्पन्न करके, समीपस्थ ग्राम में महात्मा वेश में निवास करने लगे ।

वर्षाकाल में अमावस्या के दिन मेला होने पर, बाल वैधव्यदु:खिनी मीरा नदी में डूबने लगी । उसका करुण क्रन्दन सुन कर अनूप ने उसकी रक्षा की । उसने उसे अपना नाम रामी बताया । रामी के हृदय में महात्मा के प्रति प्रेम जागृत हुआ और उसने उसे पढ़ाने का आग्रह किया । बारम्बार मिलने से दोनों अपना वृत्तान्त कहते थे । एक दिन विवाह की इच्छा भी व्यक्त की गयी किन्तु रामी ने पुनर्विवाह से पूर्व वंशजों की आज्ञा लेना उचित समझा । अनूप का नाम त्यागराज पड़ गया । अचानक एक दिन देवमन्दिर में मिल जाने के बाद इन्दिरा अनूप को वार्तालाप के माध्यम से पहचान गयी और उसे घर चलने का आग्रह किया । बाद में आने का सङ्केत करके भी अनूप लज्जावश उस घर में प्रविष्ट न हो सका । मीरा एवं इन्दिरा ने ग्राम में जाकर त्यागराज को खोजने का प्रयास किया साथ ही मीरा को उसके कमरे में अनूप के नाम से अंकित एक छाता मिलने से मीरा को निश्चय हो गया कि त्यागराज ही अनूप है । कुटी में त्यागराज के न मिलने से दु:खी माता एवं पुत्री ने लौटते समय सामने से आते

अनूप को देखा । प्रसन्नचित्त होकर इन्दिरा ने मीरा एवं अनूप का हाथ एक दूसरे को पकड़ा दिया ।

(१२) निशीथबलि: —

मुगल साम्राज्य के बाद उसी वंश में धनी शाहजादा हबीबखान की कन्या फेलुका प्राप्त यौवना थी । उसका विवाह एक धनी व्यक्ति से निश्चित हुआ । किन्तु स्वच्छ सुन्दर वायु का सेवन करने के लिए इच्छुक फेलुका, अपना पालन-पोषण करने वाली सेविका के पुत्र के साथ रात्रि में भाग गयी । मार्ग में दुर्दिन के कारण गोपाल नामक किसी कृषक के यहां रात्रि बितायी वहां की स्वच्छ वायु एवं वेष भूषा ने उसे मुग्ध कर लिया । उस्मान को विवाह के लिए इच्छा होने पर भी फेलुका हिन्दू वेश धारण करके वहीं रह गयीं । रात्रि में गृहस्वामी ने बलिदान देने के लिए परस्पर वार्तालाप किया जिससे फेलुका को भ्रम हुआ कि उन दोनों में से किसी एक या दोनों का बलिदान होने वाला है जिससे वह व्याकुल हो उठी । किन्तु प्रात:काल गृहपति से ज्ञात हुआ कि वह बकरे बकरी का बलिदान था, उन दोनों का नहीं ।

(१३) मत्स्यजीवी केवलम् —

किसी मत्स्यजीवी (मल्लाह) के घर में बालक उत्पन्न हुआ । उसके कुछ वर्षों बाद अचानक रुग्ण हो जाने से उस मत्स्यजीवी की मृत्यु हो गयी । उसकी शोध का बहाना करके बालक बाहर निकल गया और २० वर्ष के बाद पुन: नगर में आया । उसके व्याख्यान तथा व्यवहार से जनता की उसके प्रति अटूट श्रद्धा थी । अपने पुत्र के वियोग से दु:खी नेत्रहीना माता किसी प्रकार व्याख्यान स्थल तक पहुंच गयी और महात्मा से अपने पुत्र के विषय में जिज्ञासा व्यक्त की । महात्मा ने अपनी मर्यादा का ध्यान न रखके वृद्धा को बताया कि वे ही उसके पुत्र हैं । तत्पश्चात् उन्होंने अपनी माता का अपूर्व आदर किया । इसे देखकर सजातीय जनों ने कहा कि यह तो मत्स्यजीवी केवल है ।

(१४) आत्मनिर्वासनम् —

मीरा नाम की स्त्री के पति उसे एवं उसके दो बच्चों को छोड़कर

घर से चले गये थे। मीरा को यह भ्रम था कि उसके पति किसी वैश्या के प्रति आसक्त हैं, किन्तु वे एक अनाथालय में अपना समय व्यतीत कर रहे थे। आसन्न मृत्यु के समय पति के मित्रद्वारा सूचना पाकर मीरा पति के निवास स्थान पर गयी एवं कुष्ठादिकों से दूषित मृतकवत् अपने पति को देखकर मीरा को असह्य ग्लानि हुयी। वह कुछ दिनों तक और पति की सेवा करना चाहती थी। पति के मरने पर सती होने का निश्चय किया किन्तु उनके समझाने पर बालकों की रक्षा के लिए कथमपि अपने प्राणों को धारण किया।

(१५) शरद्दलम् —

सुभान नामक एक व्यक्ति अपनी स्त्री अमीना, पुत्री अस्मा तथा पुत्र अब्जु के साथ रहता था। सुभान कार्यवश बाहर जाया करता था। कुछ थोड़ा पढ़ी लिखी होने के कारण अमीना कादम्बरी, लैला मजनू आदि विभिन्न शृंगारिक कथायें पढ़ा करती थी। अपरिचित सैयद नामक धनाढ्य अमीना को देख कर मुग्ध हो गया उनके यहां आकर दुकान में वस्तुएं देखकर आज्ञा पत्र दे गया। सुभान के न रहने पर अमीना वस्तुएं दिखाती थी। इसी प्रकार कुछ दिनों में परस्पर प्रेम हो गया। सैयद के कहने से रात्रि में अमीना निर्दिष्ट स्थान पर गयी किन्तु दुर्दिन के झंझावात के कारण पेड़ गिर जाने से वह अचेत हो गयी। प्रात:काल उसे समीप की झुटिया के लोगों ने निकाला किन्तु लज्जावश वह घर न जा सकी। कुछ दिनों के बाद अपना रूप और नाम बन्नियका बदल कर उसी द्वार पर कुछ सीती पिरोती रहती थी। अमेरिका से शिक्षा प्रचार हेतु आयी हुयी एक लेडी आना ने अस्मा को पढ़ाने का प्रस्ताव रक्खा। अब्जु ने उत्तर दिया कि उसके पिता कन्या शिक्षा एवं कन्याओं के बाहर जाने के पूर्ण विरोधी हैं। आना के अत्यन्त आग्रह पर अब्जु ने उपर्युक्त कथा सुनायी जिसे सुन कर बन्नियका ऊपर ही उस कथा को पूर्णरूपेण घटित होती देखकर समुद्र में निमज्जित हो गयी।

यहाँ पर मीरा के पातिव्रत्यादि गुणसम्पत्तिरूप वस्तु व्यङ्ग्य है।

अन्यत्र भी इसी प्रकार का उदाहरण प्राप्त होता है। "चित्तौड़ नगरी के वर्णन के समय रामाराव का कथन है कि- जो चित्तौड़ नगरी मीरा के देश त्याग के कारण दुःखपूर्ण हृदयवाली तथा तेजरहिता, व सम्पत्ति के लक्षणों से शून्य हो गयी थी, वही इस समय मीरा के पुनः आगमन के कारण कान्ति सम्पन्ना सौभाग्यशालिनी एवं महान् तेज से पूर्ण प्रकाशित हो रही है[1]।" यहाँ मीरा का लक्ष्मी के सदृश होना व्यङ्ग्य है अतः वस्तुध्वनि है।

अलङ्कार द्वारा वस्तु व्यञ्जना का एक सुन्दर उदाहरण यवन साम्राज्य द्वारा मीराबाई को अमूल्य मौक्तिकहार की भेंट के समय (मीरा लहरी) मिलता है - "राजपुत्री मीराबाई ने मूल्यवान् हार को देखकर कहा कि पूज्य मेरा इससे क्या प्रयोजन ?" "आप तपोधना हैं किन्तु यह देव को भक्ति से अर्पित किया जा रहा है।" ऐसा कहे जाने पर सुन्दर उपहार को आदर सहित दोनों हाथों से लेकर श्रीकृष्ण के कण्ठ में अर्पित कर दिया - हार भी धन्य हो गया।[2] अचेतन हार भी दिव्य संपर्क को पाकर सफल जन्म वाला हो गया- अतः यहाँ अर्थापत्ति अलङ्कार द्वारा अलङ्कार ध्वनि विद्यमान है।

कवि निबद्ध-प्रौढोक्ति सिद्ध-वस्तु द्वारा अलङ्कार की व्यञ्जना का एक उदाहरण मीरा के गर्भाधान संस्कार के अवसर पर मिलता है।

---

१. या तस्या विगमाद्विविदूनहृदया विच्छायसन्दर्शना,
विध्वस्ताखिलभाग्यलक्षणगुणा दीनावतस्थे चिरात्।
सेदानीं पुनरागमात् प्रमुदिता दिव्यम् विसारिप्रभा,
सौभाग्याङ्कभृता चितोडनगरी रेजे महौजस्विनी ।। मीरालहरी उत्तरखण्ड, २८

२. हारं प्रेक्ष्य महार्घमाह नृपजा पूज्याः किमेतेन मे,
जाने देवि तपोधनासि तदयं देवाय भक्त्यार्प्यते।
इत्युक्ता परमादरात्सदुपदामादाय पाणिद्वये,
श्रीजानेरधिकण्ठमर्पितवती स्रक् चापि धन्याऽभवत् ।।
— मीरालहरी, पूर्वखण्ड ८४

उस महोत्सव की रात्रि में भूपति का क्रीडोद्यान पूर्णचन्द्र की दुग्ध सदृश श्वेत ज्योत्स्ना के प्रवाह से युक्त हो गया । जिसके कारण समागत बान्धवों ने तात्कालिक क्रीडाविनोद विहारादि को भूलकर क्षीरसागर में केलि करने से मुग्ध मन वाले देवताओं के समान अनुपम आनन्द को प्राप्त किया ।[1] यहाँ पर क्षीरसागर की भाँति ज्योत्स्ना में विहार करने के कारण उपमालङ्कार ध्वनि है ।

अलङ्काररूप व्यङ्ग्यार्थ का एक चित्र मीरा के सौन्दर्य निरूपण में भी मिलता है । मीरा को देखकर साधारण जन कौतुकवश विकल्प करते थे कि — क्या ये प्रात:कालीन सूर्य है ? किन्तु उसकी कान्ति दिन में ऐसी सुशोभित नहीं होती । क्या यह श्वेतोत्पल लता है परन्तु वह तो रात्रि वेला में ही विकसित होकर जागती है । तो फिर क्या यह स्वर्णरस से लिपि हुयी मूर्ति है ? अचेतन होने के कारण उसका भ्रम कैसे किया जा सकता है ।[2] चूंकि यह संशय का समाधान नहीं होता है — अलंकार के द्वारा यह मीरा के निरूपम सौन्दर्य की व्यंजना होती है ।

वाच्यार्थ का अत्यन्त तिरस्कृत करना तो प्राय: काव्य का सहज धर्म रहा है । बिना उसके कवि अपनी वाणी में वक्रता या चमत्कार ला ही नहीं सकता । अगोचर भावों को मनोरम स्थूल मूर्त रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय

---

१. तद्रात्रौ परिपूर्णचन्द्रविसरद्दुग्धप्रवाहोपम-
   ज्योत्स्नापूरपरिप्लुता समजनि क्रीडावनी भूपते ।
   येन प्रापुरुपेतबन्धुविबुधा विस्मृत्य तत्कालिकं,
   क्षीरोदार्णवकेलिमुग्धमनस: संमोदमन्यादृशम् ।।

— मीरालहरी, पूर्वखण्ड ५८

२. बालेन्दु: किमयं विभाति न दिवा तत्कान्तिरेतादृशी,
   किं वा कैरविणी परं निशि हि सा जागर्ति संहासिनी ।
   मूर्ति: किं कनकद्रवोपरचिता तस्या: कुतो विभ्रमा,
   इत्येनमवलोक्य कौतुकवशश्चक्रे विकल्पाञ्जन: ।।

— मीरालहरी, पूर्वखण्ड, ३

'लक्षणा' शक्ति को ही प्राप्त है। इसके द्वारा व्यञ्जित अर्थ सर्व साधारण के लिए सुगम होता है। क्षमाराव की मीरालहरी में भी अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यरूप ध्वनि का स्थल मिलता है। जब मीरा के पति को अपने शत्रु अकबर के आगमन और मीरा के साथ उसके कथोपकथन का ज्ञात होता है तो अत्यन्त क्रुद्ध होकर वह कहता है कि — " नरपशु यवनाधम देवता को उपहार देने के बहाने से क्षत्रियों की अङ्गनाओं के चरणों का स्पर्श करके हम सबको अपमानित करे — इसमें सभी क्षत्रियों की विडम्बना है (केवल मेरी ही नहीं) यह यवन हमारे देश में आकर पुन: अपने देश को चला गया — इस कारण हम जीवित रहने पर भी मरे हैं — क्षत्रियों को धिक्कार है जो कि पूजागृह में क्षत्रियों द्वारा देखे जाने पर भी (शत्रु) दण्डित नहीं किया।"[1] जीवित रहते हुए भी हम मरे हैं ऐसा विरोधाभास अलङ्कार द्वारा वध्य शत्रु को छोड़ने वाले क्षत्रियों का जीवन व्यर्थ है ऐसी वस्तु व्यङ्ग्य है।

शब्दालङ्कारों में क्षमाराव ने अनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग किया है। शब्दालङ्कारों के द्वारा शब्द चित्र बढ़ाने का प्रयास कवयित्री ने अधिक नहीं किया है किन्तु माधुर्य व्यञ्जक वर्णों के प्रयोग में कवयित्री कुशल है।

वर्णों की समता को अनुप्रास कहते हैं[2]। शब्दालङ्कारों में क्षमाराव ने अनुप्रास का प्रयोग सबसे अधिक किया है। मीरालहरी का तो प्रारम्भ ही अनुप्रास अलङ्कार से हुआ है[3]। यहाँ पर अन्तिम वर्ण में 'स' द्वारा वृत्त्यनुप्रास

---

१. सर्वक्षात्रविडम्बनेयमहहा क्षात्राङ्गनामप्यसौ,
देवोपायनकैतवान्नरपशु स्पृष्ट्वा पदे धर्षयेत्।
जीवन्तोऽपिवयं मृता हि यदयं भूय: स्वदेशं गतो,
धिक् क्षत्रान् यदरिस्सुरार्चनगृहे दृष्टोऽपि येन क्षत: ।। —मीरालहरी, पूर्व०८६

२. वर्णसाम्यमनुप्रास: ।। —काव्यप्रकाश ९।१७

३. यस्या: सौधसुवर्णगोपुरमणिधम्मिल चूडामणि:,
सामोदामलपुष्पकीर्णसुपथा:सौभाग्यमुक्तास्रज: ।।
—मीरालहरी पूर्वखण्ड, १

की छटा देखी जा सकती है। रामारस की कथामुक्तावली में तो अनुप्रास भरे पड़े हैं।[१] अनुप्रास के प्रयोग में प्राय: ब, व, श, ष, न, ण तथा य, ज में भेद नहीं करते। इसे श्रुत्यनुप्रास भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ स्थल प्रस्तुत है —

१. इति ब्रुवन् प्रतिव्यक्तिस्वीकृतं निजगाद स: ।। —तुकारामचरित ३।१८

२. शृण्वती स्वरमिमं प्रभु: स्खलदागुवाच मम नारुरत्र किम् ।। — ~~तुकाराम~~

— रामदासचरितम् ६।११

यथैव वृक्षा: फलति स्वकाले वायुर्यथा वाति फलं पतेच्च ।
यथा पतिस्तै परिपक्वबुद्धिर्विरज्यते चेन्मम कोऽत्रदोष: ।। —तुकाराम ५।१५

३. माता मे जनकश्च बान्धवजना: सर्वेऽपि दूरीकृता
नान्य: कोऽपि भुवि प्रियो गिरिधर त्वामन्तरेणास्ति मे ।
संसारं व्यवधूत-वीतविनया त्वामेव चिन्वत्यहं,
दिष्ट्या दर्शनमद्भुतं तव विभो प्राप्तास्मि बाप्पाकुला ।।

—मी०ल० पूर्वखण्ड — ७६

४. एवं चतसृषु निशासु नैशान्वेषणामुपाक्रमतामीना यावत्सा सरलाया: कपटस्य संजातप्रत्ययाभूत् — कथामुक्तावली, पृ० २८

५. व्यराजत तत्र गोवर्द्धनोदारिणी दारुणादानवविदारिणी —वही, पृ० ४८

६. अन्विष्टावांस्तत इत: सकलस्थलेषु दिष्ट्या चिरेण परिपूर्णमनोरथोऽभूत् ।।

— रामदास चरितम् १०।५७

---

१. अथाच विभावर्यां सौन्दर्यातिशयविमोहिता: पर: शतपुण्डरीकपरिलसितं दलाख्य सरोवरं हिमाच्छादितहिमांशुचुम्बिहिमाचलशिखराणि च निरीक्षमाणा ग्रीष्मे सुखावहानां वातानां स्पर्शसुखमनुभवन्त: पय: फेनजित्वरया ज्योत्सनया द्विगुणितोत्साहा प्रस्फुरच्चन्द्रकलोत्कण्ठितभ्रमद्भ्रमरझङ्कारस्वरं शृण्वन्तश्च वयं कञ्चित्समयं सुखमयापयाम् ।।

—कथामुक्तावली, पृ० ६३

८. क्षणमात्रं यावदत्र विलक्षणानि:-शब्दतया विराजते तावत्सर्वासु तासु मनोहारिणी मोहिनीनाम्नी तृतीयाङ्गना लावण्यतिरस्कृतानङ्गजाया सरोजन्मना सुललिताङ्गयष्टि: सुवर्णवर्णा व्याहरत् कथामुक्तावली, पृ० ५१

छेकानुप्रास के कुछ उदाहरण इस प्रकार है —

१. पक्वधान्यपरिपूर्णमञ्जरी कुञ्ज-मञ्जुलमदृश्यताखिलम्[1]।।

२. तत: तपस्वी भजनावसाने नृपस्य रक्षामनुसंदधान: ।
आनन्दवाष्पं व्यसृजद्विनम्र: श्रीपाण्डुरङ्गस्य पदाब्जमूले[2]।।

३. तदनु तदनुगास्तं द्रष्टुमौत्सुक्यभाज:, त्रिदशमखिलमहानिन्युरुन्निद्रनेत्रा: ।
ददृशुरथ विदूरादम्बरे लम्बमानं किमपि मलिनमुर्वीमापतन्मन्दमन्दम्[3]।।

इसी प्रकार छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास के मिश्रित उदाहरण भी मिलते हैं —

१. अनान्तरे धवलयति वसुधातलं धवलकरैर्धवलरश्मौ धवलोज्ज्वलताप्लावितमुद्यानमिदम् । चरणपथेभूपलखण्डानि देदीप्यमानान्यग्न्युपलानीव विलक्षणाभावोत्सैके मय्यजीनन् । स एव क्षणो निरुत्वायको मज्जीवनस्येति प्रतीताभवम् । शनै: सभ्यं तत्करमादाय समार्दवं परामृशम् ।[4]

२. इत्यतिगम्भीरस्वरेण निवेद्य क्षणमात्रं स्वभावधीरप्रकृतिरपि मुनिर्नितरां पर्याकुलस्तूष्णीमवातिष्ठत । तदनुनैकप्रकारजननीलालनसुखोचितहृदयोत्कण्ठो मुहुर्मुहु: प्रियशतमधुराभि: शोकापनोदनिपुणाभिर्वाग्भिस्तामाश्वास्य प्रहृष्टसम्भ्रान्तामम्बां विह्वलान्त:-करणां गरीयसा प्रेम्णा प्राङ्गणात्सुरक्षितामनैषीत् ।।[5]

---

१. श्रीतुकारामचरितम् ४।३६
२. वही ६।२५
३. तुकाराम- ६।५४
४. कथामुक्तावली, पृ० ५४
५. वही, पृ० १११

३. शृण्वन्नजस्रं गिरमप्युदारां पश्यंस्तपस्यां च गुरोः सुतीव्राम् ।
किमत्र चित्रं यदि शिष्यवर्गे श्रेष्ठः समर्थस्य युवा बभूव[१]।

४. अज्ञानाद्भवति द्वैधं द्वैधाद्भवति शत्रुता ।
शत्रुत्वाद्विप्लवो भावी ततो नाशः प्रशासितुः[२]।।

यमक—

जहाँ अर्थ रहते हुए भी भिन्न अर्थ वाले वे ही वर्ण फिर से वैसे ही सुनाई पड़ें, वहाँ यमक अलङ्कार माना जाता है[३]।

क्षमाराव ने यमक अलङ्कार का प्रयोग अपनी कृतियों में यत्र - तत्र किया है —यथा—

१. सुखावासोचिताभ्यासः स्वभ्यासोचित-संस्कृतिः ।
संस्कृतेः सदृशारम्भः शङ्करः शङ्करोऽभवत् ।।[४]

२. बोलाजिनामास्य पिता बभूव माता कनाकी कनकाङ्गयष्टिः[५]।

३. गोदावरी तत्र परिप्लवन्ती सरित्सुरम्या सुरनिम्नगेव ।[६]

४. महानगर्यां मोहमय्यां चिरात्कृतावासाभ्यां पितृभ्यां सह न्यवसम् ।
प्राक्तनरूढ्यनुसारं संवर्धिता ताभ्यां बाल्ये प्राथमिकपाठशालायां केवलं कृताध्-
ध्ययनाऽसम् ।[७]

---

१. रामदासचरितम् ६।२३

२. सत्याग्रह गीता ६।६

३. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः - यमकम् ।। का०प्र० ६।११७

४. भदायन्ति किमपि द्विजा इमे ना द्विजा इव नयन्ति तद्गृहम् ।
— तुकारामचरित ४।२६

५. शङ्करजीवनाख्यानम् ३।२३

६. तुकारामचरितम् २।२

७. रामदासचरितम् १।६

५. तमालोकमलौकिकमालोकमालोकम् करणसिंहस्तेनादृष्टपूर्वचमत्कारेण[१]।

६. समालोकि नयनजितमीनयाऽमीनया[२]।

रामाराव ने श्लेष अलङ्कार का प्रयोग अधिक नहीं किया है किन्तु फिर भी मीरालहरी और अन्य कृतियों में यत्र तत्र उपलब्ध होता है। जहाँ किसी शब्द विशेष के कारण से एक से अधिक अर्थ निकलें तथा उस शब्द के हट जाने पर उसके पर्यायवाची अन्य शब्द के रखने से वे अर्थ न निकलें, वहाँ शब्द श्लेष अलङ्कार होता है[३]। और जहाँ एक ही वाक्य में अनेक अर्थ निकलें वहाँ अर्थ श्लेष होता है।[४] इन्हीं दो को बाद के आचार्यों ने तीन भेद मान लिया — अभङ्ग, सभङ्ग तथा उभयात्मक[५]।

उपर्युक्त भेदत्रय के उदाहरण रूप में मीरा लहरी का एक पद्य दृष्टव्य है। (मीराबाई के पक्ष में) प्रथम ऋतु से सम्पन्न होने के कारण, मङ्गलोत्सव पर धन से पूर्ण राजपुत्री, राजगृह के मध्य में अत्यधिक रमणीय सुशोभित हुयी, खिले कमल के सदृश मुख वाली, शोभा सम्पन्न श्रेष्ठ नारियाँ के समूह कुमारी के समीप, प्रसन्नता से गमन कर रहे थे, सौभाग्यरूपी चिह्न से युक्त मनोहर पुष्पमालायें लटक रही थीं, और क्या मदिरा पान से पूर्ण, राजकीय स्त्री एवं पुरुषगण अन्तःपुर के उपवन के समीप भ्रमण कर रहे थे। (वसन्त पक्ष में) वसन्तोत्सव के समय पृथ्वी पुष्पों के उद्गम के कारण सम्पूर्ण दिशाओं में मनोरम प्रतीत होती है, कमलों के खिल जाने के कारण सरोवरों के समूहों के शोभा आकर्षक होती है। परिमलादि की समृद्धि के कारण, पराग से युक्त श्रेष्ठ पुष्पों को रसिक विद्वानों ने अपनी प्रेमिकाओं के प्रेङ्खा सञ्चालन में लगा

---

१. कथामुक्तावली, पृ० ६२

२. वही, पृ० १२४

३. श्लिष्यन्ति शब्दा: श्लेषोऽसौ। का०प्र० ६।११६

४. श्लेष: स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्।। का०प्र० १०।१४७

५. पुनस्त्रिधा सभङ्गोऽथाभङ्गस्तदुभयात्मक:।। सा०द० १०।१२

दिया है, अन्यत्र वनों में प्रकृष्ट मद से मत्त भ्रमर सब ओर गूंज रहे थे।"[1]

मीरालहरी में ही अन्यत्र मीरा और वर्षा के सादृश्य का श्लेष द्वारा वर्णन किया गया है —

"(मीरा पक्ष में) पृथ्वी पर वृन्दावन के परिचित निवासियों में आनन्द का सञ्चार करती हुयी, महान् संताप को नष्ट करती हुयी अर्थात् चिर-वियोग से उत्पन्न क्लेश को निर्मूल करती हुयी, पवित्र ज्ञान के प्रकाश को उत्पन्न करके अपने उपदेश द्वारा सांसारिक जन के अज्ञानान्धकार का अन्त करती हुयी दीर्घ-काल के पश्चात् देशान्तर भ्रमण करके वृन्दावन में आयीं।"

(वर्षा पक्ष में)" पृथ्वी पर, दुर्भिक्ष द्वारा उपहत प्रदेश में, सुरभि को फैलाती हुयी, ग्रीष्म से उत्पन्न अत्यन्त गाढ़ संताप को शान्त करती हुयी, पुण्य ज्योति विद्युत का उदय करके, संसार के अन्धकार का शमन करती हुयी, चिरकाल के पश्चात् कल्याणकारिणी वर्षा पुन: आ गयी है।"[2]

उपर्युक्त शब्दालङ्कारों के अतिरिक्त काव्यशास्त्र में अर्थालङ्कारों का भी निरूपण किया गया है। ये अलङ्कार, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अति-शयोक्ति, निदर्शना, सन्देह आदि हैं। ये अलङ्कार साम्यमूलक होते हैं अर्थात् इनमें उपमान और उपमेय के मध्य किसी न किसी प्रकार का साम्य विद्यमान रहता है।

उपमा—

अर्थालङ्कारों में उपमा अलङ्कार की प्रधानता है। सादृश्य का

---

१. आराद्भूरिमनोरमा वसुमती रेजे सपुष्पोद्गमा,
बलन्ति स्म विकासिपद्मवदना: श्रीपद्मिनीनां गणा:।
सौभाग्यङ्कपरागयुक् सुमनसस्तेनु:प्रियान्दोलनां,
सञ्चेरु: प्रमदावनेषु मधुपा: पूर्वर्तुदिव्योत्सवे ।। —मीरालहरी पूर्वखण्ड ५३

२. श्रीवृन्दावनमापतत्पुनरसौ दीर्घप्रवासोत्तरं,
दुर्भिक्षोपरमागतेव सुचिरात्प्रावृड्विभूति:शुभा।
आमोदं भुवि तन्वती प्रविततं सन्तापमुच्छिन्दती,
पुण्यज्योतिरुदीर्य लोकतमसां विच्छेदमावन्वती ।। —मीरालहरी उत्तरखण्ड ३३

दूसरा नाम उपमा है। उपमा में भेद के साथ सादृश्य को उपमा कहा गया है[१]। काव्य में उपमा की उपयोगिता के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा है कि उपमा वस्तुत: कविता की जननी है। उपमा पर कविवंश का अस्तित्व निर्भर है। `उपमा` कविता का सर्वस्व है और वही वह अलङ्कार है जो कि कविता का चूडामणि है[२]।

आलङ्कारिक उपमा को अलङ्कार वृक्ष का बीज मानते हैं[३]। अर्थात् उपमा में वह शक्ति है जो कि अनेकानेक अलङ्कारों को जन्म दे सकती है। अलङ्कार का तात्पर्य वैचित्र्य है और उपमा समस्त वैचित्र्य की जन्मभूमि है।

यह उपमा तभी पूर्णोपमा कहलाती है जब कि इसमें उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और उपमावाचक पद सभी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित रहते हैं। पूर्णोपमा का एक उदाहरण मीरा की कृष्ण के प्रति दृढ़ भक्ति के वर्णन में मिलता है —

" वह पार्वती के समान दृढ़ सङ्कल्प वाली (मीरा) अत्यन्त कटु और दारुण वचनों तथा अपकारपूर्ण तर्जनों द्वारा सताई जाने पर भी अपनी श्रद्धाभक्ति से विचलित नहीं हुयी। उसके पश्चात् श्वश्रू के वचनों के भी निष्फल हो जाने पर, ऊदानाम की उसके वर की भगिनी भी मीरा के चित को अन्यथा करने में समर्थ न हो सकी।"[४]

---

१. सादृश्यमुपमाभेदे —काव्यप्रकाश १०।१२५

२. अलङ्कारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसंपदाम्।
 उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ॥

३. उपमैवनेक-प्रकारवैचित्र्येणानेकालङ्कारबीजभूतेति प्रथमं निर्दिष्टा-
 — अलङ्कार सर्वस्व — रुय्यक

४. अत्यन्तं कटुदारुणा प्रलपनैर्निर्भीत्सितापि स्वका-
 च्छ्रद्धाभक्ति पथाच्चचाल नहि सा गौरीव भावस्थिरा।
 ऊदा नाम ततो वरस्य भगिनी चूडाहरा प्रायसत्
 तच्चेत: परिवर्तने न तु पुन: प्राप श्रमाणां फलम् ॥
 —मीरालहरी, पूर्वखण्ड ४५

श्लेषोत्थापित मोती पूर्णापिणा का सौन्दर्य श्लेष अलङ्कार के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है ।

क्षमाराव की उपमा की प्रमुख विशेषता यह है कि उन्होंने अपने उपमान अत्यन्त सुन्दर चुने हैं । तालपत्रों से घिरे हुए अपने पिता की उपमा उन्होंने वेदपत्रों से आकीर्ण साक्षात् ज्ञान तरु से दी है[1]।

ज्ञानेश्वरचरित की प्रायःसभी उपमाओं में संसार की नश्वरता और क्षणभङ्गुरता का ही उपदेश निहित है । " अपने पुत्रों के हित की कामना करने वाले रुक्मिणी और विट्ठल ने, चरम यात्रा को पार करके प्रयाग पहुँचे । उसके बाद उन्होंने गङ्गा और यमुना के सङ्गम में अपने अपने शरीर को तृण के समान (तुच्छ) छोड़ दिया[2]। " दोनों भ्राताओं सहित सन्तज्ञानेश्वर ने समाधिस्थ होते समय अपने नेत्र युगलों को रात्रि में बन्द होने वाले कुवलय की भाँति निमीलित कर लिया[3]।

क्षमाराव की उपमायें अत्यन्त स्वाभाविक हैं । श्रीतुकाराम के वैकुण्ठ गमन के अवसर पर आकाश दिव्य प्रभा से निर्भित होने के कारण तेजस्मय हो गया, विपुल पुण्य द्वारा प्राप्त किये गये के सदृश अखिल मनुष्यों की दृष्टि

---

१. तैलाग्र्यपत्रैरिति स्वैर्न तालकैः समावृतम् ।
   वेदपर्णैरिवाकीर्णं साक्षाज्ज्ञानतरुं यथा ॥

— शङ्करजीवनाख्यानम् ५।४१

२. अथतन्यौ हितेच्छू रुक्मिणीविट्ठलार्यौ
      विहितचरमयात्रौ प्रापतुः प्राक् प्रयागम् ।
   तदनु यमभगिन्याः गङ्गयाप्तया
      तृणमिव सलिलेषु प्रास्यतां स्वस्वदेहम् ॥

— ज्ञानेश्वरचरितम् २।७८

३. अथ स मुनिवरोऽप्यालिंगनमाकृत्य ताभ्यां,
      कुवलयमिव रात्रौ संमिमीलाक्षियुग्मम् ।
   तदनु विविशतुस्तौ भ्रातरौ तं समाधेः
      रुद्धपरि समुत्थितः साधुवृन्दैः कृताऽभूत् ॥   वही ८।२९

समीलित हो गयी । जैसे ही जन समुदाय ने नभोमण्डल की ओर स्वप्न से जगे हुए व्यक्ति के समान दृष्टिपात किया, तब तक पवित्रात्मा, तपस्वी से दिशायें शून्य हो गयी '[1]

पात्रों के वैशिष्ट्य प्रकाशन में भी कवयित्री ने उपमा का आश्रय लिया है। ' कानों को बन्द करके ध्यान मग्न स्थिति में आसीन सन्त तुकाराम की तुलना निश्चल एवं निस्पन्द हिमाचल से दी गयी है[2]। ' परिपक्व बुद्धि तुकाराम उपकार में ही रत रहते थे। वे वृक्ष, वायु और फल के सदृश परोपकार में अपने जीवन को धन्य मानते थे।'[3]

इसके अतिरिक्त उन्होंने प्राकृतिक उपमानों को भी ग्रहण किया है। ' श्रीरामदास धीरे धीरे वृद्धिलाभ करते हुए, उसी प्रकार मनोहारिणी कौमार्यदशा को प्राप्त हुए, जिस प्रकार अङ्कुर क्रमशः पल्लव और पुष्प के भाव को प्राप्त करता है।'[4] ' जैसे दो सरितायें समुद्र में मिल जाती हैं वैसे ही तुकाराम दो पत्नियों से समन्वित थे।'[5]

---

१. निस्तेजाः समजायताम्बरमणिर्दिव्यप्रभानिर्जितो,
विद्युत्पुञ्जहता इवाखिलनृणां संमीलिता दृष्टयः ।
स्वप्नोद्बुद्ध इवेक्षते जनगणो यावत्समन्तान्नभ,
स्तावत्सर्वमदर्शि शून्यमनघो ह्यन्तर्हित स्तापसः ॥

— तुकारामचरितम् ६।५३

२. ततश्च होरावधि पठ्यमाने ग्रन्थे महोत्साहवता द्विजेन ।
पिधाय कर्णौ स्थितवान्मुनीन्द्रो निष्पन्दविष्टब्ध इवाचलेन्द्रः ॥

—तुकाराम चरितम् ६।५

३. यथैव वृक्षाः फलन्ति स्वकाले वायुर्यथा वाति फलं पतेच्च ।
तथा पतिस्ते परिपक्वबुद्धिर्विरज्यते चेन्मम कोऽत्र दोषः ॥वही ५।१४

४. दिने दिने सो परिवर्धमानः पस्पर्श कौमारदशां मनोज्ञाम् ।
समेधमानो हि यथा क्रमेण नवाङ्कुरः पल्लवपुष्पवत्ताम् ॥ वही २।२

५. ततः कुमार्यावलिनामभाजा पुनर्विवाहोऽस्य कृतः पितृभ्याम् ।
एवं तुकाराममिमे प्रपत्य व्यराजतां सिन्धुमिवापगे द्वे ॥ —वही ७।७१

क्षमाराव ने यत्र-तत्र अपने उपमानों के रूप में अन्तर्कथाओं को भी निहित कर दिया है। उदाहरणार्थ श्रीरामदासचरितम् का एक पद्य दर्शनीय है जहाँ ईश्वर भक्त ध्रुव और ईश्वर की नेत्रप्रतिघातिनी अदृष्टपूर्व प्रभा को देखकर सब सम्मुख निश्चय स्थित रामदास में साम्य प्रदर्शित किया गया है[१]। अन्यत्र पुराणों में वर्णित नृसिंहावतार की कथा को भी उपमान रूप में ग्रहण किया गया है [२]।

रूपक —

जहाँ उपमान और उपमेय को एक दूसरे से नितान्त अभिन्न वर्णन किया जाय, वहाँ रूपक अलङ्कार माना जाता है[३]।

मीरालहरी का प्रारम्भ ही रूपक अलङ्कार से हुआ है —
"मालवदेश में कुर्वी नाम की प्रसिद्ध नगरी लावण्यभूमि थी। उसके प्रासाद के गोपुर का चनमय थे, उनके शिखरों पर मणि सुशोभित थीं, जो कि नगरी रूपी नारी के संयत केश राशि में विन्यस्त चूड़ामणि की भाँति प्रतीत हो रहे थे, जिसके सुगन्धित परागपूर्ण, बिखरे हुए श्वेत पुष्पों से युक्तमार्ग ही सौभाग्यसूचक मुक्ताहार थे, और जो कमल के पराग समन्वित तथा विमल जल से प्लावित सरोवर रूपी श्वेताम्बर से सुसज्जित थी।"[४]

---

१. विलोक्य नेत्रप्रतिघातिनीं प्रभामदृष्टपूर्वां पुरतः स्थितां प्रभोः।
 स्थितो बटुः स्वित्रतनुश्चनिश्चलः पुरः परेशस्य पुरा यथा ध्रुवः॥ — रा०च०३।२१

२. साध्वनुष्ठितयुद्धदितक्रमः सस्वने स विजयश्रिया रणे।
 नारसिंह इव वैरिणां पुरा म्लेच्छवीरमपि दारयन्नखैः॥ वही १३।५

३. तद्रूपकमभेदो उपमानोपमेययोः॥ काव्यप्रकाश— १०।१३६

४. यस्याः सौधसुवर्णगोपुरमणिर्धम्मिल्लचूडामणिः
 सामोदामलपुष्पकीर्णसुपथाः सौभाग्यमुक्तास्रजः।
 कासारोऽब्जपरागवारिविमलः सच्चित्रहैमांशुकं,
 सा कुर्वीति पुरा बभूव नगरी लावण्यभूर्मालवे॥ मीरालहरी पूर्वखण्ड १

यहाँ सावयव रूपक अलङ्कार है। नारी में स्त्रीत्व का वर्णन होने से, उसके उपमान रूप स्त्री पद का अभिधान न करने के कारण एकदेशविवर्ति (भेद) रूपक है।

रूपक का ही एक अन्य उदाहरण तुकारामचरितम् में भी दर्शनीय है। ईश्वर कृपा के अभिलाषी सन्त तुकाराम वन्दना करते हैं —

" हे मुकुन्द ! इस संसार में जो कुछ करने योग्य है, उसका कृपया तुम मुझे आदेश दो। हे पाण्डुरङ्ग, संसार रूपी सागर में, विष रूपी अग्नि में पतित, मेरा उद्धार कीजिए, मेरी रक्षा कीजिए।"[1]

उत्प्रेक्षा—

प्रकृत (उपमेय) के समान (उपमान) के साथ ऐक्य की संभावना को उत्प्रेक्षा कहा गया है[2]।

क्षमाराव की रचनाओं में भी उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग किया गया है। मीरालहरी का एक पद्य इस दृष्टि से सराहनीय है —

"कुछ समय बीत जाने पर (मीरा की माता) राजरमणी जब अन्तःपुर की स्त्रियों के सहित मीरा के समीप गयीं, तो उन्होंने परिवर्तित स्वभाव वाली अपनी पुत्री को उद्दीप्त मुख प्रभा से पूर्ण, श्रीकृष्ण के आगे स्थित होकर, चिरकाल तक उनके ध्यान में मग्न रहने वाली कन्या को ऐसी देखा, मानो चित्र-लिखित हो।"[3]

---

१. यदत्र कृत्यं मम जीवलोके तदादिश त्वं कृपया मुकुन्द।
विषानले मां पतितं भवाब्धौ हे पाण्डुरङ्गोद्धर पाहि पाहि ।।
— तुकारामचरितम् ४।११

२. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् — का०प्र० १०।१३७

३. कञ्चित्कालमतीत्य राजरमणी शुद्धान्तयोषिद्वृता,
सम्प्राप्ता परिवृत्तशीलचरितामुद्दीप्तवक्त्रप्रभाम्।
स्थित्वा श्रीयदुनन्दनस्य पुरतो निर्वर्णयन्तीं चिरं,
चित्रस्थामिव निश्चलां दुहितरं वित्रीयमाणैक्षत ।। मीरालहरी पृ०सं० १२

कथामुक्तावली में भी उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया गया है —

१. तदनु संभ्रमानन्दतुन्दिलामपसर्पयन्तीमनिमेषलोचनाभ्यां पिबन्निवाश्वन्यैकाकी प्रदोषे मुहूर्तं स्थितातवान्[1]।

२. अथ प्रवया: कथको मन्दीभूतस्वर: स्मृतिनिष्प्रभोदरे सुचिरादवस्थितपुरातनधूलिधूसरपौर्वापर्यसंवृत्तजातसंस्कारोद्बोधपराधीन इव कथानक निवेदानाद् व्यरमत् । ताम्रवर्णप्रदोषस्यैधमानान्धकारस्य पारं निरूपयन्निवलक्षणं तूष्णीं स्थितवान्[2]।

ससन्देह—

जहाँ ससन्देह (उपमेय के उपमान के) सादृश्य ज्ञान का संशय हो, वहाँ ससन्देह अलङ्कार होता है । भेद के कथन करने अथवा न करने के कारण इस अलङ्कार के दो भेद होते हैं[3]।

सन्देह का उदाहरण क्षमाराव ने (मीरालहरी) में मीरा की कृष्ण के प्रति अनन्यभक्ति को देखकर, सर्वसाधारण के द्वारा किये गये विकल्पों के चित्रण में किया है —

" क्या अपने पुत्र बालकृष्ण के वात्सल्य के कारण साक्षात् यशोदा स्वयं आ गयीं ? क्या विरह से उत्कण्ठित होकर रुक्मिणी अपने पति श्रीकृष्ण के सामीप्य को प्राप्त हो गयीं ? अथवा रासक्रीडा की विनोदिनी राधा अपने पति के साथ विलास करने के लिए पुन: पृथ्वी पर अवतरित हुयीं ? अथवा कोई गोपिका गोपसुत(कृष्ण) के साथ नृत्य करने के लिए स्थित हुयी है ?"[4]

---

१. कथामुक्तावली, पृ० ७२

२. वही, पृ० ६२

३. ससन्देहस्तु भेदोक्तौ तदनुक्तौ च संशय: ।। का०प्र० १०।१३८

४. वात्सल्येन किमागता निजशिशो: साक्षात्यशोदा स्वयं,
सम्प्राप्ता किमु रुक्मिणी यदुपते: सांनिध्यमुत्कण्ठिता ।
राधा रासविनोदिनी विलसितुं किं प्राप्य भूयो भुवं ,
गोपी गोपसुतस्य कापि पुरतो लास्याय किन्नु स्थिता ।।
— मी०ल० पूर्व खण्ड, २१

निदर्शना—

'जहाँ वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध के कारण उपमा की जाय, वहाँ निदर्शना अलङ्कार होता है[1]। इस अलङ्कार में एक वस्तु दूसरी के प्रतिबिम्ब के रूप में रहती है।

इसका एक सुन्दर उदाहरण रामदासचरितम् में मिलता है — "सान्ध्यादि कार्यों को छोड़कर, वन्य पक्षियों की भाँति तुम क्यों एक वृक्ष से वृक्षान्तर पर गमन करते हो ? क्या घोड़ा राजा के श्रेष्ठ अस्तबल को छोड़कर रजक (धोबी) के आँगन में सुशोभित होता है।"[2]

यहाँ पर वन्यवृत्ति को स्वीकार करने वाले रामदास और घोड़े के आचरण में सादृश्य प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार अन्यत्र[3] भी निदर्शना अलङ्कार की शोभा दृष्टव्य है।

अप्रस्तुतप्रशंसा—

जहाँ किसी अप्रासङ्गिक विषय का वर्णन प्रासङ्गिक विषय के वर्णन का कारण हो, उसे अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार कहते हैं[4]। मीरा की स्वाभाविक सुन्दरता का एक स्थल प्रस्तुत है —

" चैत्र में भी मीरा के समीप, सरोवर में स्थित कमलों के समूह एकाएक म्लान हो गये हैं, और तट पर स्थित हंस लज्जावश अपनी गति को त्याग कर चुके हैं, और क्या ? जल में स्थित विमुख मछलियाँ अपने नेत्र निमीलित करके, नीचे की ओर व्याप्त हो गयी हैं, कोकिलायें भी कर्कश ध्वनि से युक्त हो गयी हैं।"[5]

---

१. निदर्शना — अभवन् वस्तु-सम्बन्ध उपमापरिकल्पक: । का०प्र० १०।१४

२. सन्ध्यादिकार्याणि विहाय वृक्षाद्वृक्षं किमित्यप्लवसे वनौका: ।
सन्मन्दुरां भूमिपतेर्विहाय शोभेत वाजी रजकाङ्गणे किम् ।। रा०च० ३।४०

३. तुकारामचरित ८।३१, ८।२३, रामदासचरितम् १२।१०

४. अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया ।। का०प्र० १०।१५१

५. कासारे कमलावलि: कलयति म्लानत्वमाकस्मिकं,
हंसास्तस्य तटे निवृत्तगतयस्तिष्ठन्ति दूरे ह्रिया ।
मीना: सङ्कुचितेक्षणाश्च विमुखा मज्जन्ति नीचैर्जले,
जायन्ते परुषस्वरा: परभृताश्चैत्रेऽपि मीरान्तिके ।। मीरालहरी पृ०४०, ३८

यहाँ पर मीरा के मुखनेत्र और स्वरगत सौन्दर्य को अप्रस्तुत प्रशंसा द्वारा व्यक्त किया गया है।

अतिशयोक्ति—

जहाँ उपमेय का निगरण करके, उसके साथ विषयी अर्थात् उपमान की अभेद प्रतीति या अध्यवसाय हो—वहाँ अतिशयोक्ति अलङ्कार होता है[१]।

रमाराव ने अतिशयोक्ति अलङ्कार का प्रयोग अपनी कृतियों में अति अल्प किया है। मीरा की विद्या सम्पत्ति वर्णन में अतिशयोक्ति की झलक अवश्य मिलती है —

"नृपपुत्री (मीरा) शाब्दित्यादि (व्याकरणाध्यात्मादि) विशेष कलाओं में कुशल विद्वानों द्वारा शिक्षित की गयी, जिससे वह शीघ्र ही गार्गी आदि (सुलभा मैत्रेयी आदि) सती नारियों के समान सभी शास्त्रों के ज्ञान में पारङ्गत हो गयी। उसने श्रेष्ठ कृतियों के रचना करने वाले, प्रसिद्ध कवियों को भी पीछे कर दिया, और क्या गीत, सङ्गीत पटुनर्तन आदि में तो वह देवाङ्गनाओं के समान हो गयी।"[२]

दृष्टान्त—

जहाँ दो वाक्यों में एक उपमेय वाक्य तथा दूसरा उपमान वाक्य होता है तथा दोनों वाक्यों में उपमान, उपमेय, साधारण धर्म आदि का परस्पर बिम्बप्रतिबिम्ब भाव प्रतीत हो, वहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है।[३] सन्त ज्ञाने-

---

१. निगीर्याध्यवसानन्तु प्रकृतस्य परेण यत्। काव्य० १०।१५३

२. शाब्दित्यादिकलाविशेषनिपुणैर्विद्वरैः शिक्षिता,
विद्यासामतिवर्तते स्म नृपजा गार्ग्यादिसत्योषितः।
सत्काव्यग्रथने पुरातनकवीन् प्रत्यादिशद्विश्रुतान्,
गीतेऽद्भुतपटुनर्तने न नचिराद्दिव्याङ्गनाभिः समा॥ —मीरालहरी पूर्वखण्ड,१५

३. दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्॥ काव्यप्रकाश। १०।१५५

श्वर के उपनयन संस्कार के विषय में ब्राह्मणों द्वारा कही गयी उक्ति में दृष्टान्त अलङ्कार निहित है —

'श्रुति का मत असम्भव होने पर भी मान्य है, ज्ञानियों द्वारा भी उसकी निराकृति दुष्कर है। बिजली अपनी कान्ति से सूर्य को लिप्त नहीं करती और न कभी मिट्टी स्वर्णता को ही प्राप्त कर पाती है।'[१]

यहाँ श्लोक का पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है।

दीपक—

जहाँ उपमेय और उपमान दोनों की क्रिया आदि धर्म का एक ही बार कथन किया जाय अथवा जहाँ अनेक क्रियाओं का एक ही कारक से सम्बन्ध हो, वहाँ दीपक अलङ्कार माना जाता है[२]। यहाँ पहले को क्रिया दीपक तथा दूसरे को कारक दीपक कहते हैं।

कारक दीपक का एक उदाहरण ज्ञानेश्वर की उत्पत्ति के सम्बन्ध में मिलता है —

'महात्मा ज्ञानदेव वाक्य सम्पत्ति में धनपति, भावोन्नति में हिमालय के शीश, रीतिगाम्भीर्य में सागर, स्पन्द से रस गुण को बीतकर, पारिजात से सुरभि प्राप्त की, अर्थध्वनि के वितरण में मेघ थे — इस प्रकार समस्त-जनों

---

१. श्रुतेर्मतं मान्यमसंमतं हि वा निराकृतिस्तस्य हि दुश्शकाबुधैः।
रुचा तडिल्लिम्पति न त्विषां पतिं सुवर्णतामेति न मृत्तिकाक्वचित्॥
— ज्ञानेश्वरचरित ३।१७

२. सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम्॥ का०प्र० १०।१५६

जनों में उत्तमात्मा (ज्ञानदेव) थे ।"[1]

यहाँ अनेक कारकों द्वारा ज्ञानदेव के विशिष्ट गुणों का गान किया है ।

तुल्ययोगिता—

जहाँ उपमेय अथवा उपमान में से एक ही के धर्म, गुण या क्रिया, का एक बार उल्लेख किया जाय, वहाँ तुल्ययोगिता अलङ्कार होता है ।[2] इसमें केवल प्रस्तुतों (उपमेयों) अथवा केवल अप्रस्तुतों (उपमानों) का समान (एक ही) धर्म के साथ सम्बन्ध दिखाया जाता है । मीरा द्वारा पतिगृह में प्रवेश करते समय भक्तिपूर्ण नायिका के वर्णन में अनेक वाक्यों द्वारा एक क्रिया के अभिसम्बन्ध से तुल्ययोगिता का उदाहरण मिलता है —

" जिस समय वह (मीरा) श्रीसङ्ग नृप के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुयी तो वहाँ पर मङ्गलोत्सव मनाया गया । अनेक पतिव्रता नारियों ने उसको मूल्यवान् वस्त्र तथा आभूषणों से सुसज्जित किया । श्वश्रू और बन्धुजनों से घिरी हुयी वरवधू के ऊपर अक्षतारोपण आदि माङ्गलिक क्रियायें सम्पन्न की गयीं । इस विशाल संभ्रम के रहने पर भी मीरा, श्रीकृष्ण की पूजा को निष्कम्पभाव से मन में धारण किये थी ।"[3]

आक्षेप—

जहाँ प्रकरणवश प्राप्त विषय के विशेष के कारण के कथन की इच्छा से उसका निषेध (कथन न) किया जाय, वहाँ आक्षेप अलङ्कार होता है । वह आक्षेप भी वक्ष्यमाण विषय तथा उक्त विषय के भेद से दो प्रकार का होता है[4]। मीरा द्वारा पूज्य तुलसीदास को भेजे हुए पत्र के उत्तर में तुलसीदासजी

---

१. वाक्संपत्तौ धनपतिरयं ज्ञानदेवो महात्मा,
भावोन्नत्यां हिमगिरिशिरो रीतिगाम्भीर्यतोऽब्धिः ।
जित्वा स्पन्दप्रगुणमपात्त्वोरभे पारिजातं,
मैवं वार्थ्यनिविलतरणोऽभूत्समस्तोत्तमात्मा ।। — ज्ञानेश्वरचरितम् ८।५

२. नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता ।। का०प्र० १०।१५८ साङ्गगण

३. शुद्धान्तं च विवेश सा प्रकृति भूपस्य भव्योत्सव,स्तस्याः श्रीमदुपायनानि विदधे भूषा स्त्व,
श्वश्रूबन्धुयुता स्नुषा तनुजयोर्ध्वं(?)क्षतारोपणं, निष्कम्पेन कुसम्भ्रमेपि मनसा श्रीकृष्णपूजां दधुः।
[illegible]

मीरा को विष्णु के अनेक भक्तों का उदाहरण प्रस्तुत किया —

' इन सब पूर्वोक्त विष्णु भक्तों के असाधारण चरितों को प्रमाण रूप में ग्रहण करो । तुम्हारी केवल कृष्ण के साथ मित्रता रहे, अन्य दूसरे शत्रुरूप नीच बन्धुओं से क्या ? ऐसे अन्जन के लगाने से क्या लाभ ? जो नेत्रों को दृष्टिहीन बना दे । और अधिक कहने से क्या ? देश कालोचित मति के अनुरूप आचरण करो[1]। '

यहाँ 'किं भूय: कथनेन 'इस पद के द्वारा कहे हुए का ही निषेध करने के कारण आक्षेपालङ्कार है ।

विभावना —

'हेतुरूपा' क्रिया के बिना कहे ही जहाँ पर फल का प्रकट होना कहा जाता है, वहाँ पर विभावना अलङ्कार होता है[2]।

मीरा के पतिविमुख्य भाव को देखकर वृद्धा दासी के दु:ख भाव को विभावना द्वारा व्यक्त किया गया है —

'आज विकसित केतवादि तथा कुसुमप्रमुख पुष्पों का परिमल अतिशय फैल रहा है । निर्मल ज्योत्स्नारूप वस्त्र को धारण करने वाली रात्रि अपने पति चन्द्र द्वारा सुशोभित हो रही है, सर्वत्र वसन्त में रमणीय शोभा रुचिकर लग रही है — ऐसे समय उत्साहङ्गना विरागिणी वरवधू को देखकर, वृद्धा

---

१. एषामाचरितं निदर्शनतया गृहीष्वलौकोत्तरं ,
वान्धव्यं परमस्तु ते भगवता किं बन्धपाशै: परै: ।
किं तेनाऽञ्जनलेपनेन यदि तत्स्यान्ध्यैस्तलोचन:,
किं भूय: कथितेन वा कुरु मतिं या देशकालोचिता ।
— मीरालहरी उत्तरखण्ड ३०

२. क्रियाया: प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ।। का०प्र० १०।१६२

अत्यन्त शोक के कारण रो रही है[१]।

यहाँ कारण सामग्री (प्राकृतिक सुषमा) के रहने पर भी कार्याभाव (मीरा की उदासीनता) के कारण विभावना है।

विशेषोक्ति—

जहाँ सम्मिलित कारणों के उपस्थित रहते हुए भी कार्य के अभाव का कथन किया जाय वहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार होता है[२]।

मीरा के सांसारिक पति श्री भोजराज की मृत्यु के पश्चात् भी उनके विधवा न होने के भाव को विशेषोक्ति द्वारा स्पष्ट किया जाता है —

" वह (मीरा) प्रशस्त मन वाले पति के द्वारा स्वयं स्वातन्त्र्य को प्राप्त कर चुकी थी। उसने निर्विघ्न रूप से दीर्घ काल तक कठिन नियमों के तप का पालन किया। और जब ईश्वरेच्छा से उसके ऐहिक पति का जीवनसूत्र टूट गया, तो भी मीरा ने दिव्य पति के प्रति आसक्ति के कारण अपने सौभाग्य की रक्षा की।"[३]

यहाँ पर सौभाग्यहानि के कारण पति मृत हो जाने पर सौभाग्य की रक्षा की। इस कारण विशेषोक्ति है।

यथासंख्या—

जहाँ क्रमपूर्वक कहे गये पदार्थों के साथ क्रमपूर्वक कहे गये पिछले पदार्थों का यथोचित सम्बन्ध कहा जाय वहाँ यथासंख्यालङ्कार होता है[४]।

---

१. यत्रोन्मुद्रितकेतकादिकुसुमामोदःसरीसृप्यते,कान्तीनामलचन्द्रिकाम्बरधरारात्रिर्जरीजृम्भते।
सर्वत्रापिवसन्तकूलतटा लक्ष्मीर्जरीजृम्भते,वृन्दावीक्ष्यविरागिणीविरधुर्याहेतिरीलम्बते॥
—मीरालहरी, पृ०सं०६५

२. विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावच: ॥ का०प्र०१०।१२३

३. स्वातन्त्र्यं परमं प्रशस्तमनसा पत्या स्वयं प्रापिता,
सा निर्बाधतया चचार नियमैस्तावत्सुतीव्रं तप: ।
यावज्जीवितसूत्रमैहिकपतेस्त्रोटि दैवेच्छया,
सौभाग्यं समरक्षि दिव्यदयितव्यासङ्गतोऽस्या:पुन: ॥ मीरालहरी उ०सं०२२

४. यथासंख्य क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वय: ॥ का० प्र०, १०।१५४

गर्भाधान संस्कार के माङ्गलिकोत्सव राजा भोज के क्रीड़ोद्यान की सुषमा का वर्णन यथासंख्य द्वारा किया गया है —

"उद्यान में विस्मयकारी, भव्य प्रयोग सम्बन्धी उत्सव मनाये जा रहे थे। क्रिया पटु, साहसिक इन्द्रजालिक अग्नि क्रीड़ा को दिखा रहे थे। वाराङ्गनायें नृत्य कर रही थीं, किङ्करगण सब ओर से सुरभिपूर्ण पुष्पों के पराग को बिखेर रहे थे[1]।

'मीरालहरी' में अन्यत्र भी यथासंख्य[2] अलङ्कार उपलब्ध होता है।

अर्थान्तरन्यास—

जहाँ साधर्म्य द्वारा अथवा वैधर्म्य द्वारा सामान्य से विशेष का अथवा विशेष से सामान्य का समर्थन किया जाय, वहाँ अर्थान्तरन्यास होता है[3]।

मीरा की स्थिरबुद्धिता का वर्णन करती हुयी क्षमाराव की उक्ति है —

"मीरा को शीघ्र ही देवालय में निवास प्रदान कर दिया गया। पति के आग्रह बिना वह ईश्वर पूजनादि कार्यों को करती थीं। भगवदुपासना में लीन उसको देखने के लिए साधुगण आते थे — जैसे लौहमणि सूची को आकृष्ट करती है वैसे ही श्रेष्ठ व्यक्ति को सुजनता खींचती है।"[4]

---

१. उद्याने प्रचलन्ति विस्मयकरा भव्यप्रयोगोत्सवा-
अग्निक्रीडनमाचरन्ति तनुते भूरीन्द्रजालादिकम्।
नृत्यन्ति प्रकिरन्ति सौरभलसत्पुष्पादिकं सर्वतो,
दक्षाः साहसिकेन्द्रजालकुशलो वाराङ्गनाः किङ्कराः॥
— मीरालहरी, पू०ख०, ५६

२. मीरालहरी पूर्वखण्ड ३७, उत्तरखण्ड ३

३. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥ — का०प्र० १०।१६५

४. अत्रासौ नचिरात् स्नुषा नरपतेर्देवालये वासिता,
पत्युर्मन्त्रणमन्तरा भगवतश्चक्रे सपर्यादिकम्।
तामेनां परिवब्रुरर्चनविधौ दूरागताः साधवः,
सूचीं लौहमणिर्यथा सुजनतां सौजन्यमाकर्षति॥
— मी०ल०पू०खं०, ७६.

यहाँ विशेष का सामान्य द्वारा समर्थन होने के कारण अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार होता है।

काव्यलिङ्ग—

जहाँ हेतु का कथन वाक्यार्थ अथवा पदार्थ रूप से किया जाय वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है[1]।

पदार्थ के हेतु होने का एक उदाहरण मीरा द्वारा क्षात्रव्रत के उल्लङ्घन में मिलता है —

"इस प्रकार वधू गद्गद् भाव से विज्ञापन करके, रानी (श्वश्रू) के चरणों पर गिर पड़ी। उस प्रकार के पहले कभी न देखे गये चरित को देखकर अन्त-र्मन में प्रसन्न किन्तु बाह्याकृति से रुष्ट, क्षात्रियोचित गर्व से उज्ज्वल मुखवाली, सास ने कुलदेवता के प्रति विमुख क्षत्रव्रत का उल्लङ्घन करने वाली (वधू) की निन्दा की।"[2]

समुच्चय—

जहाँ प्रस्तुत कार्य की सिद्धि हेतु के उपस्थित रहने पर भी (उसकी सिद्धि के लिए) और भी अनेक कारण कहे जायँ—वहाँ समुच्चय अलङ्कार होता है[3]।

दासी ने मीरा को मङ्गलोत्सव की सूचना दी किन्तु मीरा पर

---

१. काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता ।। का०प्र० १०।१७४

२. विज्ञाप्येति सगद्गद-चरणयोस्तस्याः पपात स्नुषा,
दृष्ट्वा तामदृष्टपूर्वचरितं दृष्टापि रुष्टेव ताम् ।
श्वश्रूस्तावदनिन्ददेव नितरां क्षत्रान्वयपोज्ज्वला-
विप्राणां कुलदेवताविमुखतां क्षात्रव्रतोल्लङ्घिनीम् ।। मी०ल०पू०अ० ४४

३. तत्सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत् ।
— समुच्चयोऽसौ ।। का०प्र०१०।१७८

उसका कुछ भी प्रभाव न पड़ा —

'राजपुत्री प्रस्तुतवादिनी के वचनों को सुनकर निरुत्तर हो गयी । वृद्ध सेविका मीरा को अतिलज्जित मानकर आनन्दातिरेक से पूर्ण हो गयी । प्रसाधन में कुशल उसने कन्या के अन्त:पुर मण्डप में कामोत्तेजक शय्या गृह की अलङ्कार-योजना आदरपूर्वक प्रारम्भ की ।'[१]

यहाँ 'चकार' द्वारा दोनों क्रियायें एक साथ कह दी गयी हैं ।

परिसंख्या—

जो कोई बात पूछी गयी हो या न पूछी गयी हो, परन्तु शब्दों द्वारा प्रकट की गयी हो तथा किसी अन्य प्रयोजन के न होने से उसके तुल्य किसी अन्य वस्तु अपलाप रूप में परिणत हो वहाँ पर परिसंख्या अलङ्कार होता है ।[२]

भक्तों के उद्धार के लिए मीरा ने प्रश्नपूर्वक सदुपदेश दिया —

' परमपुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए किसके साथ प्रीति सम्पादित की जाय ? परमेश्वर की—उससे अन्य किसी स्त्री अथवा नृप की नहीं । यह आश्चर्य पूर्ण है कि मनुष्य द्वारा वैसा प्रेम कैसे सम्पादनीय है ? एकान्तिभक्ति द्वारा चाटुकारी उक्तियों से नहीं । यह भक्ति कैसे प्राप्त हो ? एक मात्र ईश्वर के मनन द्वारा, धनसम्पत्ति स्वरूप अन्य चिन्तनों द्वारा नहीं । इस प्रकार परमतत्त्व के साक्षात्कार की विधि का उन्होंने भक्तों के सम्मुख उपदेश दिया ।'[३]

---

१. श्रुत्वा प्रस्तुतवादिनीमवचना तस्थौ च भूपेन्द्रजा,
मत्वा तामतिलज्जितामतितरामानन्दिता किङ्करी ।
शय्यागारपरिष्कृतिं मनसिजप्रोद्दीपनीं यत्नत: ,
कन्यान्त: पुरमण्डपे रचयितुं चारब्ध कौशल्यभाक् ।। मीरा०ल०पू०ख० ५५

२. किञ्चित्पृष्टमपृष्टं वा कथितं यत् प्रकल्प्यते ।
तादृगन्यव्यपोहाय परिसंख्या तु सा स्मृता ।। का०प्र० १०।१८५

३. कस्य प्रेम समर्ज्यतां भगवतो न स्त्रीनृपादे:पुन:,
सम्पाद्यं मनुजेन तत्कथमहो भक्त्या न चाटूक्तिभि: ।
सा लभ्या कथमीश्वरैकमननान्नार्थादिसंचिन्तना-
दित्येषा परतत्त्वदर्शनविधिं भक्तानलिम्पाद्ययत् ।। —मी०ल०उत्तरखण्ड ४०

अत: यहां प्रश्न की गयी वस्तु का शब्दों द्वारा प्रतिपादन होने के कारण परिसंख्या अलङ्कार है ।

अर्थापत्ति--

जहां दण्डापूपिका (अर्थात् मूषक जब डण्डे को खा जाता है तो मालपुआ तो निश्चय ही खा गया होगा) न्याय के अनुसार एक ही अर्थ की सिद्धि के साथ उसी के बल से दूसरा अर्थ सिद्ध हो जाय वहां अर्थापत्ति अलङ्कार होता है[1]।

इसका एक उदाहरण मीरा के दुर्भाग्य चित्रण में दिया गया है --

'दुर्भाग्यवश मीरा अपने महात्मा स्वामी से वियुक्त हो गयी साथ ही वह बान्धव जनों द्वारा पहले किये गये सत्कार से भी हीन हो गयी --(पति के मर जाने के कारण अत्यन्त तिरस्कृत हुयी) भोजराज के रहने पर भी, जो (भोजराज का) भ्राता मीरा के प्रति मन से द्वेष करता था वह यदि पतिहीना को ताड़ना दे तो इसमें क्या विस्मय है ।'[2]

यहां पर "का को विस्मय:" इस पद के द्वारा अर्थापत्त्यलङ्कार का बोध होता है ।

अलङ्कार संसृष्टि--

जहां दो या अधिक अलङ्कार कहीं एक स्थान पर परस्पर निरपेक्ष (तिल तण्डुल) भाव से स्थित हों, तो संसृष्टि अलङ्कार होता है ।[3]

---

१. दण्डापूपिकयार्थान्तरापतनमर्थापत्ति: - अलङ्कार सर्वस्व--रुय्यक

२. भर्त्रानेन महात्मना वियुयुजे सा दैवदुर्योगत:,
सार्धं बन्धुजनप्रदर्शितचरै: सत्कारमानादिभि: ।
पत्यौ सत्यपि यस्तदेकवशगोऽप्यन्त: स्म विद्वेष्टि तां,
स भ्रातास्य निपीडयेदपतिकां यत्तत्र को विस्मय: ।।

--मीरालहरी उत्तर खण्ड, २३

३. सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थिति: ।।

--काव्यप्रकाश १०।२०७

व्यतिरेक और काव्यलिङ्ग अलङ्कार के रहने के कारण संसृष्टि का उदाहरण प्रस्तुत है —

" एक मात्र श्रीकृष्ण को अपना पति मानती हुयी, पूर्वजन्म के स्मरण सम्बन्धी संस्कार कलाप को धारण करती हुयी , ईश्वरभक्ति के पहले की अपेक्षा अधिक श्रद्धा रखने लगी । (जन्मान्तर स्मृति की प्राप्ति ही श्रद्धावृद्धि हेतु होने के कारण पदार्थ हेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है) पूर्णिमा के चन्द्र की द्युति कृष्ण पक्ष में क्षीण हो जाती है किन्तु मीरा के यश की कान्ति कृष्ण पक्ष के आश्रय से वृद्धि को ही प्राप्त करती है। "[1] (कृष्ण—श्रीकृष्ण—कृष्णपक्ष)

यहाँ पर श्लेष द्वारा अनुप्राणित व्यतिरेक अलङ्कार भी विद्यमान है ।

अलङ्कार सङ्कर—

जहाँ दो या अधिक अलङ्कार एकत्र स्थित होकर भी निरपेक्ष न हों, किन्तु अङ्गाङ्गि भाव इत्यादि तीन प्रकार में किसी एक प्रकार से स्थित हों, वहाँ अलङ्कार सङ्कर माना जाता है।[2]

क्षमाराव ने यत्र-तत्र अपनी कृतियों में अलङ्कारों के सङ्कर को महत्त्व दिया है —

" मेघों द्वारा नीलवर्ण के बनाये गये, हिमालय की शुभ्रता पर कौन शङ्का करेगा ? अथवा राहु द्वारा ग्रसित सूर्य के तेज पुञ्ज के विषय में कौन शङ्कित होगा ? राज पुत्र (भोजराज) ने मिथ्यापवाद द्वारा दूषित अपनी वधू (मीरा) को पवित्र जानकर, उसके लिए अपने गृह के बाहर एक रमणीय मन्दिर का

---

१. इत्थेवं जननान्तरस्मृतिमयं युक्तात्मना बिभ्रती
श्रीकृष्णैकपतिव्रता समधिकश्रद्धामपुष्यन्दधौ ।
राकायाः शशिनो द्युति क्षयमुपेत्याकृष्णपक्षाश्रया,
मीरायाः यशसः प्रभा तु विमला वृद्धिं प्रपेदे ततः ।। मीरालहरी उत्तरखण्ड, १७

२. अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वे तु सङ्करः ।। का०प्र० १०।२०८

निर्माण करवा दिया - इसमें क्या आश्चर्य है ।"[1]

यहाँ पर प्रथमाङ्क में स्थित वाक्यों का एक ही क्रिया 'शङ्कैत' के साथ सम्बन्ध होने के कारण तुल्ययोगिता अलङ्कार है । व्यर्थ में दूषित वधू पवित्र थी इसके दृष्टान्त रूप से नीले मेघों से घिरे हिमगिरि का स्वरूप से शुभ्र होना - इस सदृश वस्तु के प्रतिविम्ब के कारण दृष्टान्त अलङ्कार है ।

विरोधाभास—

जहाँ वास्तव में विरोध न रहने पर भी दो वस्तुओं में परस्पर विरोध कहा जाय, वहाँ विरोध या विरोधाभास[1] अलङ्कार होता है । विरोध का यह आभास दस प्रकार का होता है । कहीं जाति का जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया के साथ कहीं गुण का गुण, क्रिया और द्रव्यों के साथ, कहीं क्रिया का क्रिया तथा द्रव्यों के साथ और कहीं द्रव्य का द्रव्य के साथ ।[2]

यवन सम्राट अकबर के वापस लौट जाने पर, महाराज भोज की क्रोधपूर्ण उक्ति में विरोध दर्शनीय है —

" यह नरपशु देवता को उपहार देने के बहाने (आकर) क्षात्रिय नारी के चरणों का स्पर्श करके हमें अपमानित करें —इसमें हम सभी क्षात्रियों का अपमान है । यह यवन यदि इस देश से फिर स्वदेश को लौट गया तो हम सब जीवित रहते हुए भी मृत हैं । वह शत्रु देवस्थान में देखे जाने पर भी दण्डित नहीं हुआ — अतः उन सभी क्षात्रियों को धिक्कार है ।"[3]

---

१. विरोधः सो विरोधोऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।। का०प्र० १०।१६६

२. जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरुद्धा स्याद् गुणैस्त्रिभिः ।
क्रियाद्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणैवेति तद्दश ।। का०प्र० १०।१६७

३. सर्वक्षात्रविडम्बनेयमहहा क्षात्राङ्गनामप्यसौ,
देवोपायनकैतवान्नरपशुः स्पृष्ट्वा पदे धर्षयेत् ।
जीवन्तोऽपि वयं मृता हि यदयं भूयः स्वदेशं गतो,
धिक् क्षात्रान् यदरिस्सुरार्चनगृहे दृष्टोऽपि येन क्षतः ।। मीरालहरी पृ०सं० ८६

'जीवन्तोऽपि वयं मृता:' इस पद में विरोध परिलक्षित होता है।

प्रतिवस्तूपमा—

जहाँ एक ही साधारण धर्म को दो वाक्यों में दो बार (भिन्न भिन्न शब्दों से) कहा जाय वह प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है[१]।

धर्माल्ढा मीरा के चित्रण में प्रतिवस्तूपमा का आश्रय लिया गया है —

'श्वेत कमल नित्य जल में रहने पर भी क्या अपनी धवलता को छोड़ देता है। हिमालय हिमाच्छादित रहने पर भी क्या अपने सौभाग्य को त्याग देता है। वज्रमणि मिट्टी आदि से दूषित होने पर क्या अपनी स्वाभाविक कान्ति से वियुक्त हो जाता है? —फिर मीरा यदि सास और ननद के तर्जना के कारण अपने धर्म से विचलित नहीं हुयीं —तो इसमें क्या विचित्रता है।'[२]

यहाँ पर प्रथम तीनों पादों में स्थित अप्रस्तुतवाक्यार्थों में उपमान रूप में 'त्यजति', 'विजहाति', मुञ्चति' आदि एकार्थप्रतिपादक क्रियाओं के साधर्म्य से चतुर्थपाद में स्थित उपमेय रूपवाक्य में ' न चलिता' इस समानार्थक शब्द के प्रयोग के कारण प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

पर्यायोक्त—

जहाँ पर वाच्य अर्थ की सिद्धि वाच्य-वाचक भाव से न होकर व्यंजना

---

१. .... प्रतिवस्तूपमा तु सा ।। का०प्र० १०।१०२

· सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थिति: । का०प्र० १०।१०२

२. धावल्यं सितनीरजं त्यजति किं पङ्केऽपि नित्यस्थितं,
सौभाग्यं विजहाति किं हिमगिरिश्छन्नस्तुषारैरपि ।
कान्तिं मुञ्चति किन्नु हीरकमणिर्लोष्टैश्च सन्दूषित:,
किं चित्रं यदि धर्मतो न चलिता मीरापि तर्जनै: ।।

—मीरालहरी पूर्वखण्ड ४६

व्यापार द्वारा होती है, वहां पर पर्यायोक्त अलङ्कार होता है[1]।

इस दृष्टि से मीरा के स्वभावपरिवर्तन चित्रण का एक स्थल दृष्टव्य है —

' पहले क्रीडा भवन जिस शालभञ्जिका को मीरा ने पुत्रीवत् पाला था, वह इस समय रुदन करती हुई सी अत्यन्त म्लान मुख वाली कोने में स्थित है। (यहां कार्यमुख से कारणभूत मीरा का दूर रहना व्यङ्ग्य होने से पर्यायोक्त अलङ्कार है) क्षुधा से पीडिता सारिका 'मुझे शीघ्र भोज न दो' ऐसा प्रलाप कर रही है। मीरा द्वारा नित्य प्रेमपूर्वकपालित गायों के समूह भी व्याकुल होकर स्वर कर रहे हैं।'

यहां पर मीरा की उदासीनता गम्य होने के कारण पर्यायोक्त अलङ्कार है।

---

१. पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ।। का०प्र० १०।१७५

२. या खेलाभवने स्म खेलति पुरा पुत्रीकृता पुत्रिका,
सैदानीं रुदतीव दूषितमुखी कोणे क्वचिल्लीयते ।
शीघ्रं भोज्य मामिति प्रलपति क्षुत्पीडिता सारिका,
शश्वल्लालितगोगणश्च तनुते ह्म्बारवं विह्वलः ।। —मीरालहरी पूर्वखण्ड १३

सप्तम-अध्याय

प्राकृत कवयित्रियां

संस्कृत कवयित्रियों के साथ साथ प्राकृत की स्त्री कवियों का उल्लेख न करने से यह कार्य अपूर्ण सा प्रतीत होता है। यद्यपि इन की संख्या अत्यन्त अल्प है एवम् इनके पद्य भी संस्कृत पद्यों के अपेक्षा न्यून है।

अवन्तिसुन्दरी के अतिरिक्त प्राय: सभी प्राकृत कवयित्रियों के उद्धरण सातवाहन (हाल) ने अपनी गाथा सप्तशती[१] में दिये हैं। सातवाहन का उल्लेख सातवीं शताब्दी के प्रथम चरण में होने वाले प्रसिद्ध गद्य लेखक बाणभट्ट ने किया है अत: ये सभी प्राकृत लेखिकायें इस काल से पूर्ववर्ती हैं इतना निश्चित है।

अनुलक्ष्मी —

अनुलक्ष्मी रचित चार पद्य हाल की गाथासप्तशती में उपलब्ध होते हैं, इनमें तीन में प्रेम सम्बन्धी वार्तालाप है। पहले पद्य में किसी असती स्त्री का चित्रण है। अपनी भार्या के सतीत्व की व्याख्या करने वाले उपपति से परकीया नायिका ईर्ष्यापूर्वक कहती है —

'हे सुभग तुम्हारी पत्नी सती है और हम कुलटा हैं। इसका कारण स्पष्ट कर रही हूं? तुम्हारे समान कोई युवक नहीं।[२]

---

१. गाथा सप्तशती — गङ्गाधर भट्ट विरचितया टीकया समेत।

२. जं तुम्ह सई जाआ असईओ जं च सुहअ अम्ह वि।
ता किं फुट्टउ वीअं तुम्ह समाणो जुआ णत्थि ।। ३।७८

छाया यत्रव सती जाया असत्यो यच्च सुभाग वयमपि।
तत्किं स्फुटतु बीजं तव समानो युवा नास्ति ।।

तुम्हारी पत्नी इसलिए सती है कि तुमसे अधिक सुन्दर कोई युवक नहीं है। यदि तुमसे अधिक सुन्दर युवक से भी भेंट होने पर भी व पतिव्रता रहती तो उसका महत्त्व था। जब उसके लिए विकार का कोई कारण ही नहीं तो उसके सतीत्व का महत्त्व ही क्या ? मेरे असती होने में आप ही कारण हैं। आप जैसा रूपवान् कोई नहीं अतः मैं आप पर रीझ गयी तो इसमें मेरा क्या दोष। आपकी सुन्दरता ही दोषी है। आप अपना दोष तो देखते ही नहीं, उलटे मेरा अपमान करते हैं।` यह आक्षेप नायक के प्रति व्यंग्य है।` हम कुलश हैं इस बहु वचन से ध्वनित होता है कि एक तुम्हारी पत्नी ही सती है और हम सब कुलटा।``तुम धन्य हो कि सभी कामिनियां अपने सतीत्व जैसी अमूल्य वस्तु को भी त्याग कर तुम्हें चाहती हैं` आदि व्यंग्य `सुभग` शब्द से निकलता है। द्वितीय पद्य में इच्छा होने पर भी सुरत विदग्धता के अभाव में अपने अनाड़ीपन के प्रकट होने के भय से सुरत में प्रवृत्त होने में सङ्कोच करने वाले किसी धनी युवक को प्रोत्साहित करती हुयी धूर्ता कहती है —

` काम कला विशारदों की रति केलियां भी, जो बार बार दुहरायी हुए (आलिङ्गन चुम्बन आदि) सुरत व्यापारों की सरलता से अति प्रीत होती हैं इतनी मनोहर नहीं होती जितनी` जहां कहीं भी जैसे तैसे प्राप्त सच्चे प्रेम के कारण हुयी रति क्रीड़ायें।`[1] भावार्थ यह है कि काम कला विदग्ध पुरुषों के समागम में कौशल प्रदर्शन की स्पर्धा ही अधिक रहती है, जब कि नवीन कामुक के साथ रति करने में स्नेह की अधिकता।` इससे मुझे बहुत से काम कला विशारदों की रति का भी अनुभव प्राप्त है, मेरे साथ से तुम्हें भी वह कुशलता प्राप्त हो जायगी` तथा` अपनी अनभिज्ञता के कारण सङ्कोच मत करो, मैं तुम्हारे सहज सुरत से अधिक प्रसन्न होऊंगी` यह प्रोत्साहन नायक के प्रति ध्वनित होता है। `पुनरुक्त` शब्द से ` कामशास्त्रीय विधि से सम्पन्न रति व्यापार तो घिसे होते हैं ऐसा अर्थ व्यंग्य है जो नव कामुक के रतिकला अनभिज्ञता-जनित सङ्कोच के अपनयन का प्रयत्न है।

---

१. ण वितह थेअरआई वि हरन्ति पुणरुत्तराअरसिंआइं।
ज अत्थ व तत्थ व जह व तह व सन्भावणेहरमिआइं ॥ गाथा सप्तशती ३।७४

छाया| नापि तथा छेकरतान्यपि हरन्ति पुनरुक्तरागरसिकानि।
यथा यत्र वा तत्र वा यथा वा तथा वा सद्भावस्नेहरमितानि ॥

तृतीय पद्य में चिरकाल में प्रवास से लौटे हुए प्रियतम का स्वागत कैसे किया ? सखी के इस प्रश्न का उत्तर नायिका ने इन शब्दों में दिया ---

'उन्होंने मेरी भुजाओं को दृढ़ बन्ध लगी हुयी गांठ के समान बड़ी कठिनता से छुड़ाया और हमने भी उनके वक्ष पर गड़े हुए कुचों को मानों उखाड़ा ।'[१] अर्थात् मैंने दृढ़ आलिङ्गन करके उनका स्वागत किया और उन्होंने भी उसी प्रकार उसका उत्तर दिया ।

गाढ़ आलिङ्गन के कारण नायिका की भुजाओं को नायक ने ही कठिनता से छुड़ाया । इससे प्रतीत होता है कि नायिका को आलिङ्गन के बाद हटने का ज्ञान ही न रहा' यह उसके आनन्दातिशय जनित जड़ता की प्रतीति होती है । 'उनके वक्ष में गड़े हुए से स्तनों को उखाड़ा' इससे नायक द्वारा भी नायिका का गाढ़ आलिङ्गन प्रकट है । ' गड़े हुए से ' विशेषण से कुचों की कठोरता और उत्तुङ्गता व्यञ्जित है । ' ग्रन्थि शब्द से व्यङ्ग्य है कि नायिका के लिए नायक उतना ही प्रिय है जितना निर्धन के लिए कोई अमूल्य वस्तु जिसे वह दृढ़ता के साथ गांठ में बांध कर रखता है । इसी प्रकार 'गड़े हुए से' विशेषण से नायिका के कुचों का नायक के लिए निधि कलश सदृश प्रिय होना व्यङ्ग्य है अर्थात् दोनों एक दूसरे के सर्वस्व हैं । दोनों में अतिशय अनुराग है ।

अनुलक्ष्मी का अन्तिम पद्य वट वृक्ष का सुन्दर वर्णन है । स्वभाव से ही गुणहीन व्यक्ति ऊपर से आडम्बर रच भी ले तो एक न एक दिन उसकी वास्तविकता का ज्ञान सभी को हो ही जाता है ।

---

१. दिढ मूल बन्ध-गण्ठी व्व मोइया कह वि तेण मे बाहू ।
अम्हेहि वि तस्स उरे खुत्त व्व समुक्खआ थणआ ।। गा०स० ३।७६

(छाया) दृढमूलबन्धग्रन्थी इव मोचितौ कथमपि तेन मे बाहू ।
अस्माभिरपि तस्योरसि निखाताविव समुत्खातौ स्तनौ ।।

इस भाव को अन्योक्ति द्वारा व्यक्त किया गया है —

" शुष्क वट वृक्ष के नीचे गये हुए पथिक फल और पत्तों जैसे शुकवृन्द के उड़ जाने पर (वृक्ष के स्थान मात्र पाकर) ताली बजाकर हँसे ।"[१] अभिप्राय यह है कि विश्राम करने के इच्छुक पथिक फलों और पत्तों से लदा हुआ समझकर, एक वट वृक्ष के नीचे पहुँचे, किन्तु उनके वहां पहुंचने पर उस वृक्ष पर बैठे हुए तोते उड़ गये और वृक्ष पत्रों और फलों से सर्वथा रहित दिखाई दिया । अब यात्रियों को भी अपने भ्रम का अनुभव हुआ और उन्हें ज्ञान हुआ कि जिन्हें वे पत्ते समझ रहे थे वे तोतों के हरे हरे पंख थे और जिन्हें फल समझ रहे थे, वे उनकी लाल लाल चोंचें । फलत: वे अपनी इस भ्रान्ति पर स्वयं ताली बजाकर हँस पड़े ।

असुलद्धि—

गाथा सप्तशती में "असुलद्धि" के नाम से उद्धृत दोनों पद्यों में नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है । प्रथम पद्य में प्रोषित पतिका (जिसका पति परदेश गया हुआ हो) विरहिणी नायिका अपनी सखी से कहती है —

" सखि ! कदम्ब के पुष्प मुझे जितनी व्यथा पहुंचाते हैं । उतनी अन्य पुष्प नहीं । अवश्य ही इन दिनों कामदेव (अपने अस्त्र के रूप में) गुटिका धनुष (गुलेल) धारण करने लगा है । कदम्ब के पुष्पों को ही वह अपनी गुलेल की गोलियों के रूप में काम लाता है ।"[२]

---

१. हसिअं स-हत्थ-तालं सुक्ख-वडं उवगएहिं पहिएहिं ।
पत्तअ-फलाणं सरिसे उड्डीणे सुअ-विन्दम्मि ।। गाथासप्तशती ३।६३
छाया। हसितं स -हस्त-तालं शुष्क-वटवृक्षमुपगतै: पथिकै: ।
पत्र-फलानां सदृशे उड्डीने शुक-वृन्दे ।।

२. सहि दुम्मेन्ति कलम्बाइं जह मं तह ण सेसकुसुमाइं ।
णूणं इमेसु दिअहेसु वहइ गुडिआधणुं कामो ।। गा०स० २।७७
छाया । सखि व्यथन्ति कदम्बानि यथा मां तथा न शेषकुसुमानि ।
नूनमेषु दिवसेषु वहति गुटिकाधनु: काम: ।।

व्यंजना यह है कि बसन्त और ग्रीष्म की ऋतुओं को तो मैंने किसी तरह व्यतीत कर लिया किन्तु अब वर्षा का आगमन मेरे लिए असह्य हो उठा है। अत: शीघ्र ही किसी न किसी युक्ति से प्रियतम को बुला दो।'

द्वितीय पद्य में विरहिणी की शोचनीय स्थिति का वर्णन करती हुयी दूती नायक से कहती है —

' न तो मैं उसकी दूती हूं और न ही तुम प्रिय। हमारा (परस्पर) काम क्या है? वह मर रही है। मैं तो इसीलिए धर्मसम्मत बात कह रही हूं।'[1]

' मैं दूती नहीं हूं' से मेरा काम मिथ्या वार्तालाप से किसी को बहकाना नहीं है। न मैं तुम्हें बुलाने के लिए ही आई हूं। केवल वास्तविक स्थिति की तुम्हें सूचना दे रही हूं। दूती की यह तटस्थता एवं विश्वसनीयता व्यंजित है।' तुम प्रिय नहीं हो ' से नायक की नायिका के प्रति निर्दयता अभिव्यक्त है। दूती द्वारा अपने दूतीत्व और प्रिय के प्रियत्व का निषेध विशेष कथन की इच्छा से (अधिकाधिक प्रभाव डालने की इच्छा से) है। अत: यहां आक्षेप अलङ्कार है।' तुम्हारे वियोग में वह मर रही है। इस स्त्री वध का पाप तुम्हें लगेगा' इस प्रकार नायिका की मृत्यु का भय दिखाकर नायिका के समीप शीघ्र ही जाने के लिए दूती का नायक को प्रोत्साहित करना अभीष्ट व्यंग्य है।

अवन्तिसुन्दरी —

कवि, नाटककार एवम् आलोचक के रूप में राजशेखर प्रसिद्ध है जिसका उद्भव काल ८८०-९२० ई० है। राजशेखर की काव्यशास्त्र सम्बन्धी रचना काव्यमीमांसा सूचनाओं का भाण्डार है। काव्यमीमांसा[2] में राजशेखर ने तीन बार

---

१. णाहं दूई ण तुमं पिओ त्ति को अम्ह एत्थ वावारो।
सा मरइ तुज्झ अअसो तेण अ धम्मक्खरं भणिमो।। २।७८
छाया। नाहं दूती न त्वं प्रिय इति कोऽस्माकमत्र व्यापार:।
सा म्रियते तवायशस्तेन च धर्माक्षरं भणाम:।।

२. काव्यमीमांसा, पृ० २०, ४६,५७

अवन्तिसुन्दरी नाम की स्त्री का उल्लेख किया, जिसका कि राजशेखर से कुछ स्थलों में मतभेद था। राजशेखर के प्राकृतभाषा के नाटक कर्पूरमञ्जरी[१] से ज्ञात होता है यह अवन्तिसुन्दरी राजशेखर की पत्नी थी उन्हीं की इच्छा से राजशेखर ने कर्पूरमञ्जरी नाटक को रङ्गमञ्च पर प्रदर्शित किया था। अवन्ति सुन्दरी चाहुवाणवंश में उत्पन्न हुयी थीं। अतः वह एक क्षत्रिय नारी थी जिसके साथ ब्राह्मणकवि राजशेखर ने जगत् विख्यात कवि बिल्हण की भाँति जीवन व्यतीत किया था। इस विषय पर कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है कि अवन्ति सुन्दरी ने कोई आलोचनात्मक रचना की हो। किन्तु इतनातो निश्चित है कि साहित्यिक विषयों से सम्बन्धित समस्याओं पर अवन्तिसुन्दरी अपने पति के साथ वाद विवाद करती थीं जिनको राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में उद्धृत किया है।

अवन्ति सुन्दरी द्वारा रचित तीन पद्यों का उल्लेख प्राकृत भाषा में प्रयुक्त शब्दों का विवरण देते हुए "देशी नाम माला" में पाया जाता है। प्रथम पद्य में किसी विरहिणी नायिका का वर्णन है। वह स्वयं दुख करती है कि–

" उस निष्ठुर के द्वारा मुझे भुला दिया गया। मैंने गुरुजनों के मध्य भी निर्लज्ज होकर उसके सम्मुख जाने में सङ्कोच नहीं किया।"[२]

---

१. चाहुआण कुलमउलिमालिआ राअसेहरकइन्दगेहिणी।
भत्तुणो किदिमवन्तिसुन्दरी सा पउंज्ज इदुमेदमिच्छदि ।। कर्पूरमञ्जरी, १।११
छाया–
चाहुवाण कुलमौलिमौलिका राजशेखरकवीन्द्रगेहिनी।
भर्तुः कृतिमवन्तिसुन्दरी सा प्रयोजयितुमेतदिच्छति ।।

२. किं तं पि हु वीसरिअं णिक्किव जं गुरु अणस्स मज्झम्मि।
अहिआविरूण गहिओतं ओहुरउत्तरी आए ।।

–देशीनाममाला १।१५७

" विलक्खम्मि ओहुंड ओहुरं इत्यादि के अन्तर्गत देशीनाम माला १।१५७ अवन्तिसुन्दरी द्वारा प्रयुक्त ओहुरं शब्द के अर्थ के सम्बन्ध में उद्धृत किया गया है। ओहुरं अवनतं प्रस्तं चेत्यवन्तिसुन्दरी। यदुदाहरति स्म।"

द्वितीय पद्य में, अपनी प्रियतमा से पृथक् किसी विरही व्यक्ति का चित्रण किया गया है। इससे प्रगट होता है कि "प्रेमिका अपने प्रिय के प्रति अन्याय कर रही है, जो कि प्रतिक्षण उसके लिए व्याकुल रहता है, एवम् भ्रमरों से घिरे हुए कमल की भाँति, उसके घुंघराले बालों से ढके हुए मुख का स्मरण सदैव करता रहता है।"[१]

तृतीय अर्थात् अन्तिम पद्य में प्रेमपूर्वक मिले हुए पति पत्नी का चित्र अङ्कित है। "पत्नी द्वारा यह उलाहना दिये जाने पर कि उसका पति उसे भूल गया है। पति उत्तर देता है कि केवल मात्र उसके लिए ही वह जीवित है। केवल उसके कौमार्यावस्था के मुख का सौन्दर्य पान ही उसके लिए सब कुछ है।"[२]

उपर्युक्त सभी पद्य अवन्ति सुन्दरी की काव्यमयी प्रतिभा का परिचय देते हैं, उसकी भाषा में माधुर्य एवम् प्रसाद की प्रधानता है। उनका वर्ण विन्यास पाठक के मन में एक सङ्गीतमय प्रभाव छोड़ देता है। अवन्तिसुन्दरी को विविध रसों, एवं भावों तथा उनके लिए प्रयोग में लाये जाने वाले वर्णों के औचित्य का पूर्ण ज्ञान था।[३] काव्यशास्त्र एवम् व्याकरण शास्त्र से भी

---

१. खणमित्त कलुसिआए तुलिआलयवल्लरीसमोत्थरिअ।
भमर-भरोहुरयं पङ्कयं व भरिमो मुंहतीए। देशीनाम माला १।१२५
छाया—
क्षणमात्रकलुषितायाः तुलिआलयवल्लरीसमवस्तृतम्।
भमर-भरावनतं पङ्कजमिव स्मरामि मुखं तस्याः॥ देशीनाम माला १।१२५

२. उपहसइ इराणि इन्दो इन्दीवरच्छि एताहे।
इंदमह-पेच्छिए तुह मुहस्स सोहं णिअच्छन्तो॥
छाया— उपहसतीन्द्राणीमिन्द्र इन्दीवराक्षीदानीम्।
कौमारपेक्षिते तव मुखस्य शोभां पश्यन्॥ वही १।८१
हेमचन्द्र ने इस पद्य का उद्धरण 'इंदमहो' इस शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए दिया है, क्योंकि 'इंदमहो' को अवन्तिसुन्दरी ने भी प्रयुक्त किया है —
"इंदमहं कौमारमित्यवन्तिसुन्दरी उदाहरति स्म"।

३. क्वार्टर्ली जर्नल आफ मिथिक सोसाइटी, बङ्गलोर, खण्ड २५, जुलाई- अक्टूबर १९३५ जनवरी १९३५

वे परिचित थीं ।[१]

माधवी –

माधवी का एक मात्र पद्य ही गाथा सप्तशती में प्राप्त होता है । इसमें नायक के प्रति दूती की उक्ति का विवेचन है । अनुनय करके नायिका को मनाने के लिए उद्यत न होते हुए अचतुर नायक को शिक्षा देती हुयी दूती कहती है–

" जो अपने प्रभुत्व को छिपाकर कुपित प्रियतमा को दास के समान मनाना जानते हैं , वे ही महिलाओं के प्रिय होते हैं, शेष तो बेचारे उनके प्रभु मात्र होते हैं ।"[२]

भाव यह है कि जो महिलाओं से अपराध होने पर भी दण्ड आदि का प्रयोग नहीं करते और उनके कुपित होने पर सेवक के समान अनुनय करके उन्हें

---

१. काव्यमीमांसा (चौखम्बा संस्करण १६३४) में राजशेखर ने तीन बार अपनी पत्नी अवन्ति सुन्दरी का उल्लेख किया है

पृ० ४७ " इयमशक्तिर्न पुनः पाकः" इत्यवन्तिसुन्दरी ।

पृ०१४६ " विदग्धमणितिभङ्गिनिवेद्यं वस्तुनो रूपं न नियत स्वभाव" इति अवन्ति सुन्दरी तदाह–

" वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रो गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये ।
स्तुवन्निबध्नात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्तः ।।

पृ० १८४ –

" अमप्रसिद्धि : प्रसिद्धिमानहम् , अमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठावानहम्, अप्रकान्तमिहमस्य संविधानकं प्रकान्तं मम, गुडूची वचनोऽयं मृद्वीकावचनोऽहम्, अनादृतभाषाविशेषोऽयम् हमादृतभाषा-विशेषः , प्रकान्तज्ञातृकमिदं, देशान्तरितकर्तृकमिदम्, उच्छन्ननिबन्धनमूलमिदं, म्लेच्छितकोपनिबन्धनमूलमिदमित्येवमादिभिः कारणैः शब्दहरणोऽर्थहरणो चाभिरमेत" इत्यवन्तिसुन्दरी ।।

२. णूमेन्ति जे पहुत्तं कुविअं दासा व्व जे पसाअन्ति ।
ते व्विअ महिलाणं पिआ सेसा सामि व्विअ वराआ ।। गाथा सप्तशती १।६१

छाया– गोपायन्ति ये प्रभुत्वं कुपितां दासा इव ये प्रसादयन्ति ।
त एव महिलानां प्रियाः शेषाः स्वामिनः एव वराकाः ।।

मना लेते हैं उन्हीं से वे वस्तुत: प्रेम करती हैं। दण्ड आदि का प्रयोग करने वाले अनुनय-विमुख पुरुषों को वे स्वामी तो समझ सकती हैं किन्तु अपना हृदय नहीं दे सकतीं।

प्रहता-

प्रहता का केवल एक ही पद्य उपलब्ध होता है। कोई स्वाधीन पतिका[१] नायिका सखियों में अपने सौभाग्य का प्रख्यापन इन शब्दों में करती है[२]।

'(प्रियतम पर) प्रहार करने से दु:खते हुए मेरे एक हाथ को जब वे (तुम्हारे कोमल हाथ में चोट लग गयी होगी' यह कहते हुए) अपने मुख की वायु से सहलाने लगे तो मैंने भी इन्हें दूसरे हाथ से पकड़कर गले से लगा लिया।'[२]

'गड्०गाधर भट्ट', मथुरानाथ शास्त्री और भोज के अनुसार ही यह नायिका को स्वाधीनपतिका कह दिया गया है। वस्तुत: नायिका मानिनी प्रतीत होती है, अन्यथा हाथ से प्रहार करने की सड्०गति नहीं बैठती। नायिका के हाथ का प्रहार पाकर नायक उसकी व्यथा दूर करने के बहाने उसे चूम भी लेता है जिससे मान की शान्ति और रति का उदय हो जाता है और वह भी उसे आलिड्०गन में बाँध लेती है।[३]

रेवा-

रेवा द्वारा लिखित दोनों पद्यों में नारी की विपरीत मानसिक स्थिति का चित्रण किया गया है। प्रथम पद्य में खण्डिता नायिका[४] अर्थात् दूसरी नायिका

---

१. आसन्नायत्तरमणा हृष्टा स्वाधीनभर्तृका, दशरूपक २।२३ साहित्य निकेतन, कानपुर
(जिसका पति निकटवर्ती होता या आधीन होकर रहे तथा जो प्रसन्न रहे उसे स्वाधीनपतिका कहते हैं।)

२. एक्कं पहरुव्विण्णं हत्थं मुह-मारुएण वीअन्तो।
सो वि हसन्तीए मए गहिओ बीएण कण्ठम्मि ।। गाथा सप्तशती १।८६

छाया- एकं प्रहारोद्विग्नं हस्तं मुख मारुतेन वीजयन्।
सोऽपि हसन्त्या मया गृहीतो द्वितीयेन कण्ठे ।।

३. गाथासप्तशती (शीकृति) लेखक डा० परमानन्द शास्त्री, पृ०३२६, प्रका०प्रति०, मेरठ
४. ज्ञातेऽन्यासड्०गविकृते खण्डितेर्ष्याकषायिता - दशरूपक २।२५

के सहवास के विकार को जान लेने पर जिस नायिका के चित्र में ईर्ष्या के कारण क्रोध उत्पन्न हो गया हो -उसका वर्णन प्रस्तुत है। अनेक बार यह कह कर कि अबकी क्षमा करो क्षमा मांग लेने वाले नायक से अन्त में खीझ कर खण्डिता नायिका सरोष बोली -

' हमे सुभग (अनेक रमणियों से रमण करने के कारण अपने आपको सौभाग्यशाली समझने वाले !) अरे निर्लज्ज ! कहो कौन से अपराध को क्षमा किया जाय ? जोकर चुके हो ? जो कर रहे हो ? या जो करोगे ? [१]

सदा से मैं तुम्हारे अपराध सहती आयी हूं और तुम रोकने पर भी बारम्बार करते आये हो। आखिर कहां तक सहन करूं। नायक के प्रति यह सरोष उपालम्भ व्यङ्ग्य है।

द्वितीय पद्य में कलहान्तरिता[२] अर्थात् जो क्रोध से नायक का प्रत्याख्यान कर दे और बाद में पश्चाताप करे ; के प्रति सखी की उक्ति है। प्रणयमान के कारण शयनागार से निकल कर जाती हुयी और पीछे लगे हुए नायक द्वारा मनायी जाती हुयी कामिनी को शयनागार में लौटाने के उद्देश्य से सखी ने कहा—

' अवलम्बित (ऊपर से आरोपित न कि हार्दिक) मान के कारण विमुख मानिनि। तुम्हारी पीठ का रोमाञ्च ही पीछे पीछे आते हुए प्रिय से

---

१. किं दाव कआ अहवा करेसि कारिस्सि सुहअ एत्ता है।
 अवराहाणां अलज्जिर साहसु कअर खमिज्जन्तु ।। गाथा स० १।६०
 छाया -
 किं तावत्कृता अथवा करोषि करिष्यसि सुभगेदानीम्।
 अपराधानामलज्जाशील कथय कतमे क्षम्यन्ताम् ।।

२. कलहान्तरिताऽमर्षाद्विधूतेऽनुशयार्तियुक् ।।

— दशरूपक २।२६

तुम्हारे हृदय की अभिमुख स्थिति (प्रणय प्रवृत्ति) को बता रहा है ।"[1]

प्रिय के प्रति तुम्हारी प्रणयोत्कण्ठा तुम्हारी पीठ के रोमाञ्च से ही स्पष्ट है । अत: इस कृत्रिम रोष का अभिनय क्यों करती हो ? जाओ निर्बाध सम्भोग का आनन्द लो , सखी की यह उपालम्भ भरी शिक्षा नायिका के प्रति ध्वनित है ।

ये दोनों ही पद्य उत्तम प्रेमपूर्ण कविताओं के ज्वलन्त उदाहरण है । इनके द्वारा कवयित्री की भावाभिव्यञ्जना शक्ति एवं आन्तरिक स्थिति के चित्रण की कुशलता का परिचय मिलता है ।

रोहा --

रोहा के एक मात्र पद्य में कलहान्तरिता या पति से क्रुद्ध होने वाली नायिका का वर्णन प्रस्तुत है । कलहान्तरिता को समझाती हुयी दूती कहती है —

"जिसके विना जीवित ही न रहा जा सके, उसे अपराधी होते हुए भी मनाना पड़ता है । कहो, नगर को जला देने पर भी आग किसे प्रिय नहीं है ?"[2] अर्थात् अग्नि यदि सम्पत्ति को भस्मसात् भी कर दे तो भी खाना बनाने आदिकार्य के लिए उसे संभाल कर रक्खा ही जाता है । इसी प्रकार अपराध करने पर भी

---

१. अवलम्बिअमाणपरम्मुहीए एन्तस्स माणिणि पिअस्स ।
पुट्ठपुलउग्गमो तुअ कहेइ संमुहट्ठिअं हिअअम् ।। —गाथा सप्तशती १।८७
छाया—
अवलम्बितमानपराङ्मुख्या आगच्छतो मानिनि प्रियस्य ।
पृष्ठपुलकोद्गमस्तव कथयति सम्मुखस्थितं हृदयम् ।।

२. जेण विणा ण जिविज्जइ अणुणिज्जइ सो कआवराहो वि ।
पत्ते विणअरदाहे भण कस्स ण वल्लहो अग्गी ।। गाथासप्तशती । २।६३
छाया—
येन विना न जीव्यतेऽनुनीयते स कृतापराधोऽपि ।
प्राप्तेऽपि नगरदाहे भण कस्य न वल्लभोऽग्निः ।।

प्रिय को तुम मना ही लो तो उचित है क्योंकि उसके बिना तुम्हारा जीवन भी संशय में है। दूती का नायिका के प्रति यह संबोध और उसका नायक के प्रति अत्यधिक अनुराग व्यञ्जित है।

शशीप्रभा—

शशीप्रभा का यह पद्य अन्य प्राकृत कवयित्रियों के पद्यों की अपेक्षा विपरीत चित्र उपस्थित करता है। इसमें मानधारण करने की शिक्षा देने वाली सखी से नायिका कहती है —

" प्रिय जैसे जैसे बजाते हैं, वैसे वैसे ही मैं चञ्चल प्रेम में नाचती जाती हूँ। लता स्वभाव से ही स्वतब्ध वृक्ष से अपने अङ्ग लपेट लेती है।[१] अर्थात् जिस प्रकार नर्तक वाद्य- वादक के लय-ताल के अनुसार पद-सञ्चालन करता है। उसी प्रकार मैं भी प्रिय के अनुकूल ही आचरण करने को (प्रेम के कारण) विवश हूँ।

"प्रेम का चञ्चल विशेषण उसके अस्थायित्व का नहीं अपितु नायिका की प्रेमजन्य चपल मानसिक स्थिति का सूचक है। लता द्वारा वृक्ष वेष्टन के दृष्टान्त से "प्रिय चाहे कितने ही स्वेच्छाचारी हों, हमने तो उन्हें आत्मसमर्पण कर ही दिया" यह अनुरागातिशय व्यक्त किया गया है तथा स्त्री का पति के अनुकूल आचरण स्वाभाविक ही है यह तथ्य भी द्योतित होता है, अथवा जैसे लता वृक्ष के आश्रय के बिना के बिना बढ़ नहीं सकती, उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष के बिना उन्नत नहीं हो सकती। मान करने में सर्वथा असमर्थ हूँ" नायिका का

---

१. जह जह वाएइ पिओ तह तह णच्चामि चञ्चले पेम्मे।
वल्ली वलेइ अङ्गं सहावथद्धे वि रुक्खम्मि ।। गाथा सप्तशती ४।४

छाया—

यथा यथा वादयति प्रियस्तथा तथा नृत्यामि चञ्चले प्रेम्णि।
वल्ली वलयत्यङ्गं स्वभावस्तब्धेऽपि वृक्षे ।।

यह वक्तव्य सखियों के प्रति व्यङ्ग्य है ।

वड्डावली --वद्धावही के पद्य में प्रोषितपतिका[1] अर्थात् जिसके प्रियतमकिसी कार्य-वश दूसरे दूर देश में स्थित हों --की आन्तरिक व्यथा का सूक्ष्म विवेचन किया गया है । पति के विरह से व्याकुल होने के कारण उसे प्राकृतिक परिवर्तनों का भी ज्ञान नहीं रह गया है ।

ग्रीष्म के अन्त तक लौट आने का वचन देकर भी नायक के न लौटने पर नवीन मेघों की शङ्का से व्याकुल होती हुयी प्रोषितभर्तृका को आश्वासन देने के लिए सखी ने कहा --

" अयि वियोगिनी ! धैर्य रखो, ये वर्षा के नवीन मेघ नहीं हैं अपितु ग्रीष्म में दावाग्नि की कालिमा से मलिन विन्ध्याचल के शिखर दिखायी दे रहे हैं[2]। "

सभी प्राकृत कवयित्रियों की कुछ विशेषतायें हैं उनके सभी पद्य प्रेमपूर्ण एवं शृङ्गारिक है । शृङ्गार के दोनों पक्षों, संयोग एवं विप्रलम्भ में से , वियोग को ही प्रधानता दी गयी है । पुरुषों की अपेक्षा नारी मनोभावों का सूक्ष्म विवेचन किया गया है । उन्होंने सहज नारी सुलभ दयाभाव को मन में रख कर प्रिय एवं प्रियतमा के संसार के सुख दुःख , आशानिराशा, आकर्षण एवं औदासीन्य आदि स्थितियों का निरीक्षण किया है

काव्य शास्त्र से सम्बन्धित नारी की विविध अवस्थाओं[3] में से

---

१. दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया । दशरूपक २।२७

२. गिम्हे दवाग्गिमसिमइलिआइं दीसन्ति विञ्झसिहराइं ।
आससु पउत्थवइए ण होन्ति णवपाउसब्भाइं ।। गाथासप्तशती १।७०

३. आसामष्टाववस्था स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः । दशरूपक, २।२३
वे आठ अवस्थायें ये हैं -- स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, प्रोषितभर्तृका, और अभिसारिका ।

स्वाधीन पतिका, प्रोषित पतिका, खण्डिता, कलहान्तरिता एवं विरहोत्कण्ठिता आदि का चित्र प्रस्तुत किया है।

प्राकृत कवयित्रियों की भाषा एवं शैली अत्यन्त सुगम और साधारण है। भावाभिव्यक्ति एवं वर्ण विन्यास उच्चकोटि का है।

सहायक ग्रन्थों की सूची

(१) अग्नि-पुराण

(२) अन्धकारयुगीन भारत — डा० काशीप्रसाद जायसवाल), नागरीप्रचारिणी, काशी, सं१६

(३) अ-अभिधावृत्तिमातृका — मुकुल भट्ट, गड्०गेश रामकृष्ण तैलङ्ग, बम्बई, सं० १६१६

(४) ब- ,, ,, ,, नि०सा०प्रेस सं० १६१६

(५) अभिज्ञानशाकुन्तल (कालिदास) चौखम्बा सं० १६३५

(६) अथर्ववेद ओंकारप्रेस, प्रयाग

(७) अलङ्०कारसर्वस्व(रूय्यक) मोतीलाल बनारसीदास, बनारस सं० १६६५

(८) अश्वलायन श्रौतसूत्र आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि सं० १६३५

(९) आश्वलायन गृह्यसूत्र अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली सं० २०२३

(१०) आपस्तम्ब श्रौतसूत्र औ०रि०इ०, पूना सं० १६५४

(११) रामचरित (भवभूति) केदारनाथ बोस द्वारा कलकत्ता से प्रका० सं०१६३३

(१२) ऋग्वेद आर्य साहित्य मण्डल, प्रकाशन, अजमेर

(१३) कथामुक्तावली (दामाराव) ब०मा०त्रिपाठी, बम्बई सं० १६५४

(१४) कथापञ्चक (दामाराव) श्रीमती लीला दयाल द्वारा बम्बई से प्रका०

(१५) कवीन्द्रवचन समुच्चय — एफ०डब्ल्यू०थामस द्वारा बिबलियोग्रैफिक इण्डिका सीरीज़ के अन्तर्गत इंगलैण्ड से प्रका० सं० १६१७

(१६) कर्पूरमञ्जरी (राजशेखर) नि०सा० प्रेस सं० १६२७

(१७) काव्यादर्श (दण्डी) लाहौर से प्रकाशित सं० १६६०

(१८) काव्यालङ्०कार (रुद्रट) नमिसाधु टीका नि०र्णय सा०प्रेस

(१९) कामसूत्र (वात्स्यायन) जयमङ्०गला टीका चौखम्बा

(२०) कामसूत्र वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई सं० १६६७

(२१) काव्यमीमांसा (राजशेखर) गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़, सं० सं० १६३४

(२२) काव्यालंकार सूत्रवृत्ति (वामन) आत्माराम एण्डसंस, दिल्ली सं० १६५४

(२३) ,, वाणीविलास संस्करण

(२४) काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) नि०सा०प्रेस सं० १९३४

(२५) काव्यप्रकाश (मम्मट) चौखम्बा संस्करण सं० १९२७

(२६) कुमारसम्भव (कालिदास) वैंकटेश्वर स्टीमप्रेस, बम्बई सं० १९९९

(२७) कूर्मपुराण

(२८) केनोपनिषद् नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ सं० १९२९

(२९) कौमुदीमहोत्सव (विज्जिका) जननी कार्यालय प्रका०,प्रयाग सं० २००८

(३०) ,, शकुन्तलाराव शास्त्री द्वारा भारतीय वि०भ०
बम्बई से प्रकाशित सं० १९५२

(३१) ,, श्री रामकृष्ण कवि और पं० एस० के रामनाथ शास्त्री
द्वारा दक्षिण भारतीय की संस्कृत सिरीज़ मद्रास से प्रका०,सं० १९२९

(३२) कौषीतकि ब्राह्मण

(३३) गङ्गावाक्यावली (विश्वासदेवी) प्राच्यवाणी, कलकत्ता सं० १९४०

(३४) गाथासप्तशती (हाल) गङ्गाधरभट्ट की टीका सहितनिर्णयसा०प्रेस सं० १८८९

(३५) ,, (शौधकृति) डा०परमानन्द शास्त्री,प्रकाशन प्रति०मेरठ, सं १९९५

(३६) ग्रामज्योति (रामाराव) जे०सी० चटर्जी द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित

(३७) गोभिल गृह्यसूत्र-उदयनारायण सिंह द्वारा मुजफ्फरपुर से प्रका०,सं० १८९०

(३८) छान्दोग्योपनिषद्-गीताप्रेस, गोरखपुर

(३९) तैत्तिरीयो- आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि सं० १९२९
उपनिषद

(४०) तैत्तरीय ब्राह्मण ,, सं० १९३८

(४१) थेरीगाथा राहुलसांकृत्यायन सं० १९३७

(४२) तैत्तरीय संहिता स्वाध्याय मण्डल औंध सं० २००८

(४३) थेरी गाथाएं सस्तासाहित्य मण्डल प्रका० सं० १९५०

(४४) दशवैकालिक सूत्र भवानी पैठ, सतारा से प्रका०

(४५) दशरूपक (धनंजय) चौखम्बा सं० १९५५

(४६) ,, साहित्य निकेतन,कलकत्ता सं० १९४०

(४७) द्वारकापत्तल (दीनबाई) प्राच्यवाणी,कलकत्ता सं० १९४०

(४८) देवीभागवत

(४९) देशीनाममाला (हेमचन्द्र) औरि०रि०इन्स०, पूना सं० १९३८

(५०) ध्वन्यालोक (आनन्दवर्धन) चौखम्बा सं० १९९७

(५१) ध्वन्यालोक — काव्यमाला संस्करण

(५२) नायधम्मकहाओ — एन०वी० वैद्य द्वारा फर्गुसन कालेज पूना से प्रकाशित — सं० १९४०

(५३) नागानन्द (श्रीहर्ष) — चौखम्बा — सं० १९४७

(५४) पद्मपुराण

(५५) पदरचना — नि०सा०प्रेस — सं० १९०८

(५६) पद्यवेणी (वेणीदत्त) — प्राच्यवाणी मन्दिर, कलकत्ता — सं० १९४४

(५७) पद्यामृततरंगिणी (हरिभास्कर — ,, — सं० १९४१

(५८) पाराशर स्मृति — सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद — सं० १९२९

(५९) पारस्कर गृह्यसूत्र — वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई — वि०सं० १९५०

(६०) पुराणविमर्श (बलदेव उपाध्याय) चौखम्बा — सं० १९६५

(६१) महाभारत — गीता प्रेस गोरखपुर

(६२) महाभाष्य (पतञ्जलि) — बनारस संस्करण

(६३) [illegible] ,,

(६४) मत्स्यपुराण

(६५) मनुस्मृति — पण्डित पुस्तकालय, काशी — सं० २००४

(६६) ,, — कलाप्रेस, प्रयाग

(६७) मधुराविजयम् (गङ्गादेवी) अन्नामलाई वि०वि० प्रकाशन — सं० १९५७

(६८) मध्यकालीन भारत (श्रीनिवासाचारी एवं रामास्वामी अय्यंगर) — सं० १९५१

(६९) मालतीमाधव (भवभूति) हरिदास शर्मा द्वारा कलकत्ता से प्रका० सं० १९१३

(७०) मार्कण्डेय पुराण — सनातन धर्म प्रेस, मुरादाबाद — सं० १९६२

(७१) मीरालहरी (रामाराव) न०मा०त्रिपाठी, बम्बई

(७२) मुण्डकोपनिषद् — आनन्दाश्रम प्रका० — सं० १९३५

(७३) मुद्राराक्षस (विशाखदत्त) चौखम्बा — सं० १९१६

(७४) यजुर्वेद — आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर — सं० १९४०

(७५) याज्ञवल्क्यस्मृति — आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि — सं० १९०३

(७६) रघुनाथाभ्युदयम् (रामभद्राम्बा) मद्रास वि०वि० प्रकाशन — सं० १९५७

(७७) राजतरंगिणी (कल्हण) पण्डित पुस्तकालय, काशी — सं० १९६०

(७८) रुक्मिणी परिणय (राजचूडामणिदीक्षित) आड्यार लाइ० — सं० १९२९

(७९) वरदाम्बिकापरिणयचम्पू(तिरुमलाम्बा)मोतीलाल बनारसीदास लाहौर

(८०) वाराहपुराण

(८१) वाल्मीकि रामायण निoसाo प्रेस संo १६३०

(८२)वामन पुराण

(८३) विद्याकरसहस्रकम् (विद्याधर) प्रयाग विoविo से प्रकाशित संo १६४२

(८४) विचित्रपरिषधात्रा (क्षमाराव) न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई

(८५) विक्रमोर्वशीय (कालिदास) चौखम्बा

(८६) विष्णुपुराण

(८७) वीरमित्रोदयसंस्कारप्रकाश चौखम्बा

(८८) शतपथ ब्राह्मण अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय, काशी संo १६२६

(८९) शङ्करजीवनाख्यानम्(क्षमाराव) निoसाoप्रेस संo १६३६

(९०) शार्ङ्गधरपद्धति (शार्ङ्गधर)बाम्बे संस्कृत सीरीज़ १८८८

(९१) श्रीमद्भागवत पुराण गीताप्रेस, गोरखपुर संo २००८

(९२) श्रीतुकारामचरित (क्षमाराव हिन्द किताब लिo, बम्बई, संo १६५०

(९३) श्रीरामदासचरित ,, नoमाoत्रिपाठी,बम्बई संo १६५३

(९४) ज्ञानेश्वरचरित ,,

,, संo १६५५

(९५) सदुक्तिकर्णामृत (श्रीधरदास) के. एल. मुखोपाध्याय कलकत्ता संo १६५५

(९६) सभ्यालङ्करणम् (गोविन्दजित्) प्रच्यवाणी कलकत्ता संo १६४०

(९७) सरस्वती कण्ठाभरण (भोजदेव) निoसाoप्रेस संo १६३४

(९८) संयुक्त निकाय पाली टैक्स्ट, सोसाइटी, लन्दन संo १८८४-९८

(९९) संस्काररत्नाकरमाला आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि

१००) सत्याग्रहगीता (क्षमाराव) नoमाo त्रिपाठी संo १६५६

१०१) स्वराज्यविजय ,, ,, संo १६६२

१०२) साहित्य दर्पण (विश्वनाथ विमला टीका) मोतीलाल बनारसीदास,संo १६५६

१०३) ,, (शशिकला टीका) चौखम्बा संo १६२७

१०४) सिद्धान्तकौमुदी (भट्टोजि दीक्षित) चौखम्बा संo १६४१

१०५) सुभाषितहारावली (हरिकवि) हस्तलिखित प्रति

१०६) सुभाषितसारसमुच्चय — हस्तलिखित प्रति

(१०७) सुभाषितरत्नकोष(विद्याकर) हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस संo १६५७

(१०८) सूक्तिमुक्तावली (जल्हण) गायकवाड़ ओरि०सि०,बड़ौदा सं० १९३८

(१०९) सूक्तिसुन्दर (सुन्दरदेव) प्राच्य वाणी, कलकत्ता

(११०) हर्षचरित (बाणभट्ट) नि०सा० सं० १९३७

(१११) हिन्दू संस्कार (डा० राजबली पाण्डेय) चौखम्बा

जी पुस्तकें —

१. ए हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर (कृष्णमाचारी) तिरूपति देव० १९३७

२. एजूकेशन इन एन्शियन्ट इण्डिया (ए०एस० अल्तेकर) नन्दकिशोर एण्डब्रदर्स,बनारस, १९५१

३. ग्रेट वीमेन ऑफ इण्डिया (आर०सी० मजूमदार), स्वामी गम्भीरानन्द, द्वारा प्रकाशित, मायावती, अल्मोड़ा, प्र०सं०,१९५३

४. पोजिशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलिजेशन (ए०एस० अल्तेकर) बनारस हिन्दू वि०वि०संस्करण, सं० ३८ (१९३८)

५. संस्कृत पोएटेसेज़ (भाग १,२ —जे०बी० चौधरी) प्राच्यवाणी, कलकत्ता

६. डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्सक्रिप्ट्स, इन दि लाइब्रेरी ऑफ दि बाम्बे यूनीवर्सिटी

७. डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ दि संस्कृत मैन्यूसक्रिप्ट्स इन दि कलेक्शन ऑफ एशियाटिक सोसायटी, ऑफ बङ्गाल

८. कैटलॉग आफ संस्कृत मैनूस्क्रिप्ट् ऐट दि अड्यार लाइब्रेरी

९. डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग ऑफ संस्कृत मैन्यूक्रिप्ट्स इन दि तन्जौर महाराजा सरफोजी सरस्वती महल लाइब्रेरी ।

. कैटलॉग ऑफ दि संस्कृत मैन्यूसक्रिप्ट्स इन दि गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मैन्यूसक्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास ।

काएं—

इण्डियन रिव्यू

इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली

एनल्स ऑफ भण्डारकर ओरियण्टल

: एपीग्राफिक इण्डिका
: क्वार्टर्ली जर्नल ऑफ मिथिक सोसाइटी
: केरल वि०वि० ओरियण्टल हस्तलिखित प्रति पत्रिका
: प्रोसीडिंग्स ऑफ फिफ्थ ओरि० कान्फ्रेंस, १६३०, पंजाब यूनिवर्सिटी, लाहौर
: श्रीमन्महाराजा संस्कृत पाठशाला पत्रिका- मैसूर
. सिल्वर जुबली पब्लिकेशन, त्रिवेन्द्रम, १६३४ ।